राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का अनुशीलन

RAHI MASOOM RAZA KE UPNYASOM KA ANUSEELAN

THESIS
SUBMITTED TO
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

बिन्दु एम. जी.
BINDU M. G.

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Professor & Head of the Department

Dr. R. SASIDHARAN
Supervising Teacher
Professor, Dept. of Hindi

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

2002

CERTIFICATE

*This is to certify that this thesis is a bonafide record of research work carried out by Smt **BINDU M.G.** under my supervision for the award of the Degree of Doctor of philosophy and that no part of this work has hither to been submitted for a degree in any other University.*

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 682022

Dr.R.SASIDHARAN
Professor, Dept of Hindi

DECLARATION

I here by declare that this thesis entitled ' ***RAHI MASOOM RAZA KE UPANYASOM KA ANUSEELAN*** *'is a bonafide record of research work carried out by me for the award of the Degree of Doctor of philosophy ,in the Faculty of Humanities,the Cochin University of Science and Technology , kochi-22 that no part of this work has, hither to, been submitted for a degree in any other University.*

BINDU.M.G.
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi- 682022

प्राक्कथन

साहित्य और समाज परस्पराश्रित है । समाज के बिना साहित्य और साहित्य के बिना समाज का कोई अस्तित्व ही नहीं । साहित्य के अध्ययन के लिए सबसे पहले समाज को समझना आवश्यक है । साहित्यकार समाजजीवी है । वह अपनी रचनाओं में अपने समय के जीवन की तमाम गतिविधियों को प्रस्तुत करने की कोशिश करता है । समय और समाज की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । मानव जीवन को उसकी समग्रता में अजमाने और संप्रेषित करने की क्षमता उपन्यास में ही सबसे ज़्यादा है ।

हिन्दी में उपन्यास का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में हुआ था । लेकिन उपन्यास के इतिहास को चर्चा मोटे तौर पर स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के रूप में की जा सकती है । स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास का जिक्र पूर्व प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास शीर्षकों में किया जा सकता है । क्योंकि हिन्दी उपन्यास की परंपरा में मुंशी प्रेमचन्द मील के पत्थर हैं ।

पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास मुख्यतया जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी और ऐतिहासिक रहे जो घटना चमत्कार पर आधारित थे । आम जनता की ज़िन्दगी से इन उपन्यासों का कोई सरोकार नहीं था । अकेले प्रेमचन्द ऐसे रचनाकार रहे हैं जिनकी औपन्यासिक रचनाओं में ही तत्सामयिक समाज की गतिविधियों का अंकन मिलता है । प्रेमचन्द के बाद में भी अनेक प्रतिभाधनी व्यक्तियों ने अपने-अपने ढंग से जीवन की व्याख्या करने का कार्य किया है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-जगत में डॉ. राही मासूम रज़ा ऐसी एक प्रतिभा है जिन्होंने मानव जीवन के अनदेखे एवं अनछुए पहलुओं को नए ढंग से अभिव्यक्त करने की सराहनीय कोशिश की हैं । रज़ा जी बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार हैं, जिन्होंने प्रायः साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई है । पर उपन्यास ही उनकी ख्याति का मुख्य आधार है । उन्होंने कुलमिलाकर आठ उपन्यास लिखे हैं । उनके उपन्यास तत्कालीन समाज का सही अंकन करने में पूरी तरह सक्षम हैं । रज़ा के उपन्यासों को भली भाँति विश्लेषित करके उनके समग्र अध्ययन का कार्य अभी तक नहीं हो पाया है । इसलिए मैं ने इस शोध प्रबन्ध में रजा के तमाम उपन्यासों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है । मेरे शोध प्रबन्ध का नाम है -"राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का अनुशीलन" । इसमें छः अध्याय हैं ।

पहला अध्याय है -"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास समय और समाज" । इसमें स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकार, उनके उपन्यास और उनमें अभिव्यक्त समय और समाज पर विचार किया गया है । साथ ही साथ इसमें राही मासूम रज़ा और उनके समकालीन उपन्यासकारों पर ज़ोर दिया गया है ।

दूसरे अध्याय "राही मासूम रज़ा कृति व्यक्तित्व" में रज़ा का जीवन-परिचय, साहित्य के क्षेत्र में रज़ा का प्रवेश, रज़ा का साहित्यिक दृष्टिकोण, उनका रचना-संसार, साहित्येतर क्रियाकलाप आदि विषयों पर विचार किया गया है ।

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मुसलमान जीवन संदर्भ शीर्षक तीसरे अध्याय में हिन्दी उपन्यासों में मुसलमान जीवन, इस्लाम के प्रति रज़ा का दृष्टिकोण, रज़ा के उपन्यासों में मुसलमान जीवन के विविध संदर्भ, रज़ा की दृष्टि का विन्यास आदि की चर्चा की गयी है ।

चौथा अध्याय है - रज़ा के उपन्यासों में नगर चेतना । इसमें हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त नगरचेतना, रज़ा के उपन्यासों में नगर चेतना आदि का विश्लेषण किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय की शीर्षक है - "राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना" । इसमें ग्रामीण चेतना और हिन्दी उपन्यास, रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना के विविध संदर्भ, आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

छठा अध्याय है "राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का शिल्प विधान"। इसमें आधुनिक हिन्दी उपन्यास का शिल्प, रज़ा के उपन्यासों का कथानक विधान, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, शैली, भाषा आदि पर विचार किया गया है ।

उपसंहार में इस अध्ययन से निकले निष्कर्ष को दिया गया है ।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर आदरणीय डॉ. आर. शशिधरन जी की देख-रेख में ही यह शोध प्रबन्ध तैयार किया गया है । विषय चुनाव से लेकर

इसकी प्रस्तुति तक उनकी निरंतर प्रेरणा, समयानुकूल निर्देशन तथा प्रोत्साहन इसकी पूर्ति में विशेष रूप से सहायक रहे हैं । उनके प्रति इस अवसर पर मैं अपनी अपार कृतज्ञता ज्ञापित कर रही हूँ ।

हिन्दी विभाग के वरिष्ठ आचार्य डॉ. मोहनन जो इस शोध कार्य के विशेषज्ञ रहे हैं । समय-समय पर उन्होंने सक्रिय सुझाव देकर शोध छात्रा की मदद की है । उन्होंने अनेक अवसरों पर उचित परामर्श देकर इस कार्य को सुलभ बनाया है । उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार, परामर्श और सुझाव के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ । इस संदर्भ में हिन्दी विभाग की वरिष्ठ आचार्या एवं माननीय संकाय की अध्यक्षा डॉ. पी. ए. शमीम अलियार जी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ, जिन्होंने लगातार प्रेरणा देकर मेरा हौसला बढाया है ।

विभाग के अध्यक्ष डॉ. ए. अरविन्दाक्षन जी से भी मैं परम आभारी हूँ कि वे इस शोधकार्य की संपूर्ति के लिए निरंतर प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

विभाग के अन्य गुरुजनों, पुस्तकालय के अधिकारियों एवं मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध का टंकन श्रीमती जयन्ती ने/की है, उनके प्रति भी मैं शुक्रगुज़ार हूँ ।

हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोचिन - 682022.

तारीख : .12. 2002.

बिन्दु. एम. जी

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय : एक 1 - 44

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : समय और समाज

प्रस्तावना - स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास - पूर्व प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास - प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास - प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियाँ - प्रमुख धाराएँ - व्यक्तिवादी उपन्यास, अस्तित्ववादी उपन्यास - सामाजिक प्रतिबद्धता - सामाजिक व समाजवादी उपन्यास - आँचलिक उपन्यास - यथार्थवादी सोच के उपन्यास - दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यास - नारी वादी उपन्यास - महानगरीय चेतना के उपन्यास - जीवनीपरक उपन्यास - निष्कर्ष ।

अध्याय : दो 45 - 75

राही मासूम रज़ा : कृती व्यक्तित्व

प्रस्तावना - पृष्ठभूमि - जीवन परिचय - शिक्षा - नौकरी पेशा - व्यक्तिगत जीवन - सामाजिक साहित्यिक दृष्टिकोण - साहित्य में प्रवेश - कृती व्यक्तित्व - कवि - कहानीकार - रेखाचित्रकार - निबन्धकार - उपन्यासकार - मुहब्बत के सिवा - आधा गाँव - हिम्मत जौनपुरी - टोपी शुक्ला - ओस की बूँद - दिल एक सादा कागज़ - सीन-75 -

पृष्ठ संख्या

कटरा बी आर्ज़ू - फिल्मी क्षेत्र में रज़ा -
निष्कर्ष ।

अध्याय : तीन 76 - 123

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मुस्लिम जीवन संदर्भ

प्रस्तावना - इस्लाम - जीवन संबंधी संकल्पना -
सामाजिक जीवन - रज़ा के उपन्यासों में मुस्लिम
जीवन संदर्भ - मुसलमानी ज़िन्दगी की विभिन्न
समस्याएँ - ज़मीन्दारी शोषण - जातिवाद -
सांप्रदायिकता - अवैध संतान - अवैध मातृत्व -
विधवा जीवन - दहेज प्रथा - तलाक - अंतर्जातीय
विवाह - रीति रिवाज़ - मोहर्रम - अंधविश्वास -
भाषाई समस्या - निष्कर्ष ।

अध्याय : चार 124 - 166

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नगरीय चेतना

प्रस्तावना - चेतना और नगरीय चेतना - नगरीय
चेतना और हिन्दी उपन्यास - वैयक्तिकता की
प्रमुखता - बनते बिगड़ते व्यक्तिगत और सामाजिक
संबंध - अस्मिता की तलाश - अकेलेपन और
अजनबीपन - अकेलेपन की संवेदना - राही मासूम
रज़ा के उपन्यासों में नगर बोध - आत्महत्या :
एक अभिशाप - गरीबी - भिक्षा वृत्ति - महंगाई-
वेश्या बनने की मज़बूरी - गरीबी के कारण

पृष्ठ संख्या

पारिवारिक जीवन में विषमता और व्यक्ति
स्वातंत्र्य की माँग - स्त्री-पुरुष के अनैतिक
संबंध - निष्कर्ष ।

अध्याय : पाँच 167 - 219

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना

प्रस्तावना - ग्रामीण चेतना और हिन्दी उपन्यास -
स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में बनते-बिगडते ग्रामीण
संबंध - पूँजीवादी सामन्तवादी व्यवस्था के खिलाफ
आवाज़ - ग्रामांचल की तमाम विशेषताएँ - ग्रामीण
जीवन में व्याप्त विघटन - ज़मीन्दारी शोषण के
खिलाफ संघर्ष - ग्रामीण जीवन का साकार रूप -
मोहभंग की स्थितियाँ - किसानों में नयी चेतना
का संचार - दमनकारी शोषकों के चिरपरिचित
किस्से और दबनेवाले शोषितों के संघर्ष के भी -
राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना-
गंगौली गाँव और वहाँ के लोग - निरीह ग्रामीण
जनता - अलगाववादी राजनीति का दखलअन्दाज़ -
ज़मीन्दारों का शोषण तंत्र - ऋणग्रस्तता -
बेरोज़गारी - भावात्मक एकता और ग्रामीण
चेतना का प्रतीक - अंधविश्वास - गाँव की समग्रता-
अशिक्षा और पारस्परिक झगडे - नारी-पुरुष के
अनैतिक संबंध - ऊँच-नीच भेदभाव - ग्रामीण भाषा ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय : छः 211 - 258

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का शिल्पविधान

प्रस्तावना - शिल्पविधान और हिन्दी उपन्यास - राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का शिल्पविधान- कथानक विधान - आधागाँव का कथानक विधान - हिम्मत जौनपुरी का कथानक विधान - टोपी शुक्ला का कथानक विधान - ओस की बूँद का कथानक विधान - दिल एक सादा कागज़ का कथानक विधान - सीन-75 का कथानक विधान - कटरा बी आर्ज़ू का कथानक विधान - पात्र और चरित्र चित्रण - कथोपकथन - देश काल और वातावरण - उद्देश्य - वर्णन शैली - भाषा शैली - बिंब और प्रतीक शैली का प्रयोग - निष्कर्ष ।

उपसंहार 259 - 267

संदर्भ ग्रन्थ सूची 268 - 280

xxxxxx

अध्याय : एक

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास:समय और समाज

प्रस्तावना

साहित्य और समाज का गहरा सरोकार है । साहित्य, दर-असल समाज और समय का प्रस्तुतीकरण है । इसलिए साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब या दर्पण कहा जाता है । समाज का प्रतिबिंब होने के नाते समाज की संपन्नता-विपन्नता, विलास-संयम, आशा-निराशा, जय-पराजय आदि सभी परिस्थितियाँ साहित्य में प्रतिबिंबित होती रहती हैं । साहित्य को हम महज समाज का प्रतिबिंब नहीं मान सकते । वह मानव जगत के लिए एक प्रेरक शक्ति भी हैं ।

साहित्य, समाज और समय

साहित्यकार अपनी रचनाओं में अपने समय का अंकन करने के साथ-साथ समाज को सच्चाई की ओर ले जाने की प्रेरक शक्ति भी बन जाते हैं । "साहित्य स्रष्टा अपने युग के सुख-दुखों को ही वाणी नहीं देते अपितु अपने आत्मसन्देश द्वारा समाज को उद्‌बुद्ध भी करते हैं ।"[1] साहित्यकार युग के यथार्थ को अपनी संवेदना एवं व्यक्तित्व के अनुरूप ढालकर उसे नए रूप में प्रस्तुत करते हैं । जो कुछ साहित्य के माध्यम से साहित्यकार प्रस्तुत करते हैं वही अपने समाज का है । साहित्यकार प्रत्येक स्तर पर मनुष्य की ज़िन्दगी से जुडे हुए हैं । वे मनुष्य समाज में रहते हैं, एक विशेष समय में जीते हैं । उसके लिए अपना जीवन परिवेश कच्चे माल का काम देता है । अतः साहित्यकार जिस समाज में रहता है उस समाज की तत्कालीन परिस्थितियों से अलग होकर नहीं रह सकते । इसलिए साहित्यकार जाने-अनजाने अपने समय के समाज का चित्रण ही अपनी रचनाओं में करते हैं ।

।. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - डॉ. शंभुनाथ पाण्डेय - पृ. ।

समसामयिक घटनाओं से निरपेक्ष रहकर अच्छे साहित्य का सृजन संभव नहीं होता । साहित्यकार तत्कालीन परिस्थितियों को कल्पना का पुट देकर ही प्रस्तुत करते हैं । केवल विचारधारा के प्रस्तुतीकरण से एक श्रेष्ठ साहित्य की सृष्टि नहीं होती । उसके लिए कलात्मक अभिव्यक्ति की भी आवश्यकता होती है । तभी साहित्य अत्यन्त जीवन्त और ज्ञानवर्द्धक भी बन जाता है । "यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी सच्चा साहित्यकार और उसका साहित्य समसामयिक सामाजिक स्थिति से विच्छिन्न नहीं होता है । किन्तु वह अपने समकालीन समाज का प्रतिबिंब मात्र भी नहीं होता वह उसे बदलना भी चाहता है और अपने आदर्श के अनुकूल बनाना भी चाहता है । साहित्य की प्रवृत्तियाँ और साहित्यिक आन्दोलनों का स्वरूप समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों से निर्धारित होता है । साहित्य अपने समकालीन समाज के साथ ही चलता है और उसके विरोध में भी खड़ा होता है ।"[1]

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि एक श्रेष्ठ साहित्य सृष्टि का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन समय और समाज का अंकन है । समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों से बिछुडकर रहने से उत्तम साहित्य की रचना संभव नहीं होती उसके लिए तत्कालीन परिस्थितियों से मिलजुलकर रहना अनिवार्य है ।

समय और समाज की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपन्यास ही सर्वाधिक समर्थ और लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । उपन्यास के बारे में हम यही बताया जा सकता है कि वह मानव जीवन की लंबी गाथा है ।

---

1. साहित्य और सामाजिक मूल्य - डॉ. हरदयाल - पृ. 36

उपन्यास का फलक इतना विस्तृत है कि उसमें समाज और समय का चित्र विस्तार से खींचा जा सकता है । इसलिए धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - व्यापक अर्थ में उपन्यास "गद्य साहित्य का अन्यतम रूप है जिसका आधार कथा है चाहे वह सीधे मनुष्यों की हो या मनुष्येतर जीव या निर्जीव प्रकृति की अथवा वह सच्ची हो अथवा कल्पित । उसे उपस्थित करने में कल्पना का प्रयोग आवश्यक है । कुतूहल की सृष्टि तथा मानवीय मनोवेगों के उद्दीपन द्वारा उसमें रोचकता और किसी नीति या सिद्धांत संबंधी विचारों की उत्तेजना द्वारा उसमें गरिमा का समावेश वाँछनीय है ।"[1] महावीरमल लोढा के अनुसार -"उपन्यास वह काल्पनिक गद्यविधा का गतिशील लेखन है जो जीवन की (यथार्थ और संवेगात्मक) अभिव्यक्ति, व्याख्या, आलोचना या टिप्पणी और यथार्थ का दिग्मय ही नहीं जीवन का कलात्मक सृजन है ।"[2]

साहित्य-जगत में उपन्यास सशक्त विधा है । लोकरुचि जितने उपन्यास के साथ है उतने किसी अन्य विधा के साथ नहीं । इतिहास से लेकर दर्शन जैसे गंभीर विषय तक को उपन्यास के घटना-चमत्कार के साथ मिश्रित करके सरस एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है । जीवन का जितना सुन्दर सर्वांगीण चित्र उपन्यास उतार सकता है उतना कोई अन्य विधा नहीं । मानवीय समस्याओं को उसकी समस्त विशिष्टताओं के साथ अपने अन्तर समेटने की क्षमता उपन्यास में है । हम निबन्ध या समालोचना द्वारा किसी के मन में जो भावना या विचार नहीं बिठा सकते वे उपन्यास की कथाप्रधान शैली में बड़ी सफलता से बिठा सकते हैं । "साहित्य के अन्य रूपों

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - डा. धीरेन्द्र वर्मा - भाग । - पृ. 155
2. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. महावीरमल लोढा - पृ. 4

की अपेक्षा उपन्यास में जीवन की यथार्थता, सत्यता, आवश्यकताएँ, संभावनाएँ और स्वतंत्रता, व्यक्तित्व और मूल्यों का निरूपण अधिक होता है । जानते हुए भी हम जिन बातों को नहीं जानते उन्हें उपन्यासकार अभिव्यक्ति प्रदान कर हमारे समक्ष साकार बना देते हैं । उनकी रचना से समाज में प्रचलित सत्य की अनुभूति घनीभूत हो उठती है जीवन की यथार्थता और सत्य को उभारने में ही उपन्यास का सामाजिक महत्व है । इस सामाजिक महत्व का निर्वाह करने से वह पाठकों में मानवता के नए आदर्श और मानव मूल्यों की स्थापना करता है ।"[1]

हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के समान उपन्यास साहित्य का विकास भी अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क एवं असर से हुआ । हिन्दी में उपन्यास का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में हुआ । हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकासक्रम को मोटे तौर पर दो कालों में रखकर प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. स्वतंत्रता पूर्व का हिन्दी उपन्यास
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

स्वतंत्रता पूर्व का हिन्दी उपन्यास

स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास की चर्चा पूर्व-प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास और प्रेमचन्दोत्तर युगीन (स्वतंत्रता पूर्व तक) हिन्दी उपन्यास आदि शीर्षकों में रखकर की जा सकती है । क्योंकि हिन्दी उपन्यास परंपरा में मुंशी प्रेमचन्द एक केन्द्रबिन्दु है

---

1. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ, ।।

जिनके दोनों ओर उपन्यास की भिन्न रेखाएँ साफ दिखाई देती हैं । प्रेमचन्द के पूर्व का हिन्दी उपन्यास घटनाप्रधान थे । कोरा मनोरंजन और सुधारवादी भावना उस काल के उपन्यास का उद्देश्य रहा है । "प्रेमचन्द के पूर्व जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी, ऐतिहासिक, सामाजिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे गये किन्तु ये सभी घटना चमत्कार पर आधारित हैं ।"[1] पूर्व प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों का आम आदमी की ज़िन्दगी से कोई सरोकार नहीं था । प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही पहली बार जनसामान्य को वाणी मिली । प्रेमचन्द ने कला और जीवन का संतुलित सामंजस्य उपस्थित करके अपनी मौलिक प्रौढ़ एवं गरिमामयी रचनाओं से हिन्दी उपन्यास साहित्य को गौरवान्वित करने का सराहनीय कार्य किया । प्रेमचन्द के उपन्यास पहली बार भारतीय समाज और समय की गतिविधियों से लगातार जुड़े रहे ।

प्रेमचन्द नवीन क्रांतिकारी चेतना के अग्रदूत बनकर उपन्यास क्षेत्र में आए । हिन्दी उपन्यासों का वास्तविक प्रारंभ प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए । क्योंकि उन्हीं के समय में उपन्यास प्रेमकथा, तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी चमत्कारों तथा धार्मिक उपदेशात्मक क्षेत्रों को छोडकर समाज के क्षेत्र में आया । प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस युग के राजनीतिक और सामाजिक भारत साकार हो उठा । "प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यासों में भारतीय जनजीवन का संपर्क नहीं दिखायी देता, किन्तु एकाएक प्रेमचन्द के उपन्यासों में वही चेतना अपने शतसहस्र रूपों में गतिमान होती हुई परिलक्षित होती है ।"[2]

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र - पृ. 21
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - कान्ति वर्मा - पृ. 10

प्रेमचन्द के उपन्यास

प्रेमचन्द का रचनाकाल सन् 1903 से लेकर 1936 तक है । यह भारतीय सामाजिक जीवन में परिवर्तन का समय था । "वस्तुत: 1935-36 तक का युग भारत में सामन्तवाद के अभ्युदय का अन्तिम तथा पूँजीवादी - अर्थव्यवस्था के विकास का प्रथम चरण था ।"[1] यह युग परंपराओं एवं अन्धविश्वासों के प्रति आस्था रखनेवाला युग था । लेकिन गाँधीवाद एवं मार्क्सवाद के प्रभाव ने इन अन्धविश्वासों एवं परंपराओं को तोडने का प्रयास किया । टालस्टाई, मार्क्सिम गोर्की, रूस्सो आदि पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य पर पडा ।

प्रेमचन्द के उपन्यास बदलते सामाजिक यथार्थ का सही दस्तावेज़ है । उनके उपन्यासों को प्रमुख रूप से दो वर्गों में रखा जा सकता है । पहला जो शुद्ध रूप से सामाजिक है, दूसरा वे हैं, जिनकी कथावस्तु सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र से संबद्ध है । पहली कोटी में "सेवासदन", "वरदान", "निर्मला", "प्रतिज्ञा" आदि आते हैं दूसरी में "प्रेमाश्रम", "रंगभूमि", "कायाकल्प", "कर्मभूमि" तथा "गोदान" आते हैं । उनके प्रारंभिक उपन्यासों में गाँधीवाद से प्रेरित आदर्शवाद का स्वर मुखरित है । लेकिन "प्रेमाश्रम" से लेकर बाद में लिखे उपन्यासों मं उनकी यथार्थवादी विचारधारा का परिचय मिलता है । "गोदान" उनका अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें किसानों और मज़दूरों के यथार्थ ज़िन्दगी का चित्रण किया गया है । "प्रारंभ में प्रेमचन्द ने यथार्थ और आदर्श में समन्वयन किया था । किन्तु धीरे धीरे प्रेमचन्द समन्वयन और आदर्शवादिता को तिलांजलि देकर यथार्थ की कठोर भूमि पर आए । उन्होंने

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डा.कान्तीवर्मा - पृ.11

मानव की संभावनाओं एवं दुर्बलताओं का सम्यक चित्रण किया है ।[1] इस प्रकार प्रेमचन्द के औपन्यासिक दृष्टिकोण में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की अपेक्षा बहुत अधिक अन्तराल दिखाई पड़ता है । उन्होंने ही हिन्दी साहित्य का दिशा-निर्देश दिया था । यहाँ से कथा साहित्य समय और समाज के प्रति महान दायित्व का वहन करनेवाला सौन्दर्यपूर्ण साहित्य शाखा बन जाता है । तत्कालीन भारतीय जीवन में असाधारण गतिशीलता थी । प्रेमचन्द का इस जीवन से घनिष्ठ परिचय था । उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द की बड़ी सफलता इस बात में भी हैं कि उन्होंने अच्छी किस्सागोई को व्यापक रचना दृष्टि से जोडा है । उन्होंने हिन्दी उपन्यास को सतही रोमांच और स्थूल रोमांस की मज़बूत जकड़ से निकालकर अपने समय के समाज की सच्चाई से **जोड़कर** सम्मानजनक ऊँचाई पर पहुँचा दिया ।

प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय बेचैन शर्मा उग्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, चतुर्सेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, निराला आदि प्रमुख हैं । इन उपन्यासकारों में अनेक प्रेमचन्द के समय से लेकर आधुनिक युग में भी लिखते रहे हैं । परन्तु उनके दृष्टिकोण में समय के बदलाव को उसी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करने की दिलचस्पी नहीं दिखाई देती, जिस तरह प्रेमचन्द कर गये । इसलिए उनके उपन्यासों की गणना आधुनिक काल में न कर प्रेमचन्द के समय में ही कर यहाँ दी गयी है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी उपन्यास के कलेवर में कुछ बदलाव सा दिखाई पडता है । अतः प्रेमचन्द के बाद किसानों और उनकी

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. श्रीकृष्णलाल, पृ. [illegible]

समस्याओं पर लिखना बन्द सा हो गया । अतः प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में कुल मिलाकर मध्यवर्गीय जीवन और कुण्ठाओं की ही मीमांसा हुई । सन 1920-30 के बीच का समय राजनीति ही जनता के विचारों को घेर कर रखा था । परन्तु क्रमशः आर्थिक और सामाजिक स्थिति के दृढ होने से वह राजनीति से दूर होकर अपनी मानसिक तुष्टि को आध्यात्म, मनोविज्ञान और सॉस्कृतिक विषयों में खोजने लगा । कभी वह मूल-प्रवृत्तियों की स्वतंत्रता का प्रतिपादन करने लगा कभी मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा मन की अतल गहराईयों में डूबकर मन की गुन्थियों को सुलझाने में संलग्न दिखाई पडा । यहाँ तक आते आते प्रेमचन्द परंपरा का परिसमाप्ति और उपन्यास के विकास की नयी धारा हमारे सामने दृष्टिगोचर होती है । "नई परिस्थितियों, परिवर्तनों और चेतना के प्रकाश में पुराने समाधान फीके पडने लगे थे । यहाँ तक आते आते समझौते का स्वर प्रायः समाप्त हो गया और पुराने विश्वासों की नींव दह गयी । यहीं पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की विचारभूमि की संधिरेखा है जो पिछले युग से अधिक गहरी, व्यापक, मूलनिष्ठ और क्रांतिदर्शी है और जिसमें नए सामाजिक मूल्यों, नवीन परिस्थितियों, नैतिक मूल्यों और मनोविज्ञान की नई नई उपलब्धियों का प्रकाश है । जिसने चिन्तन की गहराइयों के साथ रहस्य की वीथियों का भी निर्माण किया है ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह जाहिर होता है कि हिन्दी उपन्यास अपने प्रारंभिक अवस्था में यद्यपि अयथार्थता एवं मायाजाल के जंजीरों में जकडता रहा तथापि आगे-चलकर वह समाज और समय के यथार्थ को पहचानने लगा । सामाजिक समस्याओं के अन्तरंग यथार्थ के संप्रेषण के सिलसिले में वह जनसाधारण

---

1. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डा. कुंवरपाल सिंह - पृ. 27

के साथ अपना घनिष्ठ संबंध जोडकर क्रांतिकारी कदम उठाता भी है । प्रेमचन्दजी ने इस क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रारंभ किया था । उनके बाद उनके परवर्ती रचनाकारों ने इस प्रवृत्ति को आगे बढाया भी ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

स्वतंत्रता परवर्ती राजनीतिक घटनाओं और समूचे सामाजिक आर्थिक सन्दर्भों ने तमाम हिन्दी साहित्य पर गहरा असर डाला । विभाजन की विभीषिका, आज़ादी मिलने का उत्साह और आर्थिक कठिनाइयों के मिले-जुले बोध ने वस्तु और शिल्प के स्तरों पर हिन्दी उपन्यास में एक युगान्तर-सा उपस्थित किया । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास अपने समाज और समय को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल हो सके । उपन्यास की कथ्यगत भंगिमा बदलने लगी थी । आज़ादोत्तर युग में उपन्यासकारों की दृष्टि उपेक्षित अंचलों की ओर भी गयी । इस प्रकार आँचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश हुआ । अस्तित्ववादी चिन्तन के असर से अजनबीपन और अकेलेपन की अनुभूतियों को लेकर उपन्यास लिखे गये । स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीति आम जनता से बहुत अधिक नज़दीकी से जुड गयी । राजनीति में विसंगतियाँ पनपने लगी तो लेखक उसका पर्दाफाश उपन्यासों में करने लगे । नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के नतीजतन नगरों-महानगरों में पूँजीपतियों द्वारा किये जानेवाला शोषण भी उपन्यासकारों का विषय रहा । परिवार, मुहल्ले और गाँव के स्तर पर उभरती हुई संबंधहीनता और हृदयहीनता भी उपन्यासों के कथ्य बनी । स्त्री-पुरुष संबंधों में जो आमूल परिवर्तन हुआ है, उसे और सैक्स के प्रति आज की मान्यताओं और नज़रियों को भी देखने में आज का उपन्यास किसी भी तरह से असमर्थ नहीं है । युवा उपन्यासकार की जो पीढी उभरकर सामने आयी है,

उसने परंपरागत कथा रूढ़ियाँ तोड़ी हैं, -कथ्य एवं कथन की दृष्टि से, शिल्प की दृष्टि से भी ।"[1]

हिन्दी उपन्यास के अध्येताओं ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास को अनेक वर्गों में विभक्त किया है । डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास की दो प्रमुख धाराएँ हैं - अन्धा विद्रोह नितांत वैयक्तिकता और घोर अन्तर्मुखता के उपन्यास (अपने अपने अजनबी", "वे दिन" "नदी के द्वीप" आदि) और मानव मूल्य और मर्यादा स्थापित करनेवाले उपन्यास (बूँद और समुद्र, अमृत और विष, सूरज का सातवाँ घोड़ा", अलग अलग वैतरणी, यह पथ - बंधु था, मैला आँचल और आप का बंटी आदि ।[2]

डॉ. बच्चन सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास को पाँच वर्गों में विभक्त किया है -

(1) ग्रामांचल के उपन्यास

(2) मनोवैज्ञानिक उपन्यास

(3) सामाजिक चेतना के उपन्यास

(4) प्रयोगशील उपन्यास

(5) आधुनिकता बोध के उपन्यास

डॉ. सिंह ने महानगरीय माहौल में लिखे गये उपन्यासों का भी एक महत्वपूर्ण वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । ऐसे उपन्यासों को उन्होंने तीन वर्गों में बांटा हैं ।[3]

(1) यौन विच्युतियों में पनाह खोजनेवाले उपन्यास (बेघर, सूरजमुखी अंधेरे के आदि)

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-पृ. 8।
2. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुरेश सिन्हा - पृ. 140
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चनसिंह - पृ. 393

§2§ दी हुई मानव स्थितियों में मिसफिट व्यक्तियों को चित्रित करनेवाले उपन्यास§"रुकोगी नहीं राधिका", "आप का बंटी" आदि§

§3§ व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करनेवाले उपन्यास §यह पथ बंधु था, एक चूहे की मौत आदि§

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने कोई स्पष्ट वर्गीकरण नहीं प्रस्तुत किया है । किन्तु उनकी कृतियों से लगता है कि उन्होंने 1947 से 1975 के बीच लिखे गये उपन्यास को आधुनिकता की दृष्टि से दो वर्गों में रख दिया है पहला वर्ग 1947 और 60 के बीच लिखे गये उपन्यासों का है जिनमें आधुनिकता का बोध तेज़ी से उभरा है । सन् 1960 के बाद लिखे गये उपन्यासों का दूसरा वर्ग है जिनमें आधुनिकता बोध गहराने लगता है ।[1]

डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की पाँच प्रवृत्तियाँ बताई हैं जैसे आधुनिकताबोध और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रवृत्ति, यथार्थ की व्यापक स्वीकृति, आँचलिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता और टेकनीक के मोह की प्रवृत्ति ।[2]

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने द्वितीय महायुद्धोत्तर युग के उपन्यासकारों को दो वर्गों में विभक्त किया है §1§ सैक्स, परिवार, विघटन, व्यक्ति आदि की छोटी सी दुनिया में विचरण करनेवाले बहुसंख्यक उपन्यासकारों का वर्ग और §2§ परिवर्तित परिवेश में दायित्वबोध का परिचय देनेवाले प्रगतिशील उपन्यासकार ।[3]

---

1. हिन्दी उपन्यास पहचान और परख -§सं.§ इन्द्रनाथ मदान - पृ. 8।
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी - पृ. 150

डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल ने लिखा है कि स्वातंत्र्योत्त काल में हमें पाँच प्रकार के उपन्यास मिलते हैं -

1. समाजवादी विचारपरक उपन्यास
2. मनोविश्लेषणात्मक विचारपरक उपन्यास
3. व्यक्तिवादी विचारपरक उपन्यास
4. अस्तित्ववादी विचारपरक उपन्यास
5. आँचलिक जीवनपरक उपन्यास

उपर्युक्त सभी वर्गीकरण, प्राय: उपन्यास के कथ्य के आधार पर किया गया है, लेकिन इनमें कोई भी वर्गीकरण स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की सभी प्रवृत्तियों का पूरा परिचय देने में समर्थ नहीं है । स्वतंत्रता के बाद इतिहास पर आधारित "बाणभट्ट की आत्मकथा", "चारुचन्द्र लेखा", "पुनर्नवा", "एकदा नैमिषारण्ये" जैसे सांस्कृतिक उपन्यासों की गणना इसमें नहीं की गयी है । इसलिए समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियों को भी मिलाकर स्वातंत्र्योत्तर युग में रचित तमाम उपन्यासों को निम्नलिखित वर्गों में रखना समीचीन लगता है -

1. व्यक्तिवादी उपन्यास
2. अस्तित्ववादी उपन्यास
3. सांस्कृतिक उपन्यास
4. सामाजिक और समाजवादी उपन्यास
5. आँचलिक उपन्यास
6. यथार्थवादी उपन्यास
7. दलित जीवन पर आधारित उपन्यास

---

8. स्त्रीवादी उपन्यास
9. महानगरीय चेतना के उपन्यास
10. जीवनीपरक उपन्यास
11. व्यंग्य उपन्यास आदि ।

आगे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा ।

व्यक्तिवादी उपन्यास

स्वतंत्रता के बाद लिखे गये उपन्यासों में व्यक्ति अपने समूचे यथार्थ और नियति के साथ प्रस्तुत हुआ है ।"स्वतंत्रता परवर्ती बहुसंख्यक उपन्यास व्यक्ति केन्द्रित हैं । व्यापक जनजीवन को या तो उपन्यासकारों ने स्पर्श ही नहीं किया और यदि किया भी है तो यदि किसी एक व्यक्ति के संदर्भ में और वह भी नाममात्र के लिए ।"[1]

तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के प्रति विद्रोह और एकाकीपन ही व्यक्तिवादी उपन्यासों के उद्भव का मूल कारण है । व्यक्तिवाद उपन्यासों में प्रमुख पात्र व्यक्ति ही है । जीवन संबंधी विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति की निजी धारणाओं की ही प्रमुखता इसमें है । व्यक्तिवादी उपन्या के पात्र शिक्षित, अहंकेन्द्रित , आत्मविश्वासी और चिन्तनशील प्राणी होते हैं । इन उपन्यासों में व्यक्ति के अनुभवों को ही प्रमुखता मिलती है । मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को, व्यक्ति की जीवन संबंधी धारणाओं को प्रमुखता देनेवाला उपन्यास ही व्यक्तिवादी उपन्यास है । "वे सभी उपन्यास व्यक्तिवादी कहे जायेंगे जिनमें व्यक्तिगत जीवन घटना, व्यक्तिगत चरित्र,

---

1. द्वितीय महायद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर

व्यक्तिगत जीवन दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण या निर्देश रहा करता है ।"[1]

व्यक्तिवादी उपन्यासों में व्यक्ति को केन्द्र मानकर औपन्यासिकता का सृजन किया जाता है । इसमें सामाजिकता- केवल व्यक्ति की प्रमुखता दिखाने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में प्रकट होते हैं । व्यक्तिवादी उपन्यासों में व्यक्ति के मनोभाव और विचार ही मुखर है । व्यक्ति के सुखदुखम जीवन का दर्शन ही व्यक्तिवादी उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता है । अज्ञेय, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी ही व्यक्तिवादी उपन्यासकारों में प्रमुख हैं ।

अज्ञेय के "नदी के द्वीप", जैनेन्द्र के "व्यतीत", इलाचन्द्र जोशी के "मुक्तिपथ", नरेश मेहता के "डूबते मस्तूल", डॉ. देवराज के "पथ को खोज", "अज्ञेय की डायरी" आदि व्यक्तिवादी उपन्यासों में प्रमुख हैं ।

वर्तमान जीवन के कटु यथार्थ और दुरितपूर्ण परिस्थिति आधुनिक मानव को स्वप्न देखने से रोकती है । आधुनिक व्यक्ति के जीवन में ऐसी कटु परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिससे वह भविष्य के नये और सुनहरे स्वप्न देखने के लिए डरता है । अज्ञेय के "नदी के द्वीप" की रेखा जीवन की कटु यथार्थताओं को सहते-सहते भविष्य का स्वप्न देखना व्यर्थ समझती है और वर्तमान पर विश्वास करती है । "मैं ने भविष्य मानना ही छोड दिया, भविष्य हुई नहीं एक निरन्तर विकासवान वर्तमान ही सब कुछ है ।"[2]

---

1. नया साहित्य : नये प्रश्न - नन्द दुलारे वाजपेयी - पृ. 184
2. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 42

व्यक्तिवादी उपन्यास के पात्र प्रत्येक क्षण को महत्व प्रदान करनेवाले हैं । हमारे जीवन में प्रत्येक क्षण का अपना महत्व है । "नदी के द्वीप" की रेखा हर एक क्षण को "मैं क्षण से क्षण तक जीती हूँ न इसलिए कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नहीं छोड़ पाता । मैं जैसे हर क्षण अपने को पुन: जिला लेती हूँ ।"[1]

नरेश मेहता के "डूबते मस्तूल" की रंजना प्रत्येक क्षण में विश्व रखती है । किसी अपरिचित युवक में अपने पूर्व-प्रेमी की आकृति पाकर उसे प्रेमी मानकर उस व्यक्ति द्वारा अपने मन के बोझ को दूर करना चाहती है । उनसे मिलन के क्षणों का उसके लिए अत्यधिक महत्व है ।

व्यक्तिवादी उपन्यासों में "अहम" की भावना को प्रमुखता दी जाती है । "नदी के द्वीप" की रेखा "अहम" के कारण भुवन के निर्णय को ठुकरा देती है । इलाचन्द्र जोशी के "मुक्तिपथ" उपन्यास के पात्र राजीव में अहं की प्रबलता है । घरवालों के स्नेह से वंचित क्रांति के क्षेत्र में पराजित राजनीतिक नेताओं के स्वार्थ से क्षुब्ध बेकार नौकरी की तलाश में भडकते फिरते रहनेवाले राजीव का जीवन अहं ग्लानी या नीरसता से भर गया है । अंत में सुनन्दा की प्रेरणा से वह कर्मशील बन जाता है । किन्तु सुनन्दा को भी वह ठुकरा देता है ।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के "उनसे न कहना" उपन्यास का पात्र "कीर्तिदेव" और "कल्याणी" का दांपत्य इसलिए असफल हो जाता है कि दोनों पति-पत्नी अहंभावना से ग्रस्त है ।

व्यक्तिवादी उपन्यासों में प्रेम विवाह आदि के संबंध में नवीन दृष्टिकोण को व्यक्त किया गया है । प्रेम संबंधी व्यक्तिगत निर्णय को ही इसमें अभिव्यक्ति दी गयी है । विवाह के पहले और बाद के प्रेम अलग है । वे प्रेम और विवाह एक ही व्यक्ति से करना अनावश्यक मानते हैं । ज़िन्दगी के सुख की ही यहाँ प्रमुखता है । व्यक्तिगत संबंध का नहीं -"राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा जिसका साथ तुम्हें प्रीतिकर, वांछनीय और कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात न सुनना जान लेना कि अब स्वतंत्र रूप में जोखिम करने का समय आ गया ।"[1]

आधुनिक जीवन व्यस्तता से ग्रस्त है । आज व्यक्ति जीवन को किसी न किसी प्रकार सुख सुविधापूर्ण बनाना चाहता है । सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति हमेशा दौड-धूप करते रहते हैं । आज जीवन का अर्थ बन गया है - सुख सुविधाओं में पूर्णता । "जीवन एक बार का वरण नहीं है । वह अनन्त का वरण है, प्रत्येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते है ।"[2]

इस प्रकार मानव मन की पीडा, अतृप्ति, एकाकीपन आदि भावनाओं को व्यक्तिवादी उपन्यासों में स्थान मिला है । निष्कर्ष रूप से व्यक्तिवादी उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्तिवादी जीवन दर्शन को ही प्रमुखता मिली है । व्यक्तिवादी हमेशा समाज का पूर्ण तिरस्कार कर अपनी मर्जि के अनुसार ज़िन्दगी बिताते हैं । वे अपने अहं को ही सबसे अधिक प्रमुखता देते हैं । आधुनिक शिक्षित मध्यवर्ग व्यक्ति निरन्तर अपने व्यक्तित्व के निर्णय में संलग्न रहता है । हमारे समाज की तत्कालीन परिस्थिति ही ऐसे व्यक्तियों के जन्मदाता हैं । इसलिए ही व्यक्तिवादी उपन्यास के उद्भव का मूल कारण भी सामाजिक है ।

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 92
2. वही - पृ. 69

अस्तित्ववादी उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक परिस्थितियाँ ही अस्तित्ववादी उपन्यास के उद्भव का मूलकारण हैं । मृत्यु की आशंका से उत्पन्न भय, त्रास, निराशा तथा पीडा अस्तित्ववादी दर्शन के मुख्य तत्व हैं । पीडा और दुख को अस्तित्ववादी अनिवार्य मानता है । दुख ही व्यक्ति को सुख का बोध कराता है । दुख के कारण व्यक्ति अपने अस्तित्व के बारे में जानते हैं । अस्तित्ववादी ईश्वर में विश्वास नहीं करते । मानव को निरंतर वैयक्तिकता की ओर उन्मुख होनेवाली प्रवृत्ति को लक्ष्य कर, पाश्चात्य-प्रभावस्वरूप अस्तित्ववादी दर्शन का उदय हुआ । अस्तित्ववाद में व्यक्तिवाद की प्रमुखता है । अकेलेपन, आसन्न अंत की चेतना, क्षण क्षण मृत्यु का भय, वर्तमान परिस्थिति से उत्पन्न मानसिक पीडा, दूसरों से अलग किये जाने की चेतना, ईश्वर, धर्म, अमरत्व आदि के प्रति अनास्था, क्षणिकता में विश्वास, अजनबीपन आदि मानसिक चेतना ने ही आधुनिक मनुष्य को अस्तित्ववाद की ओर उन्मुख किया । अस्तित्ववादी केवल जीवन में अस्तित्वबोध का अनुभव नहीं करता उसको अभिव्यक्त भी करता है । अपने अनुभव के आधार पर व्यक्ति अस्तित्ववादी बन जाता हैं "अस्तित्ववाद मानव जीवन के अर्थ-बुद्धि द्वारा नहीं अनुभूति चेतना द्वारा पाना चाहता है और इस प्रक्रिया में उसकी दृष्टि असंलग्न निरपेक्ष द्रष्टा मात्र की न होकर जीवन में भोक्ता अभिनेता की दृष्टि है वह जीवन जीता है साथ ही उससे तटस्थ रहकर उसके अर्थ पाता चलता है ।"[1]

अस्तित्ववाद की सबसे बडी विशेषता उसकी अहंवादिता से उत्पन्न स्वार्थ भावना है । जीवन का शाश्वत सत्य मृत्यु, जीवन की

क्षणिकता के कारण उत्पन्न भय, दुख-निराशा आदि तत्व व्यक्ति को जिज्ञासा करने के लिए विवश करते हैं । स्वार्थता से ग्रस्त व्यक्ति अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परपीडन में सुखानुभूति का अनुभव करता हैं ।

सामान्यतः व्यक्तिवादी उपन्यास अस्तित्ववादी उपन्यास ही है । किन्तु हिन्दी उपन्यास-साहित्य में कुछ उपन्यास ऐसे हैं जो पूर्ण रूप से अस्तित्ववाद से ओतप्रोत हैं । अज्ञेय के "अपने अपने अजनबी" इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इसमें अस्तित्ववादी उपन्यासों की सामान्यतः सभी अनुभूतियों का स्वांशीकरण हुआ है । उषा प्रियंवदा की "रुकोगी नहीं राधिका", "पचपन खम्भे लाल दीवारें" आदि उपन्यास अस्तित्ववादी विचारधारा के अन्तर्गत आनेवाले हैं । "अपने अपने अजनबी" में 'योके' का जीवन अकेलेपन और अजनबीपन का भण्डार है । अकेलेपन और गरीबी के कारण उसके मन में मृत्यु का भय उत्पन्न होता है । ऐसी स्थिति में वह अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयत्न करता है । यह मनोभाव उसको आत्मीय बना देता है ।

योके का प्रतिक्षण सेलमा की मृत्यु की कल्पना करना तथा उसकी उपस्थिति को अस्वीकार करना भी अस्तित्ववादी दर्शन के उक्त सत्य को व्यक्त करता है । सेलमा के फोटोग्राफ की दूकान जलने व उसमें जल में कूदकर मरने को उचित समझकर धडाके के साथ अपने द्वार बन्द कर पर्दा खींचने और चाय घर में जाने की गतिविधियाँ परपीडन में सुखानुभूति को व्यक्त करती है ।

जीने की प्रबल इच्छा योके में है । योके के अनुसार जीवित व्यक्ति जीने का आकांक्षी होता है । उसी प्रकार सेलमा योके के

पास रहती हुई भी अकेली और अजनबी है मानो उसमें कोई परिचय न हो । ईश्वर और मृत्युसंबंधी आस्थापूर्ण दृष्टिकोण ही अस्तित्ववादियों में दिखाई पडता है । अस्तित्ववादी जीवन दर्शन में वैयक्तिक अनुभूतियों की ही प्रमुखता है । अस्तित्ववादी निरन्तर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रयत्नरत है ।

आधुनिक जीवन में अस्तित्ववादी व्यक्ति दूसरों के साथ समझौता नहीं करते । अपने स्वार्थ एवं अहम् की रक्षा के लिए वह हमेशा अकेला रहना चाहता है । इसलिए ही अजनबीपन नामक भाव उसके व्यक्तित्व में अनजाने ही उत्पन्न हो जाता है । व्यक्तिवादी भावनाओं के कारण ही व्यक्ति अपने अलावा दूसरों की उपस्थिति को स्वीकार करना व्यर्थ समझता है । अस्तित्ववादी जीवन दर्शन का यही संकुचित मनस्थिति आधुनिक मानवजीवन के स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण का परिणाम है ।

सांस्कृतिक उपन्यास

"संस्कृति का व्यापक अर्थ किसी जीवन पद्धति से है, जिसमें उसकी कला शिल्प, विश्वास, मान्यताएँ, मूल्य, जीवन-दर्शन, संस्कार, प्रथाएँ, धर्म आदि सब समाहित हैं ।"[1] "स्वतंत्रता परवर्ती युग में इतिहास और संस्कृति के आधार पर रचित उपन्यासों को सांस्कृतिक उपन्यास कहा जा सकता है । हज़ारी प्रसाद द्विवेदी इस धारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं । उनके उपन्यास एकदम अलग रंग के हैं । उन्होंने इतिहास के बजाय संस्कृति का आश्रय अधिक लिया है ।"[2] संस्कृत पांडित्य और लोकजीवन में निष्ठा प्राय: इन दो विरोधी तत्वों

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी - पृ. 30।
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 253

से लेखक का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है । उनके कथा-विधान में संस्कृत आख्यायिका और लोक जीवन में प्रचलित किस्सों का संयोग है । "अनामदास का पोथा"(1976), "चारु चन्द्रलेख" (1963), "पुनर्नवा"(1973), उनके स्वतंत्रता परवर्ती युग में रचित उपन्यास है । "बाणभट्ट की आत्मकथा" (1946) स्वतंत्रता पूर्व का उपन्यास है । समय चित्रण की नज़र से देखा जाय तो, "अनामदास का पोथा" में औपनिषदिक युग को लिया गया है जो क्रमबद्ध इतिहास के पहले का युग है । "पुनर्नवा" का समय चौथी शताब्दी का है ।

"चारुचन्द्रलेख" के ज़रिये द्विवेदीजी ने अंधकाराच्छन्न भारतीय जीवन को प्रस्तुत किया है राजा सातवाहन और चन्द्रलेखा इस अंधकारमय भारतीय जीवन के प्रकाशपुँज के समान है । इस उपन्यास में तत्सामयिक तंत्र-मंत्र का उल्लेख है । उस समय का भारतीय समाज मिथ्याडम्बरों, धार्मिक अंधविश्वासों और अतिचारों से निमज्जित था । नागनाथ, रानी चन्द्रलेखा के माध्यम से उपन्यासकार ने तांत्रिक साधना के अत्यन्त अद्भुत और अविश्वसनीय पक्ष प्रस्तुत किया । कोटिवेधि रस के ज़रिए मध्यकालीन अंधविश्वासों का स्वरूप इसमें प्रकट किया गया है । प्रकारान्तर से यह हमारे अपने समय का हो जाता है ।"उपन्यास में अभिव्यंजना प्रणाली सहज और स्वाभाविक है । सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण और मूल्यांकन की दृष्टि से यह सफल रचना है ।"[1]

चतुरसेन शास्त्री इस धारा का एक सशक्त उपन्यासकार हैं । चतुरसेन जी को भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति अगाध आस्था थी और उनके चित्रण में उन्होंने"इतिहास-रस" की सृष्टि करने की कोशिश की है । उनकी औपन्यासिक रचनाएँ हैं -"वैशाली की नगरवधू,""रक्त की प्यास,"

---

1. हिन्दी उपन्यास : सातवाँ दशक - डॉ.जयश्री बरहाटे - पृ. 72

"मन्दिर की नर्तकी", "सोमनाथ", "अमरसिंह", "आलमगीर", "वयंरक्षाम:", "सोना और खून", "सह्याद्रि की चट्टानें" आदि । "वैशाली की नगरवधू" में बौद्धकालीन संस्कृति का अत्यन्त सजीव चित्रांकन हुआ है । उनके अन्य उपन्यासों में भी विभिन्न युगों की संस्कृति, सभ्यता, वेष-भूषा, रहन-सहन आदि का सजीव चित्र उपलब्ध है । वृन्दावन लाल वर्मा के "गढ़ कुण्डार," "विराटा की पद्मिनी", झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" और "मृगनयनी" आदि भी इस परंपरा के उपन्यास हैं ।

अमृतलाल नागर के "शतरंज के मोहरे" और "सुहाग के नूपुर" भी इस परंपरा के चर्चित उपन्यास हैं । पहले में अवध के नवाबी ह्रास का चित्रण है । "सुहाग के नूपुर" कथावस्तु और कला दोनों दृष्टियों से प्रशंसनीय है । राहुल सांकृत्यायन के "जय यौधेय;" "मधुर स्वप्न" और "विस्मृत यात्री" (1954) में गणतंत्र-राजतंत्र की सांस्कृतिक-आर्थिक गतिविधियों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । यशपाल का "अमिता" नामक उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर युग में रचित हैं । शिवप्रसाद सिंह जी के "नीला चाँद" भी द्विवेदी जी की परंपरा का सांस्कृतिक उपन्यास है ।

सामाजिक उपन्यास और समाजवादी उपन्यास

भारत में पूंजीवादी चेतना के आगमन के साथ व्यक्ति की चर्चा शुरू हुई । संयुक्त परिवार के टूटन की प्रक्रिया ने स्त्री पुरुष संबंध को नया आयाम दिया । मध्यवर्ग का विकास शुरू हुआ । उधर सन् 1930 तक आते-आते देश में मज़दूरों की बडी बडी हड़तालें शुरू हुई और किसान आन्दोलन भी ज़ोर पकडने लगे । रूसी क्रांति के असर की वजह से भारत में साम्यवादी क्रांतिकारी विचारधारा का प्रचार होने लगा । सन् 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के धरातल स्पष्ट रूप से सामाजिक है उनके बाद भी ऐसे उपन्यासों की एक लंबी परंपरा है जो सामाजिक जीवन को लक्ष्य बनाकर चले हैं । उनके बाद के समाज केन्द्रित उपन्यासों की दो धाराएँ हैं - सामाजिक और समाजवादी उपन्यास । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण रहता है मगर उसे देखने की लेखक की कोई खास दृष्टि नहीं होती । डॉ. महावीरमल लोढा के मुताबिक "सामाजिक उपन्यास का उद्देश्य जीवन का विवेचन विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना है । व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य में समा देना है और जीवन मूल्यों की स्थापना समाज के माध्यम से करना है ।"[1] सामाजिक उपन्यासकारों की अपेक्षा समाजवादी उपन्यासकारों की एक निर्दिष्ट दृष्टि होती है जो लेखक की निजी दृष्टि न होकर मार्क्सवादी होती है ।

सामाजिक कल्याण को लेकर लिखनेवाले उपन्यासों को सामाजिक उपन्यास कहते हैं । सामाजिक उपन्यासों में उपन्यासकार समाज के बहुमुखी रूप को चित्रित करते हैं । "सामाजिक उपन्यासकार समाज के बहुमुखी स्वरूप का जिसमें स्त्री-पुरुष के संबंधों, परिवार, जाति, संप्रदाय, वर्गभेद, आर्थिक दशा, रीति रिवाज़, सभ्यता, धर्म, संस्कृति आदि का चित्रण करने के साथ साथ उनके लक्ष्यों तथा समस्याओं की ओर इंगित करते हैं ।"[2]

सामाजिक उपन्यास की धारा आधुनिक हिन्दी उपन्यास में प्रमुख स्थान रखती है । स्वतंत्रता परवर्ती सामाजिक परिस्थिति ही

---

1. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ. महावीरमल लोढा - पृ. 32
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद - डॉ. शैलबाला - पृ. 154

सामाजिक उपन्यासों का मुख्य विषय है । स्वतंत्र भारत में नगरों और गाँवों की स्थिति बहुत शोचनीय होने लगी । इसी बात को सामाजिक उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया था ।

संक्षिप्त रूप से स्वतंत्र भारत का सामाजिक जीवन परतंत्र भार से भी अधिक शोचनीय था । समाज में प्रचलित लगभग सभी समस्याएँ जैसे व्यक्ति जीवन की समस्या, स्त्री स्वातंत्र्य, विधवा विवाह, वैवाहिक जीवन की समस्याएँ, प्रेम समस्या, मध्यवर्गीय समाज की वासनात्मक ज़िन्दगी से उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ, परंपरागत संस्कारों एवं रूढियों में उलझनेवाले निम्न मध्यवर्ग समाज की समस्याएँ आदि को सामाजिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के विषय के रूप में चुन लिया है ।

हिन्दी के प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार है श्री भगवतीचरण वर्मा । सामाजिक जीवन के सजीव चित्रण द्वारा उन्होंने हिन्दी उपन्यास को अधिक से अधिक समृद्ध बना दिया है । उनके अधिकांश उपन्यासों में हमारे समाज के उच्चमध्यवर्ग की समस्यापूर्ण ज़िन्दगी का चित्रण दिखाई पडता है । भगवतीचरण वर्मा के "आखिरी दाँव" उपन्यास में परंपरागत संस्कारों एवं रूढीग्रस्त मान्यताओं से जर्जरित उच्च या निम्नमध्यवर्गीय जीवन को चित्रित किया है । इसमें धन की लालसा में डूबनेवाला मानव जीवन के पतन का चित्रण उन्होंने किया है । रामेश्वर-चमेली द्वारा ग्रामीण निम्नमध्यवर्ग और उनके बंबई आगमन द्वारा उच्चमध्यवर्ग के सामाजिक जीवन चित्रित है । उनके "अपने खिलौने" में भी उच्चमध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का चित्रण है । उसी प्रकार "भूले-बिसरे चित्र" में भी मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण का परिचय भी हमें मिलता है ।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में मुख्य रूप से प्रेम समस्या को संसार के सबसे बड़ी सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार किया गया है । उनका "चलते चलते" उपन्यास में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के प्रेमी वाजपेयी ने सारी मान मर्यादाओं को ठुकराकर केवल यौनवादी या विलासिता में लिप्त पतनोन्मुख भारतीय सामाजिक जीवन की भयानकता निरूपित किया है । "यह ज्वाला जो वासना की अतृप्ति , तृष्णा के उद्रेक और अवांछनीय असन्तोष से उत्पन्न होती है, उसकी सीमा कहाँ है ? प्रत्येक युग, प्रत्येक समाज प्रत्येक संस्कृति उसे येनकेन प्राकारेण ससीम और संतुलित रकखोगी ।"[1] मध्यवर्गीय समाज की वासनात्मकता ही उनके "चलते चलते" उपन्यास में आद्योपान्त चित्रित किया गया है । किसी भी नारी को देखकर लाट टपकनेवाले राजेन्द्र इसके लिए स्पष्ट उदाहरण है ।

वाजपेयी के "यथार्थ से आगे" उपन्यास में मध्यवर्गीय पूँजीवा समाज की वासनात्मक विलासिता का चित्रण है । मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने अपने स्वतंत्र और विलासितापूर्ण ज़िन्दगी को स्थिर बनाये रखने के लिए हमेशा संघर्ष करते है । इस उपन्यास में उन्होंने तत्कालीन समाज के युवा व्यक्तियों की संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी का तस्वीर खींची है । उन्होंने यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि परिस्थिति जन्य विलासितापूर्ण ज़िन्दगी में फँसकर ही व्यक्ति पाप करते है । "कोई भी व्यक्ति वास्तव में पापी नहीं होता । क्योंकि उन परिस्थितियों का निर्माण जाल में फँसे हुए अवस्था- विवश व्यक्ति के द्वारा नहीं होता वरन् एक वर्गविशेष के द्वारा होता है, समाज द्वारा होता है ।"[2]

---

1. चलते चलते - भगवतीप्रसाद वाजपेयी - पृ. 42
2. यथार्थ से आगे - भगवतीप्रसाद वाजपेयो - पृ. 205

स्वतंत्र भारतीय समाज के निम्नमध्यवर्गीय नागरिक जीवन के चतुर चितेरा उपेन्द्रनाथ अश्क के "गर्मराख" में 1938-39 के आसपास के केवल लाहौ में सीमित निम्नमध्यवर्गीय नागरिक जीवन का चित्रण है । इसमें राजनीतिक, आर्थिक एवं साम्प्रदायिक समस्याओं से पीड़ित समाज का चित्रण है । उनके "बड़ी बड़ी आँखें", "शहर में घूमता आईना" आदि उपन्यास भी निम्नमध्यवर्गीय समाज की समस्याओं पर केन्द्रित हैं । उसी प्रकार अमृतलाल नागर के "महाकाल", "बूँद और समुद्र", "अमृत और विष", उदयशंकर भट्ट के "एक नीड दो पंछी", "डॉ. शैफाली", "लोक परलोक", "सागर लहरें और मनुष्य" आदि औपन्यासिक रचनाएँ सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित हैं ।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यास के क्षेत्र में सामाजिक उपन्यास की एक अलग धारा विकसित होती रही । स्वातंत्र्योत्तर समाज मुख्यत: मध्यवर्गीय पीड़ाओं से ग्रस्त था । इसलिए ही इस समय के उपन्यासों का मुख्य विषय भी मध्यवर्गीय व्यक्ति ही था । यह एक स्वीकृत सत्य है कि साहित्यकार समाज का द्रष्टा-सृष्टा दोनों हैं वह सामाजिक जीवन की विभिन्न दशाओं - परिस्थितियों के अध्ययन मनन द्वारा सामाजिक यथार्थ का संकेत करता है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में विभिन्न वर्ग चेतनाओं के साथ इसी यथार्थवादी दृष्टिकोण को विविध मान्यताओं के अनुरूप अभिव्यक्ति मिली है । सामाजिक विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों में फँसे आधुनिक मानव के दीनतापूर्ण चित्रण ने हमारे सामाजिक उपन्यास की धारा को अधिक से अधिक तीव्र बना दिया है । अत: सामाजिक उपन्यास की धारा को अपनी यथार्थवादी अभिव्यक्ति के कारण ही सफलता प्राप्त है ।

समाजवादी उपन्यास भी स्वातंत्र्योत्तर युग में ज़्यादा लिखे गये । इस युग में हमारा समाज राजनीतिक शोषण से अस्तव्यस्त रहा, जो तत्कालीन साहित्यकारों को सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरणास्रोत बन गया । सभी साहित्यिक विधाएँ विशेषकर उपन्यास विधा सुधारवादी दृष्टिकोण को अधिक प्रमुखता देती है । इस सुधारवादी दृष्टिकोण में मार्क्सवादी जीवन दर्शन का महत्व सर्वोपरि है । निम्न एवं मध्यवर्गीय समाज के हित एवं मानवतावादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हो सुधारवादियों का लक्ष्य है । उसी लक्ष्य के आधार पर हिन्दी में ऐसे अनेक उपन्यास लिखे गये जिसे हम समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास नाम से अभिहित कर सकते हैं । कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत ही समाजवादी उपन्यासों की आधार शिला है । इस सिद्धांत के अनुसार हमारी आर्थिक समस्या ही विश्व की लगभग सभी समस्याओं का मूल है । प्राचीन रूढियों एवं परंपरागत मान्यताओं का विरोध, भौतिकवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता आदि इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ हैं । परिश्रम के महत्व का उद्घाटन, वर्ग संघर्ष द्वारा संसार भर में शांति की स्थापना आदि इस सिद्धांत के प्रचलन का मुख्य उद्देश्य है ।

यशपाल के "मनुष्य के रूप", "बारह घण्टे", "झूठा सच", राहुल सांकृत्यायन के "विस्मृत यात्री" तथा "मधुर स्वप्न", अमृतराय का "बीज", रामेश्वर शुक्ल अंचल का "अलका", हिमांशु श्रीवास्तव का "लोहे के पंख", राजेन्द्र यादव का "प्रेम बोलते है", धर्मवीर भारती का "सूरज का सातवाँ घोडा", अमृतलाल नागर का "बूँद और समुद्र" आदि उपन्यास इस श्रेणी में आते हैं ।

हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या है । सामाजिक संगठन का मूलाधार अर्थ ही है । मानव को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ की आवश्यकता है । हिन्दी के लगभग सभी समाजवादी उपन्यासों में आर्थिक समस्या को एक प्रमुख समस्या के रूप में स्वीका किया है । अर्थ की पूर्ति के लिए श्रम की आवश्यकता है । हमारे समाज में श्रमिकों को श्रम का सही फल नहीं मिलता । श्रमिकों को दबानेवाले पूँजीपति वर्ग ही हमारे आर्थिक विकास पर बाधा उपस्थित करते हैं । ये ही हमारे समाज की आर्थिक विषमता का मूल कारण है । श्री राहुल सांकृत्यायन के "विस्मृत यात्री" उपन्यास के पात्र नरेन्द्रायश मानव जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण कर यह दिखाते हैं कि आर्थिक विषमता ही मानव जीवन के सभी दुखों का मूल है । इस दुख को दूर करने के लिए आर्थिक विषमता का निवारण अनिवार्य है । इस उपन्यास में उन्होंने श्रम की महत्ता को स्वीकार कर कर्मफल का विर किया है । क्योंकि उस समय अनेक ऐसे लोग थे जो कर्मफल को सभी दुखों के मूल मानते थे । उनके मत में अर्थ के कारण ही हमारे समाज में उच्च नीचत्व का भेदभाव उत्पन्न हुआ है ।

यशपाल स्वातंत्र्योत्तर समाजवादी उपन्यासकारों के अगुए हैं । उनके मत में संसार भर में समभाव का होना ज़रूरी है । उच्च नीचत्व का भेदभाव हमारी सारी समस्याओं का मूल कारण है । उच्चवर्ग ही हमारे आर्थिक विकास में बाधा उपस्थित करता है । अर्थाभाव ने हमारी समाज की स्थिति को अत्यन्त शोचनीय बनाया है । अर्थोपार्जन के लिए मनुष्य सभी प्रकार के हीनकर्म करने के लिए तैयार है । यशपाल के "झूठा सच", उपन्यास में जयदेवपुरी अर्थाभाव के कारण कनक से विवाह करने के लिए हिचकते हैं । अर्थाभाव के कारण तारा का विवाह किसी योग्य युवक से नहीं हो पाता ।

"मनुष्य के रूप" में भी आर्थिक अभाव के कारण सोमा को बहुत कुछ सहना पडता है । किन्तु अंत में अभिनेत्री बनकर वह धनी बन जाती है ।

समाजवादी उपन्यासों में नैतिकता संबंधी प्राचीन मान्यताओं को ठुकराकर नवीन दृष्टिकोण से नैतिकता पर विचार किया गया है । यशपाल के "बारह घण्टे" का "विनि", "झूठा सच" का "ऊर्मिला", "मनुष्य के रूप"का "सोमा", विधवा जीवन की पुरातन मान्यताओं को उपेक्षा कर स्वतंत्र प्रेम के क्षेत्र में अग्रसर होती है और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनकर निजी जीवन को सफल बनाती है । श्री अमृतराय अपने उपन्यासों में आर्थिक विषमता को हमारे समाज के पतन का मूल कारण माना है । उन्होंने अपने "बीज" नामक उपन्यास में दिखाया है कि मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होना ज़रूरी है । अर्थ के अभाव में मनुष्य जीवन व्यर्थ है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्र उषा और सत्य के बीच धन के अभाव के कारण नित्य प्रति कलह होते हैं । उपन्यास के अंत में अध्यापिका बनकर आत्मनिर्भरता की स्थिति को प्राप्त करनेवाली उषा को लेखक ने हमें दिखाया हैं ।

श्री अमृतलाल नागर ने भी अपने उपन्यासों में आर्थिक असमानता को हमारे समाज की सबसे बडी समस्या के रूप में स्वीकार किया है । उनके "बूँद और समुद्र" में उन्होंने यह दिखाया है कि हमारा नारी जीवन तब तक परतंत्र रहेगा जब तम हमारी आर्थिक असमानता यहाँ वर्तमान रहेगी । उनके मत में नारी को आत्मनिर्भर होने के लिए अर्थ की आवश्यकता है । समाज में नारी को भी पुरुष के समान अधिकार होना चाहिए ।"बूँद और समुद्र" की "वनकन्या" द्वारा उन्होंने नारी की शोचनीय अवस्था को ओर हमारा

ध्यान आकर्षित किया है । "आम जहनियत में स्त्री घर का काम-काज सबकी सेवा टहल करनेवाली और पुरुष के भोग की वस्तु होने के अलावा और कुछ भी नहीं । हाँ उसका एक महत्व यह अवश्य है कि वह बच्चे पैदा करनेवाली मशीन भी है । बच्चे चूँकि इनसान की ज़िन्दगी को बढाने के लिए अहम ज़रूरी है । इसलिए उनका उद्घाटन करनेवाली फैक्टरी का महत्व है ।"[1]

नागरजी के "सुहाग का नूपुर" में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि आज के युग में नारी जन्म अभिशाप है । हमारे समाज में नारी और पुरुष का समान स्थान नहीं । नारी पुरुष की आश्रिता है । इसलिए ही हमारे नारी जनों को बहुत सी सामाजिक कुरीतियों को सहन करना पडता है ।

उच्चनीचत्व का भेदभाव ही सभी सामाजिक कुरीतियों का मूल कारण है । इसलिए ही समाजवादी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष को प्रमुख स्थान दिया गया है । वर्ग संघर्ष द्वारा शोषकों पर शोषितों का अधिकार ज़माना ही समाजवादी विचारधारा का मुख्य उद्देश्य है । हिमांशु श्रीवास्तव के "लोहे के पंख" में उच्चवर्गीय ज़मीन्दारों, मिल मालिकों, सरकार आदि के शोषणों एवं अत्याचारों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । "जब कारखाने में नौकरी लग गयी थी तब मैं ने सोचा था कि मेरा नया जन्म हो गया है, मेरी तकदीर का सितारा गर्दिश के घेरे से निकल आया है अब ज़माना तरक्की कर रहा है, सरकार बदल रही है, लोग बदलते जा रहे हैं, लोग गरीब किसानों की पीठ पर कोडे लगानेवाले बच्चा बाबू जेल जाने लगे मगर अब आँखों के आगे विचित्र दूरबीन लग गयी है, लगता था जैसे ज़माना दस-बीस वर्ष पीछे की ओर खिसक गया है ।"[2]

---

1. बूँद और समुद्र - अमृतलाल नागर - पृ. 111
2. लोहे के पंख - हिमांशु श्रीवास्तव - पृ. 417

हिन्दी के अधिकांश उपन्यास सामाजिकता या सामाजिक प्रतिबद्धता पर अधिक प्रमुखता देनेवाले हैं । अतः संपूर्ण मानव में कल्याण की यह पवित्र विचारधारा को ही स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों ने अपना लिया था । आधुनिक जीवन की विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों ने मनुष्य के जीवन को संकुचित घेरे में बाँधकर रखा है । लेकिन उन सभी स्वार्थी लोगों के निरावरण के लिए स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास जिद्द करते हैं । मनुष्य को एक दूसरे से समभाव रखना आज अनिवार्य हो गया है ।

आँचलिक उपन्यास

आँचलिक उपन्यास धारा को स्वातंत्र्योत्तर काल की महान उपलब्धि कहो जा सकतो है । आँचलिकता अंचल शब्द से बना है । किसी अंचल विशेष को जनता के जीवन दर्शन को केन्द्रित करके कुछ लिखने की पद्धति जब प्रारंभ हुई, वहीं से आँचलिकता विशेष महत्व प्राप्त करने लगी । अंचल या अंचल-विशेष को अपनी मौलिकता होती है वहाँ के निवासियों का अपना जीवनयापन होता है, रीति रिवाज़ होती है, संस्कृति और सभ्यता होती है । इन समस्त विशेषताओं को जब एक पुस्तक में समेटा जाता है तब आँचलिकता का उदय होता है । "आँचलिकता का अर्थ है क्षेत्र विशेष के सत्य का उद्घाटन करता हुआ जीवन, जो किसी एक परिवेश विशेष की नहीं, वरन् उस खण्ड की समग्र क्षेत्रीयता का प्रतीक है ।"[1]

अंचल तथा अंचल विशेष के निवासियों की समस्त विशेषताओं को समग्रता में अभिव्यक्त करनेवाला उपन्यास ही आँचलिक उपन्यास है ।

---

1. हिन्दी तथा अंग्रेज़ी आँचलिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन -

एक नूतन साहित्य धारा के रूप में आँचलिक उपन्यास का अपना महत्व है क्योंकि इससे किसी विशेष भूभाग की प्राकृतिक पृष्ठभूमि वहाँ के लोकजीवन की सहज गतिशीलता, मानवीय चेतना, जनता के बोलचाल का ढंग आदि का पता मिलता है । उनकी इन निजी विशेषताओं के कारण ये उपन्यास आँचलिक उपन्यास बन गये । "आँचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है । उसका संबंध जनपद से होता है, ऐसा नहीं वह जनपद की ही कथा है ।"[1] अत: आँचलिक उपन्यास वह उपन्यास है जिसमें किसी अंचल विशेष के रीति रिवाज़ों, आचार अनुष्ठानों, बोलचाल के तरीकों, धार्मिक मान्यताओं, अन्धविश्वासों, रूढियों, सांस्कृतिक पर्वों, उत्सवों, विश्वासों, संघर्षों, जीवन पद्धतियों का समग्र चित्रण हो ।

हिन्दी में आँचलिक उपन्यासों का उद्भव और विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ । स्वतंत्रता परवर्ती सामाजिक विडंबनाओं से ही आँचलिक उपन्यासों का जन्म हुआ है । हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास कौन-सा है इस विषय पर मतभेद है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में आँचलिकता को विषय बनाया गया है । लेकिन उनके उपन्यासों को आँचलिक नहीं कह सकते । उनका उद्देश्य भी किसी अंचल विशेष का चित्रण करना नहीं था । उनका उद्देश्य समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय आदि को चित्रित करना ही था । कुछ लोग शिवपूजन सहाय के "देहाती दुनिया" को हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास मानते हैं तो कुछ लोग नागार्जुन के "बलचनमा" का । शिवपूजन सहाय के "देहाती दुनिया" में भोजपुरी जनपद के एक अंचल का चित्रण किया गया है । लेकिन एक आँचलिक उपन्यास के लिए आवश्यक पूरी विशेषतायें "देहाती दुनिया" में नहीं है । अत: इसमें शुद्ध आँचलिकता की स्थापना नहीं

हो पायी । अधिकांश विद्वानों ने फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल"(1944) को हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास माना है । इसमें 1942 से 1950 तक के बीहार प्रान्त के "मेरीगंज" नामक गाँव तथा उसके आसपास के पिछडे हुए प्रदेशों की कथा है जिसमें विभिन्न वर्गों का संघर्ष उभरकर प्रस्तुत किया गया है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में आँचलिकता को उसकी समग्रता के साथ "मैला आँचल" में चित्रित किया गया है । "मैला आँचल" में आँचलिकता का जैसा समावेश हुआ है वैसा उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों में नहीं पा सकते । "यद्यपि आँचलिकता के कुछ तत्व इसमें पूर्व प्रेमचन्द तथा वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में भी उपलब्ध होते है तथापि पूर्ण आँचलिक गुणों से युक्त उपन्यासों का श्रीगणेश श्री फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल" उपन्यास में हुआ ।"[1] रेणु ने "मैला आँचल" में बोहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव का चित्रण किया है । मेरीगंज गाँव की भाषा, वेष-भूषा, बोलचाल के ढंग आदि का जीवंत चित्र मैला आँचल में हुआ है । "परति परिकथा", "जुलुस" आदि उनकी औपन्यासिक रचनाएँ हैं ।

नागार्जुन हिन्दी के मशहूर आँचलिक उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों में प्रगतिवादिता और आँचलिकता का समन्वित रूप ही दिखाई पडता है । इसलिए वे एक प्रगतिशील आँचलिक उपन्यासकार हैं । "नागार्जुन हिन्दी के ख्यातिप्राप्त प्रगतिशील आँचलिक उपन्यासकार है । आँचलिकता और प्रगतिशीलता को साथ साथ ग्रहण करने के कारण उनको उसी नाम से पहचाना जाता है ।"[2] "रतिनाथ की चाची", "बलचनामा", "बाबा बटेसरनाथ",

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन - डॉ. सुमित्रा त्यागी - पृ. 227
2. हिन्दी तथा अंग्रेज़ी के आँचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. राजकुमारी सिंह - पृ. 49

"नई पौध", "वरुण के बेटे" आदि नागार्जुन के प्रमुख आँचलिक उपन्यास है । नागार्जुन ने मिथिला के ग्रामीण जीवन को विशेष महत्व दिया है । प्रगतिशील चेतना से युक्त उपन्यासकार होने के कारण उनके पात्र प्रतिकूल परिस्थितियों के खिलाफ अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है ।

भैरवप्रसाद गुप्त का "मशाल", "गंगा मैया", "सतीमैया का चौरा", शिवप्रसाद मिश्र रुद्रा के "बहती गंगा", देवेन्द्र सत्यार्थी का "रथ के पहिए", "ब्रह्मपुत्र", "कथा कहो उर्वशी", रांगेय राघव का "काका", "कब तक पुकारूँ", लक्ष्मीनारायण लाल का "बड़ी चम्पा छोटी चम्पा", राही मासूम रजा के "आधागाँव", रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर", "जल टूटता हुआ", "सूखता हुआ तालाब" आदि अन्य प्रमुख आँचलिक उपन्यास है । इनमें ग्रामीण समाज और समय की सभी झाँकियाँ प्रस्तुत हुई हैं ।

आँचलिक उपन्यासों में किसी एक विशेष देश के विशेष समय और समाज का उद्घाटन होता है । देशकाल की दृष्टि से एक प्रदेश दूसरे से भिन्न रहता है । यही भिन्नता आँचलिक उपन्यासों का विषय है । आँचलिक उपन्यासों में देशकाल का चित्रण अनिवार्य है, जिससे ही एक गाँव या प्रान्त के समूल चित्र हमारे सामने उपस्थित होते हैं ।

यद्यपि आँचलिक उपन्यास अँचल का समग्र चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं तथापि अंचल की निम्नस्तरीय जनता की यातनापूर्ण ज़िन्दगी को ही इसमें प्रमुखता दी जाती है । ज़मीनदारी अत्याचारों में पीसती जनता को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान इन उपन्यासों द्वारा मिलता है । नागार्जुन का "बलचनमा" इसका सबसे बड़ा सबूत है । इसमें दरभंगा जिले के निर्धन युवक के संघर्षशील जीवन का चित्रण किया गया है ।

ऊँच-नीच के भेदभावों को भी आँचलिक उपन्यासों में विषय बनाया गया है । उच्चजातिवाले अगडी जाति के लोग हमेशा पिछडी जनता को नीच दिखाने का प्रयत्न करते हैं । जातीयता के आधार पर गाँव की जनता की विभिन्न टोली है । रेणु के मैला आँचल, परती परिकथा, नागार्जुन के "बलचनम "बाबा बटेसरनाथ" आदि उपन्यासों में गाँव के इस भेदभाव का स्पष्ट अंकन हुआ है । आँचलिक उपन्यासों में ग्रामीणों के निस्वार्थ प्रेम का चित्रण अधिक दिखाई पडता है । दूसरों की सहायता करना ये लोग इस संसार में सबसे बडा परमार्थ मानते हैं । "मुसीबत में अगर किसी के काम न आया तो वह जीवन बेकार है बेटा ।"[1] अंचल के निवासियों के अपने अलग ढंग के जीवन-यापन होते हैं । उनकी अपनी अलग ढंग की आस्थाएँ, प्रथाएँ और रूढियाँ होती हैं अलग ढंग की भाषा और वेषभूषा होते हैं । उन सबका यथार्थ चित्र आँचलिक उपन्यासों में मिलता है ।

आँचलिक उपन्यासकार जिस भाषा का प्रयोग करते है वह अंचल की भोली भाली ग्रामीण भाषा ही है । सामान्यत: अविकसित जातियों के जीवन में शोषण और रूढियों के प्रति विद्रोह, नैतिक मूल्यों के पतन, स्वच्छ जीवन की प्रवृत्ति, जनजागृति, नारियों की शोचनीय अवस्था, धार्मिक पाखण्डों एवं अन्धविश्वासों में जकडे मानव को ऊपर उठाने का प्रयत्न आदि आँचलिक उपन्यास के उद्भव का मूल कारण है । मानव जीवन की एकता ही आँचलिक उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य है । जातीयता, वर्गीयता, धार्मिक पाखण्ड आदि विभिन्न सामाजिक दुराचारों के कारण विभक्त भारतीय जनता को एक सूत्र में बाँधना ही आँचलिक उपन्यास तथा उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा । इस लक्ष्य में वे बहुत सीमा तक विजय प्राप्त की है ।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन - पृ.49

यथार्थवादी सोच के उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर युग में यथार्थवादी सोच को तमाम शक्लों में, विविध किस्म की पर्तों और जमीनी हरकतों के साथ लगभग पूरे उपन्यास लेखन में सक्रिय देखा जा सकता है । यह सक्रियता समकालीन उपन्यास-लेखन में ज़्यादा दिखाई देता है । ये उपन्यास आम आदमी की ज़िन्दगी से जुड़े कुछ विशिष्ट किस्म के होते हैं । "रमाकान्त का "जुलूसवाला आदमी", स्वयं प्रकाश का "बीच में विनय", कामतानाथ का "काल-कथा," जगदीशचन्द्र का "नरककुंठ में वास", रवीन्द्र कालिया का "खुदा सही सलामत है", द्रोणवीर कोहिली का "वाह कैम्प", विद्यासागर नैटियाल का "सूरज सबका है", रमेश उपाध्याय का "हरे फूल की खुशबू" इस दौर में लिखे गये यथार्थवादी उपन्यास हैं जो सीधे-सीधे समाज के दु:ख-दर्द और समस्याओं से जूझते हैं । ये सच में अपनी ज़मीन के दर्द से पैदा हुए "ठोस" ज़मीनी उपन्यास है"।[1]

यथार्थवादी सोच की दृष्टि से रमाकांत का "जुलूसवाला आदमी" महत्वपूर्ण और दस्तावेज़ी उपन्यास है । यह एक जुझारू कामरेड के रूप में संघर्ष और एक हद तक मोहभंग की कथा है । वे सपने कि यह जीवन हमारे देखते-देखते बदल जाएगा, क्रांति होगी, सबको बेहतर जीवन मिलेगा, देखते-देखते वे सपने रंगहीन हो जाते हैं और पार्टी में भी सिद्धांतवादियों की जगह ऐसे लोगों को ऊँचे-ऊँचे ओहदे मिलने लगते हैं जो हर तरह के समझौते करके, विशुद्ध नेताई बल पर सबको पीछे छोड़कर आगे आ जाते हैं ।

स्वयं प्रकाश का "बीच में विनय" भी इसी श्रृंखला की दूसरी कड़ी है । इसमें एक समर्पित कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के तीखे आत्मसंघर्ष

---

1. दस्तावेज़-89 - §लेख - शताब्दी के अन्त में उपन्यास - एक पाठक के नोट्स - प्रकाश मनु § - पृ.5

और आत्मोत्सर्ग की कथा पेश की गयी है । इसके ज़रिए एक विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद के द्वन्द्व आत्मसंघर्ष और अन्तर्द्वन्द्वों को वाणी मिली है । कामतानाथ की बृहत् औपन्यासिक रचना "कालकथा" में आज़ादी की लड़ाई की ऐतिहासिक घटनाओं, राजनेताओं की खासियतों और विचारों और जनता की मन:स्थिति तथा संघर्ष को एकसाथ उठाने की कोशिश की गई है । द्रोणवीर कोहली का "वाह कैम्प" देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है और स्मृतियों में यहाँ स्वतंत्रता संग्राम के पन्ने लगातार फड़फड़ाते हैं । जगदीश चन्द्र का "नरक कुंठ में वास" चमड़ा कमानेवालों के काठ-कठोर जीवन पर लिखा गया ऐसा उपन्यास है जो हमें उस तकलीफ और संडाध को भीतर तक ले जाता है, जहाँ उन्हें रहना और जीवन बसर करना पड़ता है"।[1]

यथार्थवादी सोच और विचारधारा का एक सघन उपन्यास है विद्यासागर नौटियाल का "सूरज सबका है" । इसमें अपने इतिहास, जातीय गौरव, सांस्कृतिक परंपराओं और वर्तमान के दु:खों और मुश्किलों के साथ पूरा गढ़वाल उपस्थित है । रवीन्द्र कालिया के "खुदा ही सलामत है" में आम आदमी की उस टूटी-फूटी ज़िन्दगी को पेश की गयी है, जिसे पुलिस प्रशासन और राजनीति ने मिलकर तबाह किया है । रमेश उपाध्याय के "हरे फूल की खुशबू" में कला और कला जगत् से जुड़े बुनियादी सवालों को प्रस्तुत किया गया है । इसमें एक कलाकार के आत्म-संघर्ष के साथ ही साथ कला और समाज के रिश्ते से जुड़े कुछ ज़रूरी सवाल भी उठाए गये हैं ।

यथार्थवादी सोच के ये उपन्यास यह प्रमाण पेश करते हैं कि उपन्यासकार व उपन्यास का समाज के साथ गहरा सरोकार हैं ।

---

1. दस्तावेज़ - 89 - {शताब्दी के अन्त में उपन्यास : एक पाठक के नोट्स - प्रकाश मनु} - पृ.8

दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इस युग में दलित जीवन की सच्चाइयों को उभारनेवाले कई उपन्यास लिखे गये । दलित शब्द आज उनके लिए प्रयुक्त हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से युग-युगों से अपने अधिकारों से वंचित रहे । वे भारतीय सामाजिक जीवन की मुख्य धारा के तहत हाशिये की ज़िन्दगी व्यतीत कर रहे थे । उन्हें अपनी ज़रूरत की प्रत्येक चीज़ के लिए दूसरे लोगों पर आश्रित रहना पड़ता था और चाहकर भी वे अपने जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण पक्षों का निर्णय स्वयं नहीं ले सकते थे । उनके जीवन से संबंधित सभी बातें बाहरी लोगों द्वारा तय की जाती थीं, जिन्हें उनको मानना पड़ता था । दलित समाज के लोगों की आशाओं, आकांक्षाओं और दुःख-दर्द को यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक विषमताओं से मुक्ति, शोषण, उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह की चेतना जगाना दलित चेतना है ।

हिन्दी में दलित जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि प्रेमचन्द की औपन्यासिक रचनाओं में ही पायी जाती है । बाद में निराला (निरूपमा), "उग्र" (बुधुवा की बेटी), चतुरसेन शास्त्री (नगुला) आदि के उपन्यासों में दलित जीवन की समस्याओं को सकारात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है । दलित जीवन पर केन्द्रित स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यासों में रांगेय राघव का "कब तक पुकारूँ" (1971), गोपाल उपाध्याय का "एक टुकड़ा इतिहास (1975) रामकुमार भ्रमर का मोतिया (1979), मन्नू भण्डारी का महाभोज (1979), अमृतलाल नागर का नाच्यौ बहुत गोपाल (1979), गिरिराज किशोर के परिशिष्ट (1989), यथाप्रस्तावित (1982), विश्वेश्वर का महापात्र (1981),

मणिमधुकर के सफेद मेमना (1971), पिंजरे में पन्ना, सतीश जमाली के छप्पर टोला (1982), मदन दीक्षित का "मोरी की ईंट", बाला दुबे का मकान दर मकान (1981). मधुकर सिंह के "सब से बड़ा छल", "सीताराम को नमस्कार", सोनभद्र की राधा और जंगली सुअर, जगदीश चन्द्र के "धन धरती न अपना", "नरककुंठ के बास" और "घास गोदाम", ओम प्रकाश वाल्मीकि का "जूठन", मोहनदास नैमिषराय के "अपने-अपने पिंजरे", जयप्रकाश कर्दम का "छप्पर" प्रेम कपाडिया का "माटी की सौगन्ध", सत्यप्रकाश का "जस तस भई सवेर", रामसिंह दिवाकर का "आगपानी आकाश" आदि शामिल हैं ।

इन उपन्यासों में दलित समाज के लोगों के जीवन से संबंधित तमाम बातें - सामाजिक-आर्थिक विषमता, शोषण, उत्पीडन, उनकी आशा आकांक्षाएँ, दुखदर्द की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है ।

नारी चेतना के उपन्यास (महिला उपन्यास)

स्वातंत्र्योत्तर युग में खास तौर पर समकालीन रचनाधर्मिता में महिला उपन्यास लेखन की अपनी अलग पहचान है । बीसवीं शताब्दी के आखिरी डेढ-दो दशक महिला रचनाधर्मिता के विस्फोट ही कहे जाते हैं ।[1] इस दौर में महिला उपन्यासकारों के इतने शक्तिशाली उपन्यास सामने आये जिन्हें कालजयी कह सकते हैं । इनके ज़रिये बीसवीं शताब्दी के उपन्यास लेखन की मुकम्मल तस्वीर सामने उभर आती है । यह तो मानीखेज बात है कि महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की दुनिया की जिन बाहरी-भीतरी तकलीफों और छटपटाहट की अभिव्यक्ति की है वह पहले कभी

---

1. दस्तावेज़-89 - (लेख : शताब्दी के अन्त में उपन्यास : एक पाठक के

भी संभव नहीं हुआ था । उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, चन्द्रकान्ता, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावही, आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिन्होंने नारी अस्मिता, विवशता और संघर्ष चेतना को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया ।

कृष्ण सोबती एक ऐसा सशक्त लेखिका है जिनसे हिन्दी उपन्या को एक अलग पहचान और आश्वस्ति मिली । "ज़िन्दगीनामा," "दिलो दानिश", "समय सरगम" उनके उपन्यासों में तेज़-तर्रार लहजे और तेवर दिखाई देता है ।[1] मन्नू भण्डारी द्वारा रचित "आपका बंटी", "स्वामी", "महाभोज" हिन्दी साहित्य अधिक चर्चित हैं । उनके उपन्यासों को नारी चेतना के उपन्यास न कहकर सामाजिक चेतना के उपन्यास कहना सही है । आप का बंटी बाल मनोविज्ञान पर केन्द्रित उपन्यास है जिसमें बंटी माँ-बाप दोनों से कटकर समाज के लिए मिसफिट हो जाता है ।

उषा प्रियंवदा के चारों उपन्यास "रूकोगी नहीं राधिका", "पचपन खंभे लाल दीवारें", "शेषयात्रा" और नारी चेतना की अभिव्यक्ति करनेवाले उपन्यास हैं ।

मृदुला गर्ग ने कई उपन्यासों की रचना की है जिनमें प्रमुख है "उसके हिस्से की धूप", "चित्तकोबरा", "अनित्य", "मैं और मैं", "कठ गुलाब" आदि । उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री के दुःखों को "आँसू बहाउ" भावुकता में न तब्दील किया है और न उसका रोमानीकरण । मैत्रेयी पुष्पा के बहुचर्चित उपन्यास हैं - "इदन्नमम्", "स्मृतिदंश", "बेतवा बहती रही"

---

1. दस्तावेज - 89 - पृ.45

"चाक" और "अल्मा कबूतरी" । नारी मुक्ति या स्वतंत्रता के विचार और खरी सृजनात्मकता बढ़िया द्वन्द्व "इदन्नमम्" में उन्होंने प्रस्तुत किया है । "चाक" स्त्री वेदना के प्रवक्ता किस्म का उपन्यास है । "अल्मा कबूतरी" में मैत्रेयी जी ने नारी चेतना की अभिव्यक्ति ज़ोर-शोर से की है । चित्रा मुद्गल के "एक ज़मीन अपनी" और "आवाँ", नासिरा शर्मा का "ठीगरे की मंगनी", राजी सेठ के "ततसम" और "तितकदय", चन्द्रकान्ता के "ऐलान गली ज़िन्दा है" और "यहां वितस्ता बहती है" सिम्मी हर्षिता के "संबंधों के किनारे" और "यातना शिविर" प्रभा खेतान के "छिन्नमस्ता", "पीली आँधी" आदि खासा चर्चित महिला उपन्यास हैं ।

महानगरीय चेतना के उपन्यास

भारत की आत्मा कभी गाँवों में रहती थी, लेकिन आज नगर की बढ़ती हुई आबादी, और महानगरों का फैलता हुआ क्षेत्रफल इस बात के सबूत हैं कि भारतीय जीवन गाँवों की अपेक्षा नगरों-महानगरों में अधिक संपूर्णता और विविधता के साथ देखा जा सकता है । यद्यपि भारत का कोई भी नगर लन्दन, टोकियो और न्यूयोर्क की श्रेणी में आनेवाला नहीं है, फिर भी महानगरीय जीवन में जो गति, जटिलता और विविधता है वह कलकत्ता, दिल्ली, मुंबई और चैन्नई आदि महानगरों के जीवन में है । जिस प्रकार आंचलिक उपन्यास स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास की एक दिशा को व्यंजित करते हैं उसी प्रकार नगर-महानगर के जीवन का औपन्यासिक रेखांकन भी एक विशिष्ट आयाम को उद्घाटित करता है ।

नगर और महानगर का जीवन बहुत तेज़ और संघर्षपूर्ण है । वहाँ गति ही जीवन है रुकने का अर्थ पिछड़ना है । ऐसे हाल में आत्मीयता, आपसीपन और सौहार्द के पड़ाव का होना स्वाभाविक ही है । नगर-महानगर का बोध, अपरिचय, अकेलेपन, खुदगर्जी, अनात्मीयता के रेशों में बुना जाता है । निकट के संबंधों में भी टूटन और तनाव की स्थितियाँ यहाँ के व्यस्त जीवन में अक्सर बनती रहती हैं । भाग-दौड़ और उखाड़-पछाड़ में उलझा हुआ और झुंझलाया हुआ नागरिक अनेक मुखौटे पहनने के लिए विवश होता है । मशीनों के नगर में रहते वह खुद मशीन हो जाता है । इस प्रकार यांत्रिकता और कृत्रिमता नगर महानगर के जीवनबोध को कठोर और निर्मम बनाते हैं । इस प्रकार के प्रसंग स्थितियाँ और अनुभव उपन्यासकार की रचनाशीलता को उकसाते रहे और स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का एक बहुत बड़ा वर्ग नगर और महानगर जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया ।

इस परंपरा के उपन्यासों में मोहन राकेश के "अंधेरे बन्द कमरे" (1961), न आनेवाला कल (1968), उषा प्रियंवदा का "रुकोगी नहीं राधिका", गिरीश अस्थाना का "धूप छाँही का रंग", राजेन्द्र अवस्थी का "बीमार शहर", शिवप्रसाद सिंह का "गली आगे मुड़ती है", अमृतलाल नागर के "अमृत और विष", "बूँद और समुद्र", बदी उज्ज़मा का "एक चूहे की मौत", धर्मवीर भारती का "सूरज का सातवाँ घोड़ा", निर्मल वर्मा का "वे दिन" आदि उल्लेखनीय हैं ।

"राकेश के दोनों उपन्यासों - अंधेरे बन्द कमरे और न आनेवाला कल - में महानगरबोध के मध्यवर्गीय जीवन की अस्तित्वमूलक त्रासदी हैं।"[1] अपने अस्तित्व के प्रति अतिशय सचेतना दूसरे से तो अपने को काटती है

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह - पृ. 347

अपने आपको अपने से ही अलग कर देती है । "अंधेरे बन्द कमरे" के हरिवंश और नीलिमा की स्थिति और भी ट्रेजिक है क्योंकि वे लगाव और अलगाव में एक साथ जीते हैं । इसी प्रकार न आनेवाला कल भी नगरबोध का ट्रैजिक उपन्यास है ।

निर्मल वर्मा के "वे दिन" में महानगरीय अजनबीपन को एक विदेशी परिवेश में प्रस्तुत किया गया है । युद्ध के बाद का प्राहा या पूरा योरप एक अजीब उदासी, अकेलापन, रिक्तता, संत्रास, और अजनबियत से गुज़र रहा था । यही इस उपन्यास का कथ्य हैं । युद्ध में सब कुछ मर जाता है । जीवन के मूल उत्स प्रेम के मर जाने पर कुछ भी शेष नहीं रह जाता ।

उषा प्रियंवदा की "रुकोगी नहीं राधिका" में तनावों के अनेक स्तर हैं - अतीत-वर्तमान का तनाव, पूर्व-पश्चिम की संस्कृति का तनाव, अधय मनीष में एक का चुनाव, पिता-पुत्री का तनाव आदि । इनसे एक अनिश्चितता, अकेलापन और व्यर्थता उजागर होती है ।

आर्थिक तंगी और अभावग्रस्तता मध्यवर्गीय जीवन की बुनियादी सच्चाइयाँ हैं । गिरीश अस्थाना के "धूप छाँही का रंग", धर्मवीर भारती के "सूरज का सातवाँ घोडा" में इन सच्चाइयों का रंग चहख है ।

नगर और महानगर के व्यस्त और त्वरित जीवन को जिन उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है, वे परिवेश के प्रति अपनी जागरूकता और संपृक्ति का अच्छा परिचय देते हैं ।

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह - पृ. 35।

जीवनीपरक उपन्यास

इतिहास और कल्पना के मणिकांचन संयोग से निर्मित जीवनीपरक उपन्यास आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है । डॉ. लाल साहब सिंह ने रांगेय राघव के "भारती का सपूत" (1954) को हिन्दी का पहला जीवनीपरक उपन्यास माना है ।[1] रांगेय जी के ही "यशोधरा जीत गई" (1954), लखिमा की आँखें (1957), जब आयेगी कालघटा (1958), धुनी का धुआँ (1959), मेरी भवबाधा हरो (1960), विश्वंभरनाथ उपाध्याय का जाग मच्छन्दर गोरख आया (1983), दशरथ ओझा का "एकता के अग्रदूत शंकराचार्य", अमृतलाल नागर के "मानस का हंस" और "खंजन नयन" आदि इस परंपरा के श्रेष्ठ उपन्यास हैं । जीवनीपरक उपन्यासों की विधा एक विकासशील और संभावना संपन्न विधा है ।

निष्कर्ष

समय और समाज की अभिव्यक्ति की दृष्टि से, जीवन की व्यापकता और जीवन से निकटता की दृष्टि से, आज उपन्यास साहित्य की केन्द्रीय विधा है । प्रेमचन्द ने ही हिन्दी उपन्यास को सतही रोमांच और स्थूल रोमांस से निकालकर समय और समाज की अभिव्यक्ति सच्ची विधा बनायी और इस तरह उसे सम्मानजनक ऊँचाई पर पहुँचा दिया ।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास में कथ्य में विस्तार आया और इस में समय और समाज से संबंधित अनुभूतियों, विचारों और प्रश्नों को नयी जीवन-दृष्टियों से देखने और परखने की कोशिश की गयी है । स्वतंत्रता

---

1. डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास - पृ. 32

पूर्व के हिन्दी उपन्यासों का कथ्य अपने तमाम विस्तार और गांभीर्य के बावजूद प्रेमचन्द की कथा संवेदना से आगे नहीं आयी ।

स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक घटनाओं और नये आर्थिक-सामाजिक सन्दर्भों ने समूचे हिन्दी साहित्य को गहरा प्रभावित किया । विभाजन की विभीषिका, स्वतंत्रता मिलने का उत्साह और आर्थिक कठिनाइयों के मिले-जुले बोध ने वस्तु और शिल्प के स्तरों पर हिन्दी उपन्यास में एक युगान्तर सा उपस्थित किया । स्वातंत्र्योत्तर युग में उपन्यास की कई धाराएँ विकसित हो गयीं जैसे व्यक्तिवादी चेतना के उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास, सामाजिक प्रतिबद्धता के उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, यथार्थवादी सोच के उपन्यास, दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यास, नारीवादी चेतना के उपन्यास, नगरीय चेतना के उपन्यास, जीवनीपरक उपन्यास, व्यंग्य उपन्यास आदि ।

हमारे इस अध्ययन के केन्द्र में राही मासूम रज़ा के उपन्यास हैं । रज़ा ने आँचलिकता के साथ महानगरीय चेतना, सामाजिक यथार्थता को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उनके उपन्यासों में समय और समाज की अभिव्यक्ति बडी ईमानदारी और सच्चाई के साथ प्रस्तुत हुई है । आगे उस सृजनशील, संवेदनशील और सजग साहित्यकार के कृती व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला जाएगा ।

अध्याय : दो

राही मासूम रज़ा : कृती व्यक्तित्व

प्रस्तावना

किसी सजग, संवेदनशील और ईमानदार लेखक के समग्र रचनाकर्म को केन्द्र में रखकर अध्ययन-विश्लेषण करते समय उनके दृष्टिकोणों, संबंधों, पक्षधरता, रुचि और सहमति के विभिन्न वैयक्तिक स्तरों और साहित्यिक परिवेश के बीच से गुज़रते हुए उनके रचनात्मक सरोकारों की पड़ताल करना बहुत ही ज़रूरी है । तभी उनकी रचनाओं की सार्थक ध्वनि के कंपन-बिन्दुओं को समझ ले सकते हैं और उनकी मुहम्मल पहचान को सामने ला सकते हैं । डॉ. राही मासूम रज़ा ऐसे कृती व्यक्तित्व है जिनका तमाम रचनाकर्म कई-कई चुनौतियों के बावजूद कला और संवेदना के कई सूक्ष्म स्तरों को स्पर्श करता दिखलाई देता है । इस अध्याय में डॉ. रज़ा के कृती व्यक्तित्व का परिचय देना उचित लगता है ।

डॉ. राही मासूम रज़ा सफल उपन्यासकार, कवि, आलोचक, संवेदनशील व्यक्तित्व और भी बहुत कुछ हैं । कुल मिलाकर वे एक बहुआयामी कृती व्यक्तित्व हैं जो अपने आप में एक मुहम्मल इतिहास हैं । रज़ा की रचनात्मकता के कई पहलू हैं । उनका अपना दायरा है सीमायें भी । उनकी रचनात्मकता की इस बहुआयामिता ही उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व की सबसे बडी खासियत है । रज़ाजी ने यद्यपि अक्सर सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी पैनी कलम चलाई है, फिर भी उनकी खास खूबी और पहचान उपन्यासकार के रूप में है ।

स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास में अपनी अलग पहचान बनानेवाले रज़ाजी की औपन्यासिक रचनाओं में भारतीय समाज

खासकर निम्नमध्यवर्गीय समाज की जातिगत व्यावसायिक एवं पारिवारि समस्याओं की साफ, तलख और बेलौस अभिव्यक्ति बड़े लोमहर्षक और अग्निवर्षक अन्तरंग चित्रण के साथ मिलती है ।

पृष्ठभूमि

विभाजन के बाद भारत में लूटपाट, हत्या, बर्बरता, हिंसा और अमानवीयता से भरा एक समाज ही उपलब्ध हुआ था । इन्हीं असामाजिक वृत्तियों का अंजाम विशेष रूप से मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग को ही झेलना पड़ा । इन्हों की समस्याओं को उद्घाटित करना रज़ा ने अपना दायित्व समझा । अतः रज़ा को रचनाएँ मानव-मूल्य की रक्षा तथा सामाजिक नवनिर्माण की उत्कट आकांक्षा से भरपूर है । जीवन के यथार्थ से उनका सीधा संबंध है । आसपास के यथार्थ को गहराई से अनुभव करके उन्होंने आम आदमी के तनावों, अन्तर्विरोधों एवं संक्रमण की स्थितियों को संवेदना के व्यापक स्तर पर उभारा है । अतः रज़ा आम आदमी के प्रति प्रतिबद्ध हैं । मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित होने के कारण आर्थिक-वैषम्य, धार्मिक भ्रष्टाचारिता, ज़मीन्दारी शोषणतंत्र आदि को वे हमारी समस्त बुराइयों का मूल मानते हैं । उनका कहना है - "भारत में नौकरियाँ जाति-पांति के आधार पर दी जाती है केवल योग्यता के आधार पर नहीं ।"[1]

रज़ा साम्यवादी है । वह इस बात पर ज़ोर देता है कि भारत में एकात्मकता की भावना का होना परम आवश्यक है ।

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाज शास्त्रीय अध्ययन -

यहाँ किसी के साथ जाति के आधार पर व्यवहार नहीं होना चाहिए क्योंकि भारतमाता की दृष्टि में सभी भारतवासी समान है । आगे इस रचनाकार का जीवन परिचय संक्षेप में दिया जायेगा ।

जीवन परिचय

डॉ. राही मासूम रज़ा का जन्म । अगस्त 1927 में उत्तरप्रदेश के गॉजीपुर जिले के मशहूर गाँव गंगौली के संपन्न एवं सुशिक्षित शिक्षा मुसलमान परिवार में हुआ । उनके पिता गाँजीपुर के जिला कचहरी में वकील थे । इसलिए गंगौली गाँव से उनका परिवार गाँजोपुर आकर बस गया । रज़ा के परिवार के अधिकांश संबंधी लोग गंगौली गाँव में रहते थे । पर वहाँ के विभिन्न उत्सव-पर्वों, शादी-ब्याहों में वे अपने परिवारवालों के साथ जाया करते थे । इसलिए रज़ा के व्यक्तित्व पर गाँजीपुर और गंगौली का गहरा प्रभाव पडा है । वे कहते हैं -"यह मेरा शहर है, मैं जब भी अपनी शहर की गलियों से गुज़रता हूँ यह मेरे कन्धे पर हाथ रख देता है । मेरी छोटी-बडी कहानियों के रास्ते पर मुझे जगह-जगह मिलता है ।"[1]

शिक्षा

डॉ. राही मासूम रज़ा की प्रारंभिक शिक्षा गाँजीपुर के राजकीय विद्यालय में हुई । हाईस्कूल की परीक्षा यूपी बोर्ड इलाहाबाद से उत्तीर्ण की । उच्चशिक्षा अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हुई । लेकिन

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 11

रज़ा चौदह वर्ष तक बीमार रहे । उनके पैरों में विकार आ गया था सबसे पहले पाँच साल तक बीमार रहा । उस समय की पढाई पूर्ण रूप से बन्द हो गयी थी इसके बाद फिर स्कूल जाना शुरू किया था । लेकिन बीमारी ने पूर्ण रूप से उसे छोडा नहीं । लगभग पन्द्रह वर्ष तक वह बीमार रहा । इसलिए पढाई का सिलसिला टूटता बनता रहा । वे अपने सबसे छोटे भाई के लेक्चरर बन जाने के बाद ही एम.ए.पास कर सके हैं । 1960 में उन्होंने एम.ए. की उपाधि विशेष सम्मान के साथ प्राप्त की है । 1964 में उन्हें अपने शोध-प्रबन्ध "तिलस्म-ए-होशरुबा में चित्रित भारतीय जीवन का अध्ययन" पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त हुई ।

नौकरी पेशा

अध्ययन समाप्त करने के बाद अलीगढ यूनिवेर्सिटी में ही अध्यापक बन गया । वहीं से जीविकोपार्जन की शुरूआत होती है । वहाँ चार वर्ष तक अध्यापन का कार्य करते रहे । लेकिन केवल अध्यापक-वृत्ति से जीविका चलाना कठिन ही था । समय समय पर वे साहित्य की रचना भी करते रहते थे । रज़ा को जीवन में बहुत अधिक यातनाएँ सहनी पडीं क्योंकि वे अपने एक कट्टर पन्थी मुसलमान परिवार का अंग होते हुए भी मुसलमानों के धार्मिक अनाचारों एवं रूढिवादिता का खुले मन से विरोध करते थे । इसलिए ही वे मुसलमानों के विरोध का पात्र बन गये । यद्यपि वे एक सच्चे साहित्यकार थे लेकिन उनके समय के लोग उनकी रचनाओं को गलत स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे । उनका प्रथम उपन्यास 'आधा गाँव' इसका स्पष्ट उदाहरण है । इसे अश्लील और फूहड रचना कहकर पाठ्यक्रम से ही निकाला दिया गया ।

"राही मासूम रज़ा का उपन्यास "आधा गाँव" लम्बे अरसे तक विवाद का विषय रहा है । विवादास्पद इन अर्थों में कि यह अश्लील और फूहड रचना है ।"[1] इसलिए ही उनके आगे की साहित्यिक रचनाओं के प्रति लोगों का यही दृष्टिकोण ही था । इसलिए रज़ा ने समझ लिया कि साहित्य सृजन से जीविकोपार्जन करना कठिन है । उस समय उसके पास कुछ नहीं थे । इसलिए ही रज़ा ने अपने अध्यापनवृत्ति छोडने का निश्चय किया । उस समय फिल्म तो एक ऐसा माध्यम था जिससे लोग बहुत अधिक आकर्षित थे । फिल्मी जगत में उस समय बहुत कम समय में अधिक रूपया कमाया जा सकता था । रज़ा जी भी इसी इच्छा से अलीगढ़ छोडकर फिल्मी ज़िन्दगी के मायालोक बंबई में आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने फिल्म में लेखन करना शुरू किया । वहाँ जीने के लिए उन्होंने जो तोड परिश्रम किया । इस कार्य में वे बहुत अंश तक सफल भी निकले । फिल्मों में लिखने के साथ साथ वे हिन्दी उर्दू में समान रूप से सृजनात्मक कार्य करते रहे । वे बंबई आकर ही एक कवि, कथाकार और फिल्मी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं । उनके बाद का जीवन बंबई में ही था ।

व्यक्तिगत जोवन

रज़ा का विवाह प्रेम विवाह था । उनकी पत्नी नय्यर इतनी पढी-लिखी नहीं थी । उन्हें साहित्य के प्रति कोई खास दिलचस्पी भी नहीं थी । दरअसल वह हिन्दी तथा उर्दू भाषा भी नहीं जानती थी । इसलिए रज़ा को कभी भी अपनी पत्नो की आलोचना का शिकार नहीं बनना पडा । उनके दो बच्चे हुए हैं । एक पुत्री और

---

1. औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षायें - डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी - पृ. 152

एक पुत्र । पुत्री का नाम मरियम और पुत्र का नाम आबू है । अपनी पत्नी तथा बच्चों से उन्हें अत्यधिक प्यार था । वे हमेशा अपने परिवार के साथ रहना चाहते थे । वे सन्नाटे में रहकर नहीं लिख सकते थे । वे हमेशा अपने परिवार के बीच उनकी भावनाओं के बीच में बैठकर लिखा करते थे ।

सामाजिक-साहित्यिक दृष्टिकोण

डॉ. राही मासूम रज़ा बहुमुखी प्रतिभासंपन्न रचनाकार हैं । सन् 1946 में ही उन्होंने अपना लिखना प्रारंभ किया था । अपनी रचनाओं और वक्तव्यों में उन्होंने अपने साहित्यिक सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । दरअसल उन्होंने जो कुछ लिखा वे सब अपने समय और समाज की सच्चाईयों से रूपायित साहित्यिक और सामाजिक दृष्टिकोण और विचार की शाब्दिक अभिव्यक्ति है । स्वतंत्रता परवर्ती भारत की सामाजिक परिस्थितियों ने उनके साहित्यिक दृष्टिकोण को रूपायित किया । उन्होंने समझ लिया कि समाज में होनेवाली समस्याओं के मूल को जनता के सम्मुख सही ढंग से उपस्थित करने का सर्वाधिक सच्चा माध्यम साहित्य ही है । इसलिए ही सामाजिक विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों पर कडा प्रहार करनेवाले आधुनिक हिन्दी कथाकारों में रज़ा का महत्वपूर्ण स्थान है । स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश विभाजन से समाज में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं उनसे प्रेरित होकर रज़ा साम्यवादी विचारधारा के समर्थक बन गए । "अलीगढ में रहते हुए भी राही ने साम्यवादी दृष्टिकोण का विकास कर लिया था और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य भी हो गये थे ।"[1] इसलिए उनके व्यक्तित्व

में एक धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दृष्टिकोण की झलक दिखाई देती है । उनका दृढविश्वास है कि भारत विभाजन भारत की जनता की इच्छा के विरुद्ध हुआ था । वह अंग्रेज़ों की कूटनीति और साजिश का अंजाम है। ये गोरे हमेशा जनता के बीच में फूट पैदा करके उससे लाभ उठाने की चाल को अपनाते रहे हैं इस चाल को समझने में भारत की जनता असफल ही रही । भारत विभाजन इसका नतीजा हैं । "स्वतंत्रता परवर्ती भारतीय राजनीतिक वातावरण अंग्रेज़ों की फूट-परस्ती राजनीति का परिणाम है । अत: अंग्रेज़ इस कोशिश में रहे कि हिन्दु-मुस्लिम एकता कभी नहीं हो पाये । इसके लिए उन्होंने भरसक प्रयास किए ।"[1]

स्वतंत्रता तथा तदुपरांत हुए भारत - पाक विभाजन ने हमारी राजनीतिक हलचल को अधिक से अधिक बढावा दिया है । शासन के क्षेत्र में सब कहीं षड्यंत्र ही षड्यंत्र नज़र आये । राजनीतिक सत्ता प्राप्त व्यक्ति हमेशा अपने दल का हितैषी ही रहा । वह अपने स्वार्थ के लिए या अपने समर्थकों के लिए अपने पद और शक्ति का दुरुपयोग करता रहा । सरकारी कार्यालयों में उच्चवर्गीय अफसरों से लेकर निम्न स्तर के चापरासी भी रिश्वत के बिना कोई काम नहीं करते ।

ज़मीन्दारी षड्यंत्र के परिणाम स्वरूप उत्पन्न किसान जीवन की दयनीय स्थितियाँ, आधुनिक औद्योगीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याएँ, अत्याचार, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, लूट-कमोट, कत्ल आदि स्वतंत्र भारत की राजनीतिक हलचल के ही परिणाम हैं । राजनीति के क्षेत्र में धर्म के नाम पर विभिन्न दल उत्पन्न हुए । स्वतंत्रता परवर्ती

---

1. रचना के सामाजिक आधार - डॉ. सूरज पालिवान - पृ. 50

भारतीय समाज की इस दयनीय स्थिति का गहरा प्रभाव रज़ा के व्यक्तित्व पर पडा । रज़ा की दृष्टि में हमारे समस्त राजनीतिक हलचल का मूल कारण हमारी धर्मान्धता ही है । उनके मत में जब तक भारतवासी धर्मान्धता से मुक्त नहीं हो पाता तब तक हमारी इस व्यवस्था में बदलाव नहीं आयेगा । उन्होंने राष्ट्रीय एकात्मकता की समस्या का तटस्थ भाव से विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है -"इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब सभी भारतवासी संकीर्ण जाति पाँति के विचारों से ऊपर उठकर अपने आपको एक सच्चे भारतवासी के रूप में देखें और सभी भारतवासियों को अपने ही भाई समझकर उनके साथ समानता का व्यवहार करें ।"[1] इस प्रकार रज़ा ने धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दृष्टिकोण को हमारे सामने प्रस्तुत किया है जो उनके व्यक्तित्व का ही अभिन्न अंग है ।

हिन्दुस्तान की सबसे दर्दनाक घटना है भारतविभाजन जिसका मूल कारण धार्मिक भ्रष्टाचार है । लेकिन विभाजन से जिन समस्याओं के सुलझ जाने की कल्पना थी वे सब विभाजन के उपरान्त और तीव्रता के साथ बनी रही । "हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक सांस्कृतिक स्तर पर जितनी दूरी तब थी, आज भी है शायद आज पहले से भी अधिक ।"

रज़ा धर्मनिरपेक्ष मानसिकता बरतनेवाले व्यक्ति थे । इसलिए ही उन्होंने मुस्लिम लीग की पृथकतावादी दृष्टिकोण का खण्डन किया था । उनके मत में भारत पाक विभाजन मुस्लिमलीग के इस अलगाव-वादी दृष्टिकोण का परिणाम है । एक कट्ठर पन्थी मुसलमान परिवार का सदस्य होते हुए भी रज़ा ने मुस्लिम लीग, पाकिस्तान और दिग्भ्रमित

---

1. रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन-

कट्ठरपन्थी सांप्रदायिकता के खिलाफ एक राष्ट्रीय धर्मनिरपेक्ष मानसिकता को ही अपना लिया था और उसको अपनी रचनाओं द्वारा संप्रेषित भी किया । रज़ा के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खासियत यही है कि वे अपने को मुसलमान नहीं मानते बल्कि मनुष्य तथा भारतवासी मानते हैं ।

साहित्य में प्रवेश

रज़ाजी ने अपना लेखन-कार्य स्वतंत्रता प्राप्ति वर्ष के एक वर्ष पूर्व यानी 1946 में प्रारंभ किया था । उर्दू पत्रिका में अपनी पहली कहानी -"मुहब्बत के सिवा" के प्रकाशन के साथ उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया । तब से लेकर वे निरन्तर रचना धर्मिता से जुड़े रहे । रज़ाजी का रचना संसार बहुत ही व्यापक और विशाल है । उन्होंने हिन्दी साहित्य की कई विधाओं में अपने लेखकीय व्यक्तित्व का शब्दांकन किया । जब से उन्होंने क्रमिक लेखन शुरू किया था तब से उन्होंने दायित्वबोध महसूस किया । तभी तो उनमें साहित्य को व्यापक और समकालीन संदर्भ में समझने की चेतना प्राप्त हुई । साहित्य को देखने के उनके नज़रिए में तब्दीली आयी । इस प्रकार साहित्य को देखने, समझने, जीवन और जगत के साथ उसके तमाम सरोकारों को पहचानने का सफर हुआ । रज़ा में साहित्य-चिन्तन-प्रक्रिया का विकास हुआ । इससे साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की भूमिका का वैचारिक विश्लेषण प्राप्त हुआ ।

कृती व्यक्तित्व

रज़ाजी का कृती व्यक्तित्व कवि, निबन्धकार,

उनकी रचनाशीलता एवं व्यक्तित्व की अमिट छाप उनके कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार, रेखाचित्रकार में देखी जा सकती है ।

कवि

डॉ. राही मासूम रज़ा की कविताएँ उनकी सामाजिक यथार्थ की पहचान और उनकी विद्रोही दृष्टि का परिचय देती ही है, साथ ही साथ बिंब निर्माण की उनकी क्षमता को उद्घाटित करती हैं । सामाजिक यथार्थ की पहचान करने के दावा मिथ्या दंभ है जब कि इस देश के करोडों लोगों की भूख को न पहचाना जाय । सरकारें आती हैं जाती हैं, वायदे होते हैं, व्यापारी और व्यवसायी वर्ग हर बदली हुई सरकार की जय बोलकर अपना उल्लू सीधा करता है । सरकारी अफसरों की नीति में आज भी कोई खास फरक नहीं पडा है । चमचे और दलाल उसी निष्ठा से जी हुज़ूरी करते हैं और टुकडे पाते रहते हैं । किन्तु आम आदमी हर हालत में व्यवस्था के महल के बाहर उपेक्षित सा पेट पकडे कराहता रहता है । आम आदमी की इस नियति की उपेक्षा करके न यथार्थवादी होने का दावा किया जा सकता है न विद्रोही होने का । रज़ाजी यथार्थवादी होने का दंभ करनेवाले नहीं थे । उन्होंने अपनी कविताओं में आम आदमी के दुख-दर्द और जीवन यथार्थ को ही छन्दोबद्ध करने का प्रयास किया है । उनकी कविताओं में ईमानदारी इतना अधिक है कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है । गरीबी तो राही की ज़िन्दगी को सहचरी हो थी । वे गरीबी और भूख का सच्चे जानकार हैं । गरीबी ने राही की आवाज़ में एक अजीब कडवाहट पैदा कर दी थी जो उनकी इस कविता में प्रकट होती है :-

"तेज़ चलने लगी (मुसाफिरन) में हवा
गर्द पड़ने लगी आईने पर
जागते रहने का हासिल क्या है
आओ, सो जाओ, मेरे सीने पर
ख़्वाब तो दोस्त नहीं है कि बिगड़ जायेंगे
ख़्वाब तो दोस्त नहीं है कि हमें धूप में देखेंगे तो कतरायेंगे
ख़्वाब तो दोस्त नहीं है कि जो बिछड़ेंगे तो याद आयेंगे
जागते रहने का हासिल क्या है
अध्वलेशब (रात के पहले हिस्से में) उसे देखा था जहाँ
चाँद ठहरा है उसी जीने पर
आओ तो जाओ, मेरे सीने पर ।"[1]

सामाजिक जीवन के यथार्थ ही रज़ाजी की कविताओं को आधार भूमि है । वे साम्यवादी दर्शन के आग्रह करनेवाले सामाजिक चेतना के पक्षधर कवि हैं । उनकी दृष्टि आम आदमी के दुख दर्द और संघर्ष को पहचानती है । वह हर प्रकार की व्यवस्था के शोषण के विरुद्ध सुगबुगाती हुई चेतना को चीन्हती है तथा उस चेतना को और भी तीव्र बनाना चाहती है ।

रज़ाजी उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में कवितायें लिखी हैं । "नया माल", "मौजे कुल: मौजे सबा" उर्दू में रचित उनकी कविताएँ हैं । इनका प्रकाशन 1954 में हुआ था । "टकसेभय" (1964) और "अजनबी शहर अजनबी रास्ते" (1964) उनके हिन्दी काव्य-संग्रह है ।

---

1. सारिका - पृ. 65 - 21 जुलाई 1978

उनकी एक हिन्दी कविता है - "मैं एक फेरीवाला" । उन्होंने "अठारह सौ सत्तावन" नामक एक महाकाव्य भी लिखा जिसका प्रकाशन 1965 में हिन्दी पत्रिका में हुआ ।

एक कवि के रूप में डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने अमूल्य व्यक्तित्व का परिचय दो दिया है । वे आम आदमी के प्रति प्रतिबद्ध हैं । उनका यही दृष्टिकोण उनको कविताओं में अभिव्यक्ति पायी है ।

कहानीकार

डॉ. राही मासूम रज़ा का मानवतावादी स्वर उनकी कहानियों में मुखरित है । कहानी कला की दृष्टि से उनकी कविताएँ पूर्ण रूप से सफलता पायी हैं । तत्कालीन समय के समाज हो उनकी कहानियों का मुख्य विषय है । उस समय अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा कहानी अधिक सुसंपन्न और लोकप्रिय रही हैं । हिन्दी साहित्यिक जगत में उनके ऐसे महान साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने हिन्दी कहानी को अत्यधिक समृद्ध बना दिया है । प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जैसे लोग इनमें प्रमुख हैं । जिस समय डॉ. राही मासूम रज़ा साहित्य सृजन करते रहते थे उस समय हमारो कहानी साहित्य का सुवर्णकाल ही था । रज़ाजी ने भी अपनी कहानियों द्वारा हिन्दी कहानो साहित्य को समृद्ध बनाने का सराहनीय कार्य किया है । उनकी कहानियाँ जैसे -"एम. एल. ए साहब", "खलीफ अहम्मद बूआ", "सपनों की रोटी" आदि इस बात का स्पष्ट संकेत है । रज़ाजी की कहानियाँ अपने समय का सही दस्तावेज़ है ।

उन्होंने तत्कालीन समय के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं को अपनी कहानियों के लिए विषय बनाया है । राजनीतिक नेताओं के छल-कपट, धार्मिक नेताओं के धर्म के काम पर किये जानेवाले विभिन्न अत्याचार, इन सभी नेताओं के कपटजाल में फँसकर दुरितपूर्ण ज़िन्दगी बितानेवाले निरीह निर्धन भारतीय जनता का वास्तविक रूप आदि उनकी कहानियों का प्रमुख विषय है । अतः अपने समय की वास्तविकता की अभिव्यक्ति में डॉ. राही मासूम रज़ा की कहानियाँ पूर्ण रूप से सक्षम हैं ।

रेखा चित्रकार

रेखाओं द्वारा बनाए हुए चित्रों को रेखाचित्र कहते हैं । रेखाचित्रों में शब्दों के सहारे व्यक्ति का भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है । हिन्दी में रेखाचित्र शैली का प्रारंभिक विकास वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में मिलता है । इसके बाद रेखाचित्र की परंपरा आगे बढा । हमारे अनेक साहित्यकारों ने रेखाचित्र लिखे हैं । बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, हरिशंकर शर्मा आदि लेखकों ने इस परंपरा को विकास की दिशा दी । हिन्दी के प्रमुख रेखाचित्रकारों में महादेवी वर्मा का उल्लेखनीय स्थान है । उनके "अतीत के चलचित्र", "मेरा परिवार" आदि इसका स्पष्ट सबूत है । हमारे परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था में भी रेखाचित्र नामक गद्यविधा अधिक समृद्ध होती रही । धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, फणीश्वरनाथ रेणु आदि अनेक प्रमुख रेखाचित्रकार हिन्दी में हुए हैं । डॉ. राही मासूम रज़ा ने भी रेखाचित्र के क्षेत्र में अपनी तूलिका चलाई है ।

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने एकलौते रेखाचित्र द्वारा रेखाचित्रकार के रूप में काफी ख्याति प्राप्त की है । "छोटे आदमी की बडी कहानी" नामक उनका रेखाचित्र सन् 1966 में प्रकाश में आया । इस रेखाचित्र में उन्होंने हवलदार अब्दुल हबीब के जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है । इस रेखाचित्र में भी रज़ा का मानवतावादी स्वर मुखरित है । गरीबी और भूख से पीडित एक साधारण व्यक्ति का चित्र इस रेखाचित्र में हम पाते हैं ।

निबन्धकार

कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और रेखाचित्रकार के अलावा निबन्धकार के रूप में भी डॉ. राही मासूम रज़ा ने काफी शोहरात पाया है । उन्होंने कई विषयों को लेकर कई महत्वपूर्ण निबन्ध लिखे हैं । उनके निबन्ध समकालीन सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर केन्द्रित हैं । उनके निबन्ध उनके नये रूप को उजागर करते हैं । जीवन के प्रति आस्था खण्डित करनेवाले साहित्य के प्रति रज़ाजी की आस्था जम नहीं पाती, इसलिए वे अपने लेखन में जीवन आस्था को जिलाये रखने की कोशिश करते हैं ।

आज के आस्थाहीन एवं बखिया उडानेवाले इस युग में तृप्ति और आस्था का स्वर ही रज़ा के निबंधों में मुखर हुआ है । "शमा पत्रिका" में रज़ा के अनेक निबंध प्रकाशित हुए हैं ।

रज़ाजी में अपने निबंधों के अपने सौन्दर्य संवेदन को, अनुभूत क्षणों की ऊर्जा को व्यक्त करते हैं वह यथार्थ जगत् की विचलनकारी सच्चाइयों के बीच से गुज़रनेवाले रचनाकार के मानवीय सरोकारों और पक्षधरता का एक जीवन्त दस्तावेज बन जाता है ।

उपन्यासकार

डॉ. राही मासूम रज़ा यद्यपि एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं तथापि उपन्यास के क्षेत्र में ही उनके व्यक्तित्व की झलक अधिक पायी जाती है । आधुनिक गद्य-विधाओं में उपन्यास सबसे लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । मानव के प्रगतिशील जीवन विधि को प्रस्तुत करने में सर्वाधिक सक्षम साहित्यिक-विधा उपन्यास ही है । एक प्रगतिशील एवं मानवतावादी साहित्यकार होने के कारण डॉ. राही मासूम रज़ा उपन्यास के द्वारा अपनी भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति कर पायी है । उनके उपन्यासों में आम आदमी के स्वर मुखरित है । अपने उपन्यासों द्वारा उन्होंने मानव के संपूर्ण जीवन को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है । उनके उपन्यासों में हमारी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक समस्याओं का व्यापक एवं सशक्त चित्रण देखा जा सकता है । विशेषकर, भारत के निम्न मध्यवर्गीय समाज की जातिगत, धार्मिक, व्यावसायिक एवं पारिवारिक समस्याओं के लोमहर्षक एवं अग्निवर्षक अंतरंग चित्रण दिखाई पडता है । उनके उपन्यासों में व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का सम्मिश्रित रूप भी देखा जा सकता है । सामाजिक समस्याओं से पीडित व्यक्ति की व्यथाओं का चित्रण रज़ा ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है । उन्होंने जिन-जिन समस्याओं को अपने उपन्यासों में उभारा है ये सब अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर है । इसलिए इसमें ईमानदारी का अंश बहुत अधिक है । "व्यक्ति की समस्याओं से लेकर सार्वभौमिक समस्याएँ उनकी उपन्यास सृष्टि में अन्तर्निहित हैं । भारतीय जीवन की अधिकांश समस्याएँ उनकी लेखनी का विषय बनी हैं ।"[1]

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 234

मुहब्बत के सिवा

डॉ. राही मासूम रज़ा का सर्वप्रथम उपन्यास है - "मुहब्बत के सिवा" जो 1950 में उर्दू में प्रकाशित हुआ । लेकिन साहित्य-जगत में इस उपन्यास का कोई खास महत्व नहीं मिला । रज़ा के इस उपन्यास के बारे में बहुत कम लोग ही जानते हैं ।

आधा-गाँव

उपन्यासकार के रूप में रज़ा की ख्याति उनके उपन्यास "आधा गाँव" द्वारा ही हुआ । यह इसलिए है कि इस उपन्यास के बारे में बहुत अधिक विवाद प्रचलित थे । उस समय बहुत अधिक आलोचकों ने अश्लील रचना कहकर पाठ्यक्रम से भी निकाला दिया था । इस उपन्यास में प्रयुक्त भाषा और गालियों को लेकर अधिक विवाद चला था । और दूसरी बात यह है कि इसमें शिक्षा मुसलमानों के मज़ाक उडाया गया है । इसके पीछे के यह विवाद इय उपन्यास को प्रसिद्धि का कारण बना । "राही मासूम रज़ा का "आधा गाँव" लंबे अरसे तक विवाद का विषय रहा है । विवादास्पद इन अर्थों में कि यह अश्लील और फूहड रचना है । उर्दू कथा साहित्य की अतियथार्थवादी कामुक प्रवृत्ति की घटिया नकल है । यह भी विवाद चला कि पाठ्यक्रम के स्तर पर पढाई जाने योग्य कतई नहीं है ।"[1]

आधा गाँव" उपन्यास का प्रकाशन सन् 1966 में हुआ । इस उपन्यास में रज़ा ने उत्तरप्रदेश के गाँजीपुर जिले के गंगौली गाँव और

---

1. औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ - डॉ. आदित्य प्रसाद त्रिपाठी - पृ. 152

वहाँ के शिआ मुसलमानों की जीवन कथा प्रस्तुत की है । उन्होंने अपने उपन्यास का मकसद स्पष्ट करते हुए कहा -"वह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफर है । मैं गाँजीपूर की तलाश में निकला हूँ लेकिन पहले मैं अपने गंगौली में ठहरूँगा । अगर गंगौली की हकीकत पकड में आ गयी तो मैं गाँजीपूर का एपिक लिखने का साहस करूँगा ।"[1] रज़ा ने इस उपन्यास में गंगौली गाँव के शिआ मुसलमानों के बाह्य एवं आन्तरिक जीवन की कुण्ठाओं, प्रेरणाओं, परंपराओं और समस्याओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है । अत: इस उपन्यास में सन् 1937 से लेकर सन् 1952 तक की घटनाओं का तथा गंगौली के शिआ मुसलमानों पर उनके प्रभावों का वर्णन किया गया है । उनकी दृष्टि में "यह कहानी न धार्मिक है न राजनीतिक, क्योंकि समय न धार्मिक होता है न राजनीतिक ..... और यह कहानी है समय ही की ।"[2]

"आधा गाँव" का कथानक "उद्गम", "मियाँ लोग", "ताना बाना", "नमक", "गाथा", "प्यास" और "तन्हाई जैसे कई मंजिलों से गुज़रता हुआ नई पुरानी रेखाओं में समाप्त होता है । यों शीर्षक देकर राही ने कथानक को एक सूत्र में बाँध दिया है । उपन्यास में लेखक ने स्वयं को कथावाचक के रूप में प्रस्तुत किया है वह एक ऐसा कथावाचक चाहता है जो गंगौली के शिआ समुदाय की भीतरी बातें जानता हो । लेखक स्वयं इस समुदाय के अंग होने के कारण इस लक्ष्य में सफल भी हो जाते है । वे कहते हैं -"इस कहानी में जगह जगह "मैं" इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूँ कि यह कहानी मुझसे दूर न जा सके कि मैं जब चाहूँ इसे छू लूँ ।"[3]

---

1. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा - पृ. 11
2. वही - पृ. 11
3. वही - पृ. 12

आधा गाँव में कोई एक कथा नहीं बल्कि विभिन्न कथाओं की एक माला ही पिरोयी गयी है जैसे सैफुन्निया और मिग्दाद की कहानी, बच्छन और साफिया की कहानी, फुन्ननमियाँ और हक्कीम साहब के टूटे व्यक्तित्व की कहानी, तन्नू और कम्मों के निर्भीक व्यक्तित्व की कहानी इन सबका समन्वयन इसमें दिखाई पडता है । इन कथाओं के सृजन में राही की लेखकीय क्षमता निखर उठी है । क्योंकि ये सब मिलकर पाकिस्तान का रूपायन तथा ज़मीन्दारी उन्मूलन से उत्पन्न गहन पीडा और निर्धनता का यथार्थ चित्र हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं । पर राही की खासियत यह है कि इनमें से कोई भी घटना काल्पनिक प्रतीत नहीं होती ।

"आधा गाँव" उपन्यास की एक मुख्य घटना है मोहर्रम जो मुसलमानों का एक धार्मिक त्योहार है । इसी मोहर्रम की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय संघर्ष, पाकिस्तान का गठन, देश की स्वतंत्रता, ज़मीन्दारी उन्मूलन आदि संकेतित है । विभाजन की विभीषिका से ग्रस्त गाँजीपुर के भूमिखण्ड गंगौली के निवासियों का यथार्थ और मार्मिक चित्रण इस उपन्यास के प्रमुख उपलब्धि है । हिन्दी में रज़ा ने ही सबसे पहले हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष को इतनी वास्तविकता के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है । "यह पहला उपन्यास है जिसमें हिन्दू और मुसलमान की द्वन्द्वात्मक वास्तविकता को इतने तीखे और यथार्थ रूप से परिभाषित करने की सार्थक कोशिश की गयी है ।"[1]

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है । यहाँ विभिन्न धर्म और जातिवाले लोग मिल जुलकर रहते हैं । यद्यपि भारत में मुसलमानों

---

1. आधा गाँव एक आलोचनात्मक अध्ययन - दिलशाद जिलानी - पृ. 9

की संख्या बहुत कम है तो भी यह समुदाय भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है । लेकिन अन्य भारतवासियों की अपेक्षा उन्हें अधिक समस्याओं का सामना करना पडा है । डॉ. रज़ा तो स्वयं शिआ समुदाय के जीवन से वाकिफ है । इसलिए आधागाँव में उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर मुसलमानों की विभिन्न समस्याओं का अत्यन्त मार्मिक एवं वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है । गंगौली के शिआ मुसलमानों ने अपने जीवन की प्रतिकूलताओं का किस प्रकार सामना किया है इसका भी स्पष्ट चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है । साम्प्रदायिक समस्या, ज़मीन्दारी समस्या, नारी समस्या, बेरोज़गारी की समस्या, दरिद्रता की समस्या, पारिवारिक जीवन की समस्या आदि आधागाँव में चित्रित समस्यायें दरअसल उस समय संपूर्ण भारतीय समाज में व्याप्त समस्यायें ही थी । अतः आधा गाँव 1937 से लेकर 1952 तक के भारत विभाजन के उथल पुथल का सही दस्तावेज़ निकलता है ।

हिम्मत जौनपुरी

राही मासूम रज़ा का दूसरा उपन्यास है - "हिम्मत जौनपुरी" जो 1969 में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास में रज़ा ने हिम्मत जौनपुरी नामक एक मुसलमान की जीवनगाथा प्रस्तुत की है । हिम्मत जौनपुरी एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन भर सपना बुनता रहा । लेकिन जीवन के यथार्थ और सपनों के बीच के संघर्ष में उसका जीवन उलझ जाता है । रज़ा ने इस उपन्यास में हिम्मत जौनपुरी का परिचय देते हुए कहा है, "श्री हिम्मत जौनपुरी की कहानी एक ऐसे निहत्ते की कहानी है जो जीवन भर जीवन का हक माँगता रहा ।

जो एक सीन से दूसरे सीन में डिज़ालव होता रहा और डिज़ालव होने की इस कोशिश में एक दिन फेड अउट हो गया ।"[1]

हिम्मत जौनपुरी के कथानक को लेखक ने तीन भागों में बाँटा है । प्रथम भाग में हिम्मत जौनपुरी के पूर्वजों के पारिवारिक जीवन का वर्णन है । फिर हिम्मत के जन्म से लेकर बंबई जाने से पूर्व तक के जीवन का संक्षिप्त वर्णन मिलता है । तीसरे भाग में उसके बंबई जीवन का संक्षिप्त परिचय है । बंबई में रहते वक्त गफ्फार चा नामक चाय के दूकानदार से तथा यमुना नामक प्लेटफार्म पर रहनेवाली एक वेश्या से उसका परिचय होता है । धीरे धीरे वह यमुना से प्रेम करने लगता है । लेकिन वह जिस वातावरण में रहती थी वहाँ प्राय: आपस में झगडा हुआ करता था । एक आपसी झगडे में वह भी फँस गया और कुछ दिनों बाद एक दुर्घटना में उसका अन्त भी हो गया ।

रज़ा ने इस उपन्यास में हिम्मत जौनपुरी के जीवन चरित्र के ज़रिए भारत के मुसलमान जीवन के संस्कारों तथा अन्तर्द्वन्द्वों का मुखर चित्र प्रस्तुत किया है । जीवन के कटु यथार्थ को भूलने के लिए सपना देखनेवाली तथा अंत में यथार्थ का सामना करनेवाली यमुना जैसे पात्र के माध्यम से बंबई महानगर के भारतीय जनजीवन की नाटकीयता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है । हिम्मत जौनपुरी के माध्यम से एक सामान्य व्यक्ति के अरमान के टूटन और बिखराव को नये अन्दाज़ के साथ प्रस्तुत किया गया है । इसलिए ही यह उपन्यास राही के दीगर उपन्यासों से बिलकुल भिन्न है ।

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 54

टोपी शुक्ला

रज़ा का तीसरा उपन्यास है "टोपी शुक्ला" । इसका प्रकाशन भी ।969 में हुआ । राजनीतिक समस्या पर आधारित इस उपन्यास में रज़ा ने ग्रामीण जीवन को पृष्ठभूमि बनायी है । टोपी शुक्ला को ज़िन्दगी की दयनीय पराजय को रज़ा ने इसमें विषय बनाया है । टोपी शुक्ला और इफ्फन दोनों सहपाठी हैं । टोपी शुक्ला अपने भरेपूरे परिवार में उपेक्षित जैसा है इसी उपेक्षा भाव के कारण इफ्फन उसका घनिष्ठ मित्र बन जाता है । अपने एकान्त जीवन में टोपी को इफ्फन की दादी से अत्यधिक प्यार मिलता है । इफ्फन के पिता का किसी अन्य शहर में स्थानान्तरित हो जाने के कारण टोपी बिलकुल अकेला हो जाता है । पढाई समाप्त करने के पश्चात् इफ्फन अलीगढ यूनिवर्सिटी का अध्यापक बन जाता है । उस समय टोपी शुक्ला इफ्फन के घर में रहने लगे । एक हिन्दु के साथ मित्रता निभाने के कारण इफ्फन को अपने विभाग में रीडरशिप नहीं मिलती । उसी प्रकार इफ्फन के साथ की आत्मीयता के कारण टोपी को कोई नौकरी नहीं मिलती । टोपी के साथ इफ्फन की पत्नी के आत्मीय संबंध का गलत अर्थ लगाकर लोग टोपी को बदनाम कर देता है । इन अफवाहों से तंग आकर इफ्फन परिवार समेत काश्मीर चला जाता है और टोपी इफ्फन के घर में अकेला रहने लगता है । अपने एकान्त जीवन से तंग आकर अंत में वह आत्महत्या कर लेता है ।

जाहिर है कि इस उपन्यास में रज़ा ने भारत विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक यथार्थ का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है । टोपी और इफ्फन के शत्रु अपने ही जाति के लोग ही है । यह जानकर उनकी मित्रता और दृढ हो उठती है । वे जाति के नाम

पर नहीं मनुष्य के रूप में एक दूसरे को चाहते हैं । ऐसी आत्मीयता को मिटाना हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य के लिए असंभव है । यही रज़ा का मन्तव्य है । यह कोई कल्पना से उभरा हुआ मन्तव्य नहीं बल्कि अपने विशाल जीवनानुभव से निखरा हुआ है ।

ओस की बूँद

डॉ. राही मासूम रज़ा का चौथा उपन्यास है -"ओस की बूँद" । जो 1970 में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास की आधार भूमि भी हिन्दु-मुस्लिम समस्या है । पाकिस्तान बनने के बाद हुए सांप्रदायिक दंगों का जीता जागता वर्णन एक मुसलमान परिवार के द्वारा प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है वजीर हसन । उसके मकान के पीछे एक पुराना मन्दिर था । उस मन्दिर में पूजा करने के विषय को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच झगडा शुरू हो जाता है । धीरे धीरे यह एक साम्प्रदायिक दंगे का रूप ले लेता है । वजीर हसन पुलीस की गोली से मारा जाता है । बेहल शाह नामक एक पडोसी के इच्छानुसार वजीर हसन की कब्र उनकी मृत्यु के स्थान पर बनाने का निश्चय किया गया । हिन्दुओं ने इसका विरोध किया । वजीर हसन की पुत्री शहला ने इस पर मुकदमा दाखिल किया । एक दिन शहला मुकदमे संबंधी बातचीत के लिए वकील के घर जा रही थी । तब बलवे शुरू हो गये । बेहाल शाह ने उसे अपने घर में छिपा लिया । फिर उसने उसके साथ बलात्कार किया । बलवाईयों ने घर में घुसकर दोनों को मार डाला । सांप्रदायिक दंगों के कारण वजीर मियाँ ही नहीं हिन्दुओं के हाथों से हिन्दु बाबु बाँके बिहारीलाल का कत्ल किया गया है ।

हिन्दु के द्वारा हिन्दु का कत्ल और बेहालशाह द्वारा शहला पर बलात्कार इन दोनों घटनाओं से राही यह स्पष्ट करते हैं - "हिन्दु मुस्लिम समस्या वास्तव में कुछ नहीं है । यह सिर्फ राजनीति का एक मोहरा है, और जो असली चीज़ है वह इन्सान के पहलु में धडकनेवाला दिल और उसी दिल में रहनेवाले जज्बात है और इन दोनों का मजहब और जान से कोई ताल्लुक नहीं है ।"[1]

इस उपन्यास के द्वारा लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारत में अन्धविश्वास और धार्मिक रूढियाँ इसलिए इतना सुदृढ है कि यहाँ की जनता अशिक्षित एवं धर्मान्ध है । अत: शासक वर्ग को धर्म के नाम पर या जाति के नाम पर इनका शोषण करना बिलकुल आसान हो गया है । सामाजिक बुराइयों की तह में शासकों के स्वार्थ ही सक्रिय हैं । इस हकीकत का पर्दाफाश करना उपन्यासकार का मक्सद रहा है ।

दिल एक सादा कागज़

"दिल एक सादा कागज़" रज़ा का पाँचवाँ उपन्यास है । इसका प्रकाशन सन् 1973 में हुआ । इस उपन्यास के रचनाकाल में भारत के सामाजिक जीवन में कुछ बदलाव आ गया था । भारत में तथा पाकिस्तान में लोग शांतिपूर्वक जीवन बिताने लग चुके थे । इसलिए ही दिल एक सादा कागज़ में लेखक के दृष्टिकोण में बदलाव दिखाई पडता है । अत: इस उपन्यास में वे राजनीतिक समस्या को छोडकर सामाजिक विषयों की ओर उन्मुख हुए । यहाँ लेखक ने रफ्फन नामक व्यक्ति के जीवन चित्र के द्वारा फिल्मी कहानी लेखक के जीवन की गतिविधियों, आशा-निराशाओं एवं सफलता-असफलताओं का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है ।

---

1. ओस की बूँद - राही मासूम रज़ा - पृ. 4

रफ्फन की पढाई समाप्त होने के बाद उसका विवाह उसकी प्रेमिका जन्नत से हो जाता है । रफ्फन कुछ दिनों तक एक स्कूल में अध्यापक का कार्य करता रहा । उसके बाद नारायण गँज के डिग्री कालेज में उसे नौकरी मिल जाती है । यह नगर एक बडा सा औद्योगिक केन्द्र बन रहा था । अपनी पढाई के दिनों की बहूत सारी परिचित लडकियाँ वहाँ आने लगी नौकरी की तलाश में तथा अन्य किसी कारण से । रफ्फन इनसे मिलता रहा । पर उनके इस संपर्क से पत्नी उससे अप्रसन्न रहने लगी । एक बार रफ्फन पर यह आरोप लगाया गया कि उसने शारदा नामक एक युवती का बलात्कार किय है । इसके कारण उसको स्कूल से निकल दिया । जीविका चलाने के लिए वह कहानी लिखने लगा । धीरे धीरे वह एक महान कहानीकार और प्रोड्यूसर बन गया ।

"दिल एक सादा कागज़" का नायक रफ्फन में लेखक के व्यक्तित्व की झलक दिखाई पडती है । इसके संबंध में वे बताते हैं - "दिल एक सादा कागज़ मेरी जीवनी भी हो सकती है । पर वह मेरी जीवनी नहीं है ।"[1] रफ्फन के जीवन की घटनायें लेखक के जीवन की घटनाओं से कहीं कहीं मिलती हैं । इसका मतलब यह नहीं कि यह उपन्यास जैसे कि लेखक ने सृजित किया उनकी आत्मकथा हो । पर यह उपन्यास उनके अनुभवक्षेत्र से उभरा हुआ अवश्य है । इसलिए ही ईमानदारी का अंश ज़्यादा है ।

सीन - 75

राही मासूम रज़ा के छठे उपन्यास का नाम है - सीन - 75 । यह 1977 में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास का विषय भी

---

1. दिल एक सादा कागज़ - रज़ा - पृ. 7

फिल्मी संसार से संबद्ध है । इस उपन्यास में बंबई महानगर के जीवन की विविधताओं को उसकी समग्रता के साथ चित्रित करने का प्रयास दिखाई पड़ता है । उपन्यास में पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । अधिकांश पात्र फिल्मी जगत के हैं । उनके जीवन की असफलताओं एवं त्रासद अंतों का चित्रण इस उपन्यास को जीवन्त बना देता है । रचना का मुख्य लक्ष्य है फिल्मी जगत में वर्तमान हृदयहीन व्यवहारों का पर्दाफाश करना । लेखक फिल्मी जगत से संबद्ध रहने के कारण वहाँ का पूरा माहौल उपन्यास में जीवन्त हो उठता है ।

उपन्यास का अली अमजद एक लेखक है जो जीविकोपार्जन के लिए बंबई आ पहुँचता है । वह बंबई में अपने मित्रों के साथ एक फ्लैट में रहने लगा कुछ ही दिनों में एक मित्र लडकर उनसे अलग हो जाता है और एक दिन एक अन्य मित्र की हत्या भी हो जाती है । हरीश राय नामक एक मित्र एक बडी फिल्म बना रहा था । उसके लिए स्क्रिप्ट बनाने का काम अली अमजद को सौंप दिया गया । एक दिन सीन-75 लिखने के बाद वह अपने को अपने जीवन से बहुत उकताया सा दिखाई देने लगा । अंत में वह नींद की गोलियाँ खाकर मृत्यु का वरण कर लेता है । लेकिन उस शाम को होनेवाली हरीश राय की फिल्म के "प्राईमिया शो" के कार्यक्रम पर अली अमजद की मृत्यु का कोई असर नहीं पड़ा । उस प्रोग्राम में जब किसी ने हरीश राय से अली अमजद के बारे में पूछा तो उसने अत्यन्त भावहीन मुद्रा में यों कहा - "हाँ कल रात किसी वक्त वह मर गया । यह कहते कहते वह एकदम से मुस्कुरा दिया क्योंकि एक फोटोग्राफर पास खडी हुई हेममालिनी के साथ उसकी तस्वीर ले रहा था ।"[1] हरीश राय के वक्तव्य से यह जाहिर हो जाता है कि फिल्मी जगत में वैयक्तिक संबंध कितना उथला एवं सारहीन है ।

---

1. सीन - 75 - रज़ा - पृ. 131

कटरा बी अर्ज़ू

सन् 1978 में प्रकाशित रज़ा के सातवें उपन्यास "कटरा बी अर्ज़ू" का विषय राजनीतिक है । इसका कथानक आपातकाल में देश भर में व्याप्त विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों से संबंधित है । इस समय सरकारी अधिकारियों ने जनता को बहुत कष्ट दिया था । इन्दिरागाँधी ने ही देश में राजनीतिक स्थिरता लाने तथा जन आन्दोलन को खतम करने के लिए आपातकाल की घोषणा की थी । लेकिन इससे सरकार को या जनता को वाँछित फल नहीं मिला । यह काल भारतीय जनजीवन के इतिहास का काला अध्याय ही बन गया । सरकारी अफसरों एवं पुलिस अधिकारियां ने मिलकर जन्जीवन को यातनापूर्ण बना दिया तथा देश भर में आतंक भर दिया । रज़ा ने इस बदली हुई परिस्थिति को उसकी तीव्रता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य इस उपन्यास के द्वारा किया हैं ।

उत्तरप्रदेश के एक गाँव में रहनेवाले देशराज और उसकी पत्नी बिल्लो के जीवन की दर्दनाक घटनायें इस उपन्यास के केन्द्र में है । आपातकाल के समय देशराज के एक मित्र राजाराम के संबंध में पुलीस ने उनसे पुछताछ की । ठीक उत्तर न दे पाने के कारण पुलीसवालों ने उन्हें खूब मारा । इस अपमान के कारण देशराज पागल हो जाता है । संजय गाँधी के स्वागत के सिलसिले में गली चौडी करने के लिए देशराज की पत्नी से अपना घर छोडकर कहीं अन्यत्र जाने को कहा गया । पर उसने इनकार कर दिया । रास्ता चौडा करते समय बिल्लो एक बुलडोसर की टक्कर से घायल होकर अपने नवजात शिशु के साथ मर जाती है । आपातकाल के पश्चात् एक स्थानीय एम.पी. श्री गौरीशंकर पाण्डेय के स्वागत के लिए आयोजित जुलुस में एक ट्रक की दुर्घटना में देशराज की मृत्यु हो जाती है ।

इस प्रकार एक परिवार की त्रासदी को दिखाकर आपातकाल के समय भारत समाज में हुए अत्याचारों एवं नृशंसताओं का गहरा चित्र रज़ा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं "यह दर्द केवल बिल्लो और देशराज का ही नहीं प्रेमा नारायण, शंभु मियाँ, भोलू पहलवान, इतवारी बाबू, बाबूराई, आशाराम, आदि के भी अपने अपने दर्द है जो अपनी हद पर पहुँचकर अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं ।"[1]

इस प्रकार "कटरा बी अर्ज़ू" एक मामूली कटरे की कहानी होते हुए भी पूरे देश के राजनीतिक नंगेपन को उतारनेवाली भी ठहरती है

रज़ाजी के उपन्यासों की चर्चा आगे के अध्यायों में विस्तार के साथ दिया जाएगा ।

फिल्मी क्षेत्र में रज़ा

साहित्य क्षेत्र के समान डॉ॰ राही मासूम रज़ा ने फिल्मी क्षेत्र में भी अपनी अलग व्यक्तित्व की छाप छोडी हैं । फिल्म तो उनके आकर्षण का केन्द्र नहीं था फिर भी परिस्थितिवश उसे एक फिल्मी लेखक बनना पडा । यह फिल्मी जगत तो रज़ा के लिए पसन्द नहीं था । वे एक सच्चे साहित्यकार बनना चाहते थे । उनकी अभिलाषा यह थी कि अलीगढ यूनिवर्सिटी का अध्यापक बनकर अपने इच्छानुसार साहित्य रचना कर जीना । लेकिन नियति को कभी नहीं बदला सकता । केवल अध्यापन वृत्ति या साहित्य की रचना से जीवनयापन करना उसके लिए कठिन सा हो गया । एक अभावग्रस्त ज़िन्दगी जीने के लिए वे तैयार नहीं थे ।

---

1 आधागाँव - एक आलोचनात्मक अध्ययन - [illegible]

इसलिए ही अलीगढ के प्रति अदम्य प्यार होते हुए भी वे अलीगढ छोडकर बंबई पहुँचता हैं । उस समय वे इतने दरिद्रा थे कि उसके पास रोज़गार के लिए भी पैसे नहीं थे । उनको पत्नी उस समय गर्भवती भी थो । "जब अलीगढ छुटा और मैं अपने परिवार के साथ बंबई आया तो मेरे पास एक हज़ार रूपये थे और एक अजनबी भविष्य था और मेरी बेटी मरियम पैदा होनेवाली थी ।"[1] उस समय भी उनके मन में यह दृढविश्वास था कि साहित्य-सृजन द्वारा किसी न किसी प्रकार पैसा कमाऊँ और परिवार का देखभाल करूँ । इसी दृढविश्वास के साथ उन्होंने साहित्य सृजन प्रारंभ कर दिया । लेकिन इसका विपरीत फल ही उनको मिला । साहित्य-सृजन द्वारा उनको कुछ भी नहीं मिला । बंबई आकर वे वास्तव में दरिद्र नारायण ही बन गये । अपनी पत्नी और पुत्री को अस्पताल से छुडवाते समय उसके पास एक कौडी भी नहीं थे । इसके लिए उन्हें अपने दोस्तों का सहायता लेना ही पडा । इसी अवसर पर ही उन्होंने यह समझ लिया कि साहित्य रचना द्वारा जीवनयापन करना कठिन ही है । "अभी तक मैं टूटने को तैयार नहीं था । मैं इसी में मग्न था कि लेखक हूँ..... लेखक उल्लू का पट्टा । भारती और कमलेश्वर ने साथ न दिया होता तो अस्पताल का बिल अदा करके मैं अपनी पत्नी और बेटी को अस्पताल से घर भी नहीं ला सकता था ।"[2]

इस प्रकार ही रज़ा साहित्य-लोक से फिल्म के मायालोक में पहुँचते हैं । फिल्म तो उस समय पैसा कमाने का सबसे आसान मार्ग था । इस प्रकार फिल्म तो रज़ा की रोज़ी रोटी का आधार बन गयी । फिल्मी जगत में प्रवेश करने के कारण लेखक को अपना साहित्यकार व्यक्तित्व

---

1. गर्दिश के दिन - कमलेश्वर - पृ. 150
2. वही - पृ. 150

टूटा फूटा सा महसूस होने लगा । वे एक ऐसे महान साहित्यकार बनना चाहते थे जो स्वतंत्र होकर खुले ढंग से लिख सकूँ फिल्मी क्षेत्र में वह आज़ादी नहीं वह साहित्य लोक में मिलते हैं । वहाँ प्रोड्यूसर या डायरेक्टर के इच्छानुसार ही लिखना पडता है । साहित्यकार अपने इच्छानुसार मन की भावनाओं को अभिव्यक्ति कर सकते है । रज़ा तो व्यक्ति स्वातंत्र्य का इच्छालु है । उनकी साहित्य रचनाओं में उन्होंने यह इच्छा प्रकट को हैं । इसलिए ही फिल्म लोग उसको बहुत उकसाया सा दिखाई पडा । फिर भी मज़बूरी से उसको फिल्मी लेखक बनना ही पडा । फिल्मी लेखक बनने के बाद लेखक के व्यक्तित्व में बहुत अधिक बदलाव आ गया । लेखक स्वयं यह पहचानते हैं । उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि वे अधिक से अधिक स्वार्थी बन गये हों । "जब सारा घर सो जाता है तो मैं यह सोचता हूँ कि वह राही मासूम रज़ा को क्या हुआ जो मेरे साथ बंबई आया था । मुझे अपने आपसे नफरत होने लगती है ।"[1]

रज़ा को अपनी पत्नी और बच्चे से अत्यधिक प्यार था । उनका ठीक ढंग से देखभाल करना उसके लिए सबसे बडा कार्य था । इसलिए ही वे बहुत आसानी से फिल्मी जगत की ओर आकर्षित हो गये । "क्या मैं अपनी बेटी को ज़िन्दा और खुश रखने के लिए एक लेखक को नहीं मार सकता, ज़रूर मार सकता हूँ, यदि आप मुझे ज़िन्दा रखना चाहते हैं तो मेरी तनख्वाह कुछ बढाईए । साढ़े पैंतीस रुपये माहवार में ज़िन्दा रहना मेरी बस की बात नहीं है ।"[2]

लेखक ने यहाँ अपनी दयनीय स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । वह एक ऐसा ज़माना था जहाँ ईमानदारी से

---

1. गर्दिश के दिन - कमलेश्वर - पृ. 150
2. वही - पृ. 150

कोई काम नहीं चलता । पैसा कमाने के लिए, ठीक ढंग से जीविका चलाने के लिए व्यक्ति को स्वार्थी बनना चाहिए । रज़ा भी अपने परिवार की देखरेख के लिए अधिक से अधिक स्वार्थी बन गये । उस समय फिल्म तो इतना जनप्रिय माध्यम था कि लोग इससे बहुत अधिक आकर्षित थे । साधारण जनता ही इसे अधिक चाहते थे । फिल्म तो एक ऐसा माध्यम है जिसमें जनसाधारण से संवाद कर सकता है । रज़ाजी ने बहुत अधिक फिल्में बनायी हैं - जिनमें प्रमुख है - "दुलहन", "गोलमाल", "मैं तुलसी तेरे आंगन की", "पती पत्नी और वो", "एक ही भूल", "जुदाई", "विदाई", तथा "मेहन्दी रंग लायेगी" आदि ।

फिल्मी लेखन से रज़ा ने अपनी ज़िन्दगी को समृद्ध बना दिया । लेकिन उन्होंने अपनी साहित्याभिरुचि को नहीं छोडा । वे फिल्म लेखन के साथ साहित्य-लेखन भी करता रहे । फिल्म तो उनके धन कमाने का माध्यम था साहित्य मानसिकतोष का माध्यम । इस प्रकार संपत्ति की दृष्टि से और संतृप्ति की दृष्टि से रज़ा की ज़िन्दगी सफल ही थी ।

निष्कर्ष

डॉ. राही मासूम रज़ा आधुनिक हिन्दी साहित्य के सफल रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य कई विधाओं में अपनी प्रतिभा का करिश्मा पेश किया है । उनकी रचनाओं के ज़रिए यह जाहिर होता है कि वे अपने समकालीन उपन्यासकारों से संवेदना के स्तर पर बिलकुल अलग हैं । वे नि:सन्देह प्रगतिशील मानसिकतावाले उपन्यासकार हैं । इसलिए ही उन्होंने स्वयं मुसलमान होते हुए भी अपने धर्म के अलगाववादी दृष्टिकोण का कडा विरोध किया था । हिन्दू-मुस्लिम एकता ही उनके

साहित्य का प्रमुख लक्ष्य रहा । हिन्दू और मुसलमान को अलग अलग रूपों में देखना वे पसन्द नहीं करते बल्कि वे उन्हें भारतीय के रूप में देखते हैं । भाषा के संबंध में उनकी यह समन्वयात्मकता काफी मुखर है । उनके उपन्यास विभिन्न संबंधों का संगम है । यह उनको मानवतावादी मानसिकता का परिणाम है ।

इस प्रकार देखें तो पता चलता है कि रज़ा विचार और व्यवहार के स्तर पर मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने समझने और स्वीकार करनेवाला रचनाकार हैं । वे जाति-धर्म-भाषा-धन संपत्ति आदि की सरहदों के परे जाकर मनुष्य को मनुष्य के रूप में पाने के लिए सतत सक्रिय रचनाकार हैं । उनकी रचनाएँ इस मानसिकता का सही दस्तावेज़ भी हैं । उनके कृती व्यक्तित्व का यह मानवतावादी स्वर उनकी रचनाओं में मुखर हुआ है । इस प्रकार एक सक्रिय साहित्यिक सर्जक और संवेदनशील एवं ईमानदार रचनाकार के रूप में रज़ा का हिन्दी साहित्य में काफी शोहरात है ।

अध्याय : तीन

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मुस्लिम जीवन-संदर्भ

प्रस्तावना

राही मासूम रज़ा के कृती-व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के उपरांत रज़ा के उपन्यासों में चित्रित मुस्लिम जीवन से संबंधित विभिन्न झांकियों का आंकलन करना बहुत ही वाजिब लगता है । रज़ा ने अपने उपन्यासों में अपनी परिचित दुनिया का नक्शा उतारने की कोशिश की है । उनकी परिचित दुनिया में मुसलमान जीवन भी मुख्य विषय के रूप में आता है । लेखक जब अपनी परिचित दुनिया की भावभूमि को अपनी रचनाओं में पेश करने की कोशिश करता है तब अपने समय और समाज उनकी रचनाओं में बखूबी के साथ प्रस्तुत होते हैं । यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि रज़ा जी किसी पक्षधरता से प्रेरित रचनाकार नहीं हैं । महज मुस्लिम जीवन को प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य भी नहीं रहा है । आगे हम रज़ाजी के उपन्यासों में चित्रित मुस्लिम जीवन पर प्रकाश डालेंगे । लेकिन इसके पहले इस्लाम और मुस्लिम जीवन की चर्चा करना अनुचित न होगा ।

इस्लाम

"इस्लाम" शब्द की व्युत्पत्ति अरबी धातु "सलम्" से हुई है, जिसका अर्थ है अन्य चीज़ों के समान शांति पवित्रता, समर्पण और आज्ञाकारिता ।"[1]

---

1. Islam in Focus : Hammuddah Audalati - P.7
   The word Islam is derived from the Arabic root 'SLM' which means among other things, peace, purity, submission and obedience.

"धार्मिक अर्थ में इस्लाम का मतलब है "ईश्वर की इच्छा के अनुसार समर्पण और उनके नियमों का पालन ।"[1]

"ईश्वर की इच्छा के अनुसार समर्पण और उनके नियमों के पालन से कोई सच्ची शांति और टिकाऊ पवित्रता प्राप्त हुए रहता है ।[2]

कुछ लोग इस्लाम धर्म को मुहम्मद निज़्म और उनके अनुगमन करनेवालों को मुहम्मदीय कहते हैं लेकिन यह उचित नहीं हैं । कुछ अन्य लोगों का विचार है इस्लाम भी एक अन्य इज़्म से ज़्यादा कुछ भी नहीं है । जैसे "जुदाइज़्म", "हिन्दुइज़्म" या "मार्क्ससिज़्म" । मुहम्मद निज़्म कहने से यह गलतबाज़ी होगी कि इस धर्म के संस्थापक मुहम्मद हैं । मुहम्मद, अल्लाह द्वारा भेजा गया एक प्रचारक मात्र है । इसलिए इस धर्म का असली नाम इस्लाम है । "जो इस धर्म का अनुगमन करते हैं उन्हें मुस्लिम या मुसलमान कहते हैं । इस्लाम धर्म की ईश्वर संबंधी संकल्पना में वे बड़े रहमदिल दयालु बड़े ही प्रेमी और मानव समुदाय की भलाई के लिए चिन्तित हैं । उन्हें अपनी सृष्टि के सभी प्राणियों के प्रति ध्यान हैं । इसी प्रकार उनकी

---

1. Islam in Focus - Hammuddah Audalati - P.7
   In the religious sense the word Islam means - Submission to the will of God and by obedience to His Law .
2. Ibid - P.7
   Only through submission to the will of God and by obedience to His Law can one achieve true peace and enjoy lasting purity.

इच्छा परोपकार से भलाई की इच्छा है । उनके द्वारा बनाया गया नियम मानव समुदाय की अच्छाई के लिए है ।"[1]

जैसा कि ऊपर व्यक्त किया है जो लोग इस्लाम धर्म का अनुगमन करते हैं उन्हें मुस्लिम या मुसलमान कहते हैं ।

जीवन संबंधी संकल्पना

"जीवन ईश्वर की बुद्धि और ज्ञान का उज्वल प्रदर्शन है वह उनकी कला और शक्ति की तलख प्रतिछाया है । वे ही जीवन के लेनदार -देनदार हैं । मनुष्य को जीवन ईश्वर के द्वारा दिया हुआ है । उसे वापस लेने का अधिकार उनको ही है । किसी को भी उसे नष्ट करने का अधिकार नहीं ।"[2]

---

1. Islam in Focus - Hammudah Abdulati - P.8
   The true name of the religion, then, is Islam and tho who follow it are Muslims.... The concept of God in Islam describes thim the Most Merciful and Gracious and the Most Loving and Most concerned with the well being of man and a full of wisdom and care for his creatures. His will according is a will of Benevolenc and Goodness and whatever Law He prescribes must be in the best interest of mankind.
2. Ibid - P.28
   Life is a brilliant demonstration of God's Wisdom and knowledge a vivid reflection of this art and power. He is the giver and creator of life .... Life is give to man by God and he is the only Rightful one to take it back. No one else has the right to distroy a life.

ज़िन्दगी ईश्वर का एक न्यास है और मनुष्य न्यासी है, जिसे अपने न्यास को बडी ईमानदारी, कुशलता, ईश्वरीयता और उनके प्रति जिम्मेदारी के एहसास के साथ निभाना होगा । ज़िन्दगी को एक खास बिन्दु से शुरू की जानेवाली और एक निर्दिष्ट अन्त होनेवाली यात्रा मानी जाती है । वह एक संक्रमण स्थिति है, तदनन्तर के अनन्त जीवन की भूमिका है । इस सफर में मनुष्य एक मुसाफिर है । इस सफर में उसे सभी संभव शुभकार्य करना चाहिए । जीवन के अंत हो जाने पर वह कुछ भी नहीं कर पायेगा । इसलिए जोवन का सच्चा उपयोग उसे ईश्वर के कथनानुसार मोडने में है और भविष्य के अनन्त जीवन के रास्ते को सुरक्षित रखने में है । इसलिए जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए इस्लाम ने संपूर्ण विधि विधान और उसूल बनाये हैं कि मनुष्य को कैसे जीना है, क्या लेना है, क्या त्यागना है, क्या करना है क्या नहीं आदि आदि । सभी इन्सान ईश्वर से जन्मे हैं और इसमें शक नहीं है कि सभी को उनके यहाँ ही लौटना है ।

सामाजिक जीवन

सच्चे मुसलमान का सामाजिक जीवन उच्च आदर्शों-उसूलों पर आधारित है और वह व्यक्ति और समाज दोनों की प्रगति के साथ खुशी को बनाये रखने की दृष्टि से रूपायित है । वर्ग संघर्ष, जातियाँ, समाज के ऊपर व्यक्ति की प्रभुता - रोब अथवा व्यक्ति के ऊपर समाज का रोब आदि इस्लामी सामाजिक जीवन से दूर है । कुरान में कहीं भी धर्म, वर्ग, संपत्ति आदि के खातिर कोई किसी से

ऊपर नहीं है । इसमें इन्सानियत की एकता पर ज़ोर दिया गया है । इस्लाम में सामाजिक जीवन की संरचना बहुत ही उदात्त श्रेष्ठ एवं ग्राह्य है । इस संरचना में अपने सहजीवी मनुष्य के प्रति प्यार, युवकों के प्रति दया, बडों के प्रति आदर, उत्पीडितों को सुकून प्रेरणा, प्रोत्साहन, बीमारों के यहाँ आना, दुखी को आश्वासन ये सब शामिल है ।

मुसलमानों के जीवन और संस्कृति भारतीय संस्कृति और समाज का अभिन्न अंग है । अतिप्राचीन काल से लेकर मुसलमान संस्कृति भारतीय समाज पर प्रभाव डाल सकी है । मुसलमानों के आने के बाद भारतीय संस्कृति और सभ्यता के साथ वे इतना अधिक जुड गए कि भा को वे अपना ही देश मानने लगे । हिन्दु भी मुसलमानों को अपना ही भा समझकर व्यवहार करने लगे । लेकिन समय के परिवर्तन के साथ ही साथ भारत में अनेक विदेशी शासनतंत्र आए । भारतीय जनता का नियंत्रण तो उस समय विदेशियों के चंगुल में था । भारत के अन्तिम विदेशी शासक अंग्रेज़ ही था । अंग्रेज़ों ने भारत में हमेशा के लिए अपना अधिकार ज़माना चाहा । वे भारत छोड़ना नहीं चाहते थे । अतः उन्होंने अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन आदि का अध्ययन किया । उन्होंने महसूस किया कि हिन्दु मुसलमानों के मन में अपने रीति-रिवाज़, आचार-अनुष्ठान, धर्म आदि के प्रति अतीव श्रद्धा है । इसी श्रद्धा भाव को देखकर उन्होंने समझ लिया कि भारत में हिन्दु-मुस्लिम के बीच यदि शत्रुता भाव उत्पन्न करें तो ज़रूर अपना शासन यहाँ कायम रख सकते हैं । इस प्रकार अंग्रेज़ी शासक भारत में सांप्रदायिकता का बीज बोने लगे । अंग्रेज़ों को इस बात पर पूर्ण विश्वास था कि जब तक हिन्दु-मुसलमान

आपस में लड़ते रहेंगे तब तक वे यहाँ निर्विघ्न राज्य कर सकते हैं । उनकी समस्त कूटनीति का आधार "फूट डालो और राज्य करो" ही था । वे कहते हैं -"हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम पूरी ताकत के साथ धर्मों और जातियों के बीच मौजूदा भेदभाव को बना रखने दें । हमें यह भेदभाव समाप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए । "फूट डालो और राज्य करो" ही हमारा सिद्धांत होना चाहिए ।"[1]

इस प्रकार भारत में साम्प्रदायिकता की आग फैलाने में अंग्रेज़ पूर्ण रूप से सफल निकले । हमारे राष्ट्रीय नेता अंग्रेज़ों की कुटिल चालों को नहीं समझ सके । वे भी उसी धारा में बहने लगे । "अंग्रेज़ शासकों ने साम्प्रदायिकता की आग को और अधिक फैलाया । लगातार हिन्दु-मुसलमानों के बीच एक दीवार बनायी रखी ताकि वे दोनों परस्प न मिल सके ।"[2]

इस प्रकार भारत में राजनीतिक क्षेत्र में तथा सामाजि क्षेत्र में हिन्दु नेतृत्व और मुस्लिम नेतृत्व के दल उत्पन्न हुए । फलतः स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में धर्म के नाम पर जाति के नाम पर विभिन्न दल उत्पन्न हुए । देश पर अपना अधिकार कायम रखने के लिए विभिन्न दलों के अनुयायी एक दूसरे से संघर्ष करने लगे । स्वतंत्रता-परवर्ती भारत की इस राजनीतिक व्यवस्था का मूल कारण अंग्रेज़ों की इस फूट-परस्ती राजनीति ही है ।

---

1. उद्धृत - आज का भारत - रजनी पामदत्त - पृ.463
2. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ.50

अंग्रेज़ों की इस फूट-परस्ती नीति का अधिक असर हिन्दु और मुसलमानों पर ही पडा । ये हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे के शत्रु बन गए । इसी शत्रुता का परिणाम था देश विभाजन । स्वतंत्रता के तुरन्त बाद हमारा देश भारत और पाकिस्तान नामक दो अलग अलग देश बन गए । विभाजन के फलस्वरूप "साम्प्रदायिक दंगे, नरसंहार तथा मानवता पर बलात्कार के कारण देश में दुख, निराशा, विद्वेष, घृणा तथ अनिश्चय का अवसादपूर्ण वातावरण छा गया । परिणामत: विभाजन के साथ ही साथ भारत को पाकिस्तान से संघर्ष करना पडा था । विभाजन के बाद भारत की सामाजिक स्थितियों ने ऐसे माहौल की सृष्टि की है जिस पर कालजयी साहित्य की रचना संभव हो सकी है । हिन्दी में अनेक ऐसे साहित्य लिखे गये जिनमें देशविभाजन तथा उसके परिणत फलों को विषय बनाया है । देश विभाजन के कारणभूत हिन्दु-मुसलमानों की समस्याएँ हमारी साहित्य रचना का मुख्य विषय बन गया । हिन्दी साहित्य विशेषकर उपन्यास साहित्य ने ही इन्हीं समस्याओं को मुख्य विषय के रूप में स्वीकार किया था । लेकिन हिन्दी में अल्पसंख्यक रचनाकार ही दिखाई पडता है जिन्होंने मुसलमानों की ज़िन्दगी को अपनी औपन्यासिक रचना के लिए विषय बनाया है ।

रज़ा के उपन्यास में मुस्लीम जीवन-संदर्भ

डॉ. राही मासूम रज़ा ऐसे उपन्यासकारों में एक है । उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को अपनी रचनाओं के मुख्य विषय के रूप में स्वीकार किया है । डॉ. राही मासूम रज़ा तो मुसलमान परिवार का एक सदस्य है । इसलिए मुसलमानों के रीति नीतियों

का बड़े जानकार हैं । साथ ही साथ मुसलमान जीवन के तमाम बिन्दुओं से उनको आँखों देखा अनुभव भी है । इसलिए ही अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही उन्होंने उपन्यासों का लेखन किया है । अपने उपन्यासों में उन्होंने मुसलमानों के जीवन के विभिन्न आयामों-पहलुओं का उद्घाटन किया है साथ ही साथ मुसलमानों के रीति रिवाज़, आचार-अनुष्ठान, पर्व-त्योहार, आदि का भी यथार्थ वर्णन किया है । मुसलमान जीवन के तहत आनेवाले विभिन्न पहलु जैसे वर्गगत भेदभाव, नारियों की स्थिति जैसे विधवा जीवन, दहेज प्रथा, अन्तर्जातीय विवाह, अनमेल विवाह, विवाह विच्छेद आदि को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास उन्होंने किया है । इस दृष्टि से उनका आधागाँव मुसलमानी जीवन की दस्तावेज़ी उपन्यास है । यह उपन्यास वास्तव में शिआ-मुसलमानों की ज़िन्दगीनामा है । इसमें मुसलमानों के विभिन्न रीति-रिवाज़ों एवं आचार-अनुष्ठानों का विधिवत् वर्णन किया गया है । शायद रज़ा ही मुस्लिम जीवन संस्कृति और सभ्यता के तमाम बिन्दुओं को रेखांकित करनेवाले उपन्यासकार हो सकते हैं । इस कोशिश में उन्हें पूरी कामयाबी भी हासिल हुई है । क्योंकि इस उपन्यास की आधार भूमि अपनी जानी पहचानी दुनिया है, ज़िन्दगी में अपने तजरबे हैं । इसलिए डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त ने लिखा - "हिन्दी उपन्यास जगत में शायद पहली बार मुस्लिम जनजीवन की भीतरी बाहरी सच्चाइयाँ अपने विविध रंगों में अच्छी बुरी परछायियों को लेकर प्रस्तुत हुई है, जिनसे निश्चय ही भारतीय ज़िन्दगी का एक और कोना उजागर हुआ है ।"[1]

---

1. आँचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प - डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त - पृ. 29

"हिम्मत जौनपुरी" उपन्यास में भी रज़ा ने उपन्यास के प्रथम भाग में हिम्मत जौनपुरी के पूर्वजों का जो चित्रण किया है इसमें मुसलमान संस्कृति और रीति-नीतियों की चर्चा भी की है । इसमें भी मुसलमानों में पाई जानेवाली विभिन्न समस्याओं का उद्‌घाटन किया है । "इस उपन्यास में हिम्मत जौनपुरी के जीवनचरित्र के माध्यम से भारतीय जीवन के संदर्भ में लेखक ने मुस्लिम समाज के संस्कारों के अन्तर्द्वन्द्वों का मुखर चित्र प्रस्तुत किया है ।"[1]

"टोपी शुक्ला" रज़ा का अन्य उपन्यास है जिसमें उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम संबंधों की कहानी कही हैं । विभाजन के परिणामस्वरूप हिन्दु-मुस्लिम मित्रों को अलग होकर, शत्रु बनकर रहना पडा । हमारी विघटित सामाजिक व्यवस्था हिन्दु-मुसलमानों को एक दूसरे के शत्रु बना दिए । इस उपन्यास में भी मुसलमानी संस्कृति का चित्रण टोपी-इफ्फन के मित्रता के द्वारा किया गया है । इस उपन्यास द्वारा रज़ा ने हिन्दु मुसलमानों के आपसी शत्रुता को मिटाने का प्रयास किया है । "यह उपन्यास मात्र ही नहीं अपितु वास्तविक सत्य है । इसमें राही ने हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को मिटाने का प्रयत्न किया है ।"[2]

रज़ा जी ने अपने उपन्यास "ओस की बूँद", "दिल एक सादा कागज़", "सीन-75", "कटरा बी अर्जु" उपन्यासों में भी मुसलमानी ज़िन्दगी में होनेवाली विभिन्न समस्याओं को विश्लेषित

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरोदद्दुदीन - पृ. 154
2. आधागाँव एक आलोचनात्मक अध्ययन - डॉ. दिलशाम जिलानी-पृ. 10

करने का प्रयास किया है । ओस की बूँद में हिन्दु मुसलमानों के आंतरिक वैमनस्य का चित्रण है । इस उपन्यास में उन्होंने जिन जिन समस्याओं का चित्रण किया है ये सब एक मुसलमान परिवार के कथा द्वारा प्रस्तुत है । "छः अध्यायों में विभाजित 127 पृष्ठोंवाले इस उपन्यास में पाकिस्तान के बनने के बाद जो साम्प्रदायिक दंगे हुए उन्हों का जीता जागता चित्रण एक मुसलमान परिवार की कथा द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।"[1]

"दिल एक सादा कागज़" उपन्यास में उन्होंने एक मध्यवर्गीय मुसलमान व्यक्ति के ज़िन्दगी में होनेवाले अन्तर्द्वन्द्वों, मानसिक पीडाओं का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है । "इस उपन्यास में मुसलमानों के मोहभंग की वास्तविकता को यथार्थ ढंग से स्थापित किया गया है ।"[2]

"सीन-75", "कटरा बी अर्जु" आदि उपन्यासों का विषय यद्यपि मुसलमानी समस्याओं पर आधारित नहीं है तो भी इनके लगभग सभी पात्र मुसलमान है । इसलिए ही उनकी समस्याओं के चित्रण में अनजाने ही मुसलमानी ज़िन्दगी की समस्यायें उभर आयी हैं । जैसे मुसलमानों के विभिन्न पारिवारिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ, नारी समस्याएँ आदि इन उपन्यासों में अंकित हुई है । स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि रज़ा ने संपूर्ण भारत की

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 176
2. आधागाँव एक आलोचनात्मक अध्ययन - डॉ. दिलशाद जिलानी-पृ. 11

सामाजिक समस्या को उद्घाटित करने का प्रयास किया है तो भी मुसलमानी संस्कृति सभ्यता और समस्याएँ उसकी समस्त वास्तविकताओं के साथ उनके उपन्यासों में उजागर हुई हैं ।

भारतीय समाज में मुसलमानों की स्थिति अल्पसंख्यक समूह की है । मुसलमानों में भी विभिन्न वर्ग पाये जाते हैं - शिआ, सुन्नी, राकी, जुलाहा आदि । इनमें सुन्नियों की संख्या अधिक और शिआओं की संख्या बहुत कम है । फिर भी यह समुदाय भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है । डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में मुसलमान जनजीवन को प्रमुखता देकर प्रस्तुत किया है । उनका उद्देश्य मुसलमान जनजीवन का चित्रण नहीं तो भी एक मुसलमान परिवार के सदस्य होने के कारण अपने अनुभूत सत्य द्वारा उन्होंने अपने उपन्यासों के कथानक का चयन किया है । प्रमुख रूप से उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है । स्वतंत्रता के बाद ही भारत में हिन्दु-मुसलमान संघर्ष अधिक मुखर हो गये थे । जिसका परिणाम था - भारतविभाजन । भारत विभाजन तथा उसके कारणभूत परिस्थितियाँ, तदुपरांत हुए साम्प्रदायिक बलवे, इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न विभिन्न समस्यायें, इसके बाद देश में हुए परिवर्तन, नाश-निर्माण आदि सबको उन्होंने अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है । आगे हम मुसलमान जीवन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से राहीजी के उपन्यासों का अध्ययन करने की कोशिश करेंगे ।

मुसलमानी ज़िन्दगी की विभिन्न समस्याएँ

भारतीय मुसलमानी ज़िन्दगी में भी अन्य समुदाय के लोगों की ज़िन्दगी की तरह कई समस्यायें पायी जाती है । विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का उन्हें सामना करना पडा । उनमें एक प्रमुख समस्या गरीबी की है । विभाजन के पहले भारत के सभी मुसलमान संपन्न एवं ज़मीन्दार थे । ज़मीन्दारी शक्ति द्वारा या अपने प्रदेश का अधिकार उन्होंने अपने चंगुल में रक्खा था । देश की स्वतंत्रता तथा विभाजन के पश्चात ज़मीन्दारी सत्ता का अधिकार समाप्त हो गया जिससे भारत के मुसलमान ज़मींदार जो पहले दूसरों से काम कराते थे अब अपने जीविकोपार्जन के लिए काम करने लगे । अतः उनका आर्थिक आधार नष्ट हो गया तो जीविकोपार्जन के लिए उन्हें किसी न किसी काम करना पडा । रज़ा ने अपने उपन्यास "आधागाँव" में ज़मीन्दारी उन्मूलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न मुसलमान ज़िन्दगी की लगभग सभी समस्याओं का उद्घाटन किया है । "आधागाँव" में उन्होंने जिस गंगौली गाँव का चित्रण किया है वहाँ के अधिकांश मुसलमान ज़मीन्दार थे । ज़मीन्दारी प्रथा की समाप्ति के बाद मुसलमानों की स्थिति बिगड गयी । उनका आर्थिक साधन टूटा फूटा दिखाई पडने लगा । पहले के समान के जीवन के प्रति उनका बहुत बडा मोह था । इसी मोह के कारण वे किसी न किसी प्रकार तुरन्त धनवान बन जाने की इच्छा रखने लगे । "ज़मीन्दारी प्रथा के मिटने पर ज़मीन्दारों के आर्थिक साधन पूर्ववत् न रहे, तथापि प्राचीन जीवन के प्रति उनका मोह बना हुआ था । इस मोह के कारण अपनी शान शौकत को पूर्ववत् बनाये रखने का उनमें आग्रह विद्यमान था जो नवीन आर्थिक संदर्भ में उपहासास्पद लगता था ।"[1] इसीलिए ही अब्बू मियाँ जो गंगौली

---

1. हिन्दी समस्या नाटक - डॉ. माधाना ओझा - पृ. 166

के एक ज़मीन्दार है अब गरीब हो गया है शमा मुअम्मा हल करके तुरंत धनवान बन जाना चाहता है । बेरोज़गारी भी गंगौलीवासियों को तडपानेवाली एक समस्या है । रज़ा ने गांजीपुर के पुराने कीले का वर्णन करते हुए इस बात को स्पष्ट किया है -"यदि आज भी कोई व्यक्ति उस किले की पुरानी दीवार पर बैठकर अपने आँखें मूँद लें तो वह कल्पना के नेत्रों से भारत की पुरानी ऐतिहासिक घटनाओं का दर्शन कर सकता है । लेकिन इन दीवारों पर कोई बैठता ही नहीं । क्योंकि जब इन पर बैठने की उम्र आती है तो गज भर की छातियों वाले बेरोज़गारी के कोल्हू में जोत दिये जाते हैं कि वे अपने सपनों का तेल निकाले और उस जहर को पीकर चुपचाप मर जाएँ ।"[1] बेरोज़गारी के कारण गंगौली के नौजवान अपने घर-परिवार छोडकर नौकरी की तलाश में कलकत्ता चले जाते हैं जिसके कारण अपनी ज़िन्दगी का अधिकांश भाग उन्हें अकेले ही रहना पडता है । और उनकी पत्नियों और सगे संबंधियों को अपना जीवन विरह में तडपते हुए बिताना पडता है । उनकी इस करूण दशा का चित्रण करते हुए रज़ा कहते है -"कलकत्ता किसी शहर का नाम नहीं है । गांजीपुर के बेटे-बेटियों के लिए यह भी विरह का एक नाम है । यह शब्द विरह की एक पूरी कहानी है, जिसमें न मालूम कितनी आँखों का काजल बहकर सूख चुका है हर साल हज़ारों हज़ार परदेस जानेवाले मेघदूत हज़ारों हज़ार सन्देश भेजते हैं ।"[2] मुसलमान परिवारों में ऐसे अनेक दरिद्र परिवार थे जिन्हें रोज़ी रोटी के लिए भी दिन प्रतिदिन तरसना पडता है । गरीबी तो एक समस्या नहीं बल्कि अनेक समस्याओं का जन्मदाता है । गरीबी के कारण हमारे समाज में अनेक अशिक्षित लोग

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 9-10
2. वही - पृ. 10

मौजूद है । उसी प्रकार गरीबी के कारण हमारे यहाँ अविवाहित युवतियाँ अनेक है । "कटरा बी अर्जु" में शहनाज जो पढने लिखने की इच्छा रखती है लेकिन उच्च शिक्षा के लिए उसके पास धन नहीं । "शहनाज में जो डबल खराबी थी वह यह थी कि उसे पढने का शौक था और कुछ न मिलता तो जोखन के यहाँ से आनेवाली पुड़ियों के कागज़ संभालती फिरती जो आमतौर से पुराने अखबार के टुकडे होते । कभी कभी स्कूल की कापियों का कागज़ निकालता । रूलदार कागज़ पर लिखे हुए खत भी निकल आते कभी कभार वह उन्हीं को पढती रहती और मुक्कन के कोसनों की तरफ से उन क्षणों में उसके कान बन्द हो जाते ।"[1]

"सीन-75" उपन्यास में मध्यवर्गीय क्लार्कों की दयनीय अवस्था का चित्रण अलीमुल्ला की ज़िन्दगी की गरीबी की तस्वीर के ज़रिए किया है । अलीमुल्ला और उनके साथियों का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं -"अली मुल्लाह ही कामवाला था । बाकी तीनों दोस्तों को महीने के आखिर में फाइनेंस भी किया करता था । तीनों दोस्तों के महीने का आखिर अलग अलग शुरू हुआ करता था । हरीश को महीने की 15 को तनख्वाह मिलती थी । तो उसके महीने का आखिर पहली दूसरी से लगता था । कभी कभी उसके महीने का आखिर कई महीनों तक फैल जाता था क्योंकि छोटी और मंझली फिल्म कंपनियों में तनख्वाह का कोई भरोसा नहीं है । वी.डी. के महीने में तनख्वाह लगभग साल भर चलता था । अली अमजद के महीने का आखिर आमतौर से महीने के आखिर में ही होता था ।"[2]

---

1. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 22
2. सीन-75 - रज़ा - पृ. 22

इस प्रकार अपने उपन्यासों के विभिन्न उद्धरणों द्वारा लेखक ने यह जाहिर करने की कोशिश की है कि गरीबी का शिकार केवल हिन्दु ही नहीं मुसलमान भी उसकी भीषणता में फँसे हुए हैं ।

ज़मीन्दारी शोषण

अंग्रेज़ों की शोषण नीति का एक पक्ष था ज़मीन्दार व्यवस्था को भारत में कायम रखते हुए ज़मीन्दारों की मदद से इस विशाल देश के बहुकरोड लोगों पर हुक्करानी कायम करना । इस बात की तरफ इशारा करते हुए ए.आर.देसाई ने लिखा है - "ज़मीन्दारी प्रथा को अपने स्वार्थ के लिए कायम रखने का श्रेय अंग्रेज़ों को है ।"[1] रज़ा के आधागाँव के अधिकांश मुसलमान ज़मीन्दार है । उपन्यासकार ने इनके स्वभाव की चर्चा इस प्रकार की है - "तमाम छोटे ज़मीन्दार गिरोहबन्द थे रात को डाके डलवाते थे और दिन को मुकदमा लडवाते थे । कभी इसे बेदखल किया कभी उसे दखल दिलवा दिया । इसी हेर फेर में सौ पच्चास खरे हो जाते हैं ।"[2] रज़ा ने आधागाँव में ज़मीन्दारों द्वारा किए जानेवाले कुकर्मों का ब्योरेवार वर्णन बडी कुशलता से किया है ।

---

1. Social Background of Indian Nationalism - A.R.Desai - P.167
   The class of Zamindars has been largely the creation of British Government.
2. आधागाँव - रज़ा - पृ.83

जातिवाद

जातिवाद वर्तमान भारत को सबसे बडी चुनौती है । जातिवाद या जाति भक्ति एक जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश के समाज के सामान्य हितों को ध्यान में रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, एकता, अपनी जाति की सामाजिक स्थिति को दृढ करने के लिए उन्हें सदा प्रेरित करती है । प्राचीन युग की जाति प्रथा के अध्ययन से यह जाहिर होता है कि यहाँ मुख्य रूप से चार जातियाँ ही थी । किन्तु अन्तर्विवाह एवं अनमोल विवाहों के परिणामस्वरूप ये चारों जातियाँ अनेक उप विभागों में विभाजित हो गई । ये उपविभाग बेशुमार है और इस विभागीकरण का आधार धर्म, अन्तर्विवाह, अनमोल विवाह, पारिवारिकता, वंश प्रतिष्ठा, प्रांतीयता, ग्रामीणता, खून का रिश्ता आदि हैं ।

जातिवाद का रेखांकन, खास तौर से इस्लाम धर्म को माननेवाले मुसलमान के बीच के जातिवाद का चित्रण रज़ा जी ने अपने उपन्यासों में किया है । भारत में मुसलमानों के दो प्रमुख समुदाय व जाति सुन्नी तथा शिआ है, जिनमें आपस में अक्सर झगडा छिडा करते हैं । रज़ाजी के आधागाँव में इसका स्पष्ट अंकन मिलता है । कथाकार ने अपने दादा की शादी की चर्चा करते हुए कहा है कि "उन्होंने नईमा दादी को निकाह में ले लिया और फिर उनके लिए एक खलवत बनवाई । नइमा दादी बहरहाल जुझारिन थीं और सैदानियों के साथ नहीं रह सकती थी, पुराने ज़माने के लोग इसका बडा ख्याल रखते थे कि कौन कहाँ बैठ सकता है और कहाँ नहीं ।"[1]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 17

इसी तरह सैदानियों का निम्नजाति की महिला झांगरिया बो से किया गया सलूक यह जाहिर कर देता है कि उनमें अस्पृश्यता की भावना भी पायी जाती है । जब झंगरिया बो सलीमा से मिलने आयी तब -"काहे रे" उन्होंने उससे पूछा । आइसे ही सोचतो कि तनी बीबी क सलाम कर लई । झांगरिया ने कहा - "पान खइई ?" सकीना ने पूछा । झांगरिया बो ने कोई जवाब नहीं दिया । उसने अपना हाथ फैल दिया और शकीना ने फैले हुए हाथ पर तह किया हुआ पान का एक बीडा ऊपर से छोड दिया जो उसकी हथेली पर गिरकर खुल गया । झांगरिया ने सलाम करके वह पान खा लिया और सकीना आमिया के लिए गिलौरी बनाने लगी ।"[1]

सैदानी और शौर सैदानी का अन्तर तो जन्मजात होता है । क्योंकि सैयद और सैदानियाँ वे लोग हैं जो अपने आपको इस्लाम धर्म के प्रवर्तक इज़रत मुहम्मद साहब के वंशज मानते हैं । किन्तु कुछ और सैयद धनवान हो जाने पर अपने आपको सैयद घोषित करते हैं । इस प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए लेखक ने लिखा है -"हम्माद मियाँ जब तक इस छोटी सी खिलवन में रहते थे उस वक्त तक उनकी बीवी किसी सैदानी से यूँ तुनक नहीं सकती थी । लेकिन दो मंजिला पुराना मकान में रहने से बहरहाल सैयद हो जाते हैं । कुबरा भी सैदानी बन चुकी थी । हद तो यह है कि हम्माद की माँ नईमा बो भी सैदानी बन चुकी थी, जबकि उसके मायकेवाले अब तक जुलाहे के जुलाहे थे और गंगौली ही में करधा चला रहे थे ।"[2] कलाम्मुद्दीन के स्कूल में

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 117
2. वही - पृ. 22

शिक्षा पानेवाले छात्रों का वर्णन इस प्रकार किया है कि "उस मदरसे में पडोस के जुलाहों, दागदार सैयदों के लडके-लडकियाँ दो पहाडा याद करने में मशगुल थे ।"[1]

शिआ मुसलमान ही मुसलमानों के ऊँचे वर्ग के हैं । ये अपने को इमाम हुसैन का वंशज मानते हैं । सुन्नियाँ तो निचले वर्ग के है । ये शिआ, सुन्नियों को हेय दृष्टि से देखते हैं । अधिकांश सुन्नी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से निम्नवर्ग में गिने जाते हैं । शिआ तो अपने को सैयद मानते हैं और श्रेष्ठ सरदार समझते है शिआओं का दूसरे वर्ग के मुसलमानों के साथ कोई सामाजिक मेलजोल नहीं है यहाँ तक रोज़ी रोटी का संबंध भी नहीं बच्चों को भी अनेक तरह से रोका जाता है कि वे राकी और जुलाहों के बच्चों के साथ न खेलें । शिआओं के दरवाज़ों पर राकियों और निचले जाति के लोगों को बैठने के लिए लकडी या टिन से बनाई कई कुर्सियाँ रखते हैं जिसमें कपडा नहीं लगाते । इसी भेदभाव के कारण ही सुन्नी मुसलमान, पाकिस्तान निर्माण के लिए उत्साही थे लेकिन शिआ नहीं क्योंकि ऐसा होने से दूसरे देश में जाकर उनका सारा प्रताप नष्टभ्रष्ट हो जायेगा । आधागाँव में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है -"गंगौली के मीर साहिबान के लिए पाकिस्तान जाना भी आसान नहीं था । असलियत में होना उसकी तकदीर थी । पाकिस्तान सुन्नियों का था तो सुन्नियों से क्या उम्मीद । इसलिए खानदान की बेवाओं और अपनी बोवियों को दुखतरी ज़मीनों को सीने से लगाकर वह गंगौली में डट गये ।"[2]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 223

2, वही - पृ. 368

इस प्रकार के अनेक उदाहरणों के ज़रिए लेखक ने यह जाहिर करने की कोशिश की है कि भारतीय मुसलमानों के समाज में भी जाति के आधार पर सामाजिक और विभागीकरण एवं स्तरण की समस्या पायी जाती है ।

साम्प्रदायिकता

एक विशेष विचार मत अथवा पूजापद्धति को माननेवाले समूह को सम्प्रदाय कहते हैं । विभिन्न संप्रदाय अपनी अपनी अलग विशेषताओं की वजह से एक दूसरे से भिन्न होते हैं । जब तक विभिन्न संप्रदाय विरोधों के बावजूद मेल-जोल से रहते हैं तब तक साम्प्रदायिकता का जन्म नहीं होता । किन्तु विविध संप्रदाय जब अपने प्रति अन्ध भक्ति रखकर दूसरे संप्रदायों के प्रति घृणा द्वेष और हिंसा से भर उठते हैं तो सांप्रदायिकता की भावना जन्म लेती है । "साम्प्रदायिकता साम्प्रदायिक होने का भाव है, यानि केवल अपने संप्रदाय का हित चाहता और दूसरे संप्रदायों के हितों की उपेक्षा करना सांप्रदायिकता है ।"[1] हिन्दी के अनेक उपन्यासों में साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया गया है । प्रेमचन्दोत्तर युग में आनेवाले यशपाल, भीष्म साहनी, बलवन्त सिंह, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ रेणु आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जो देश की इस भयावह परिस्थिति से पूर्णत: परिचित है । उन्होंने अपने उपन्यासों में इस भीषणता को शब्दबद्ध करने का प्रयास भी किया है । डॉ. राही मासूम रज़ा भी इन्हीं उपन्यासकारों में एक है । उन्होंने अपने उपन्यास आधागाँव में देश विभाजन के समय भारत के हिन्दु मुसलमानों के बीच में हुए साम्प्रदायिक दंगों का जीता जागता वर्णन किया है ।

---

1. ज्ञान शब्दकोश - मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव - पृ. 832

विभाजन को पृष्ठभूमि बनाकर राही ने "आधा गाँव" का चयन किया है । उपन्यास में ऐसे अनेक प्रश्न और संदर्भ हमारे सामने आये हैं जिसका हमारे सामाजिक जीवन से घनिष्ठ संबंध है । लेखक पूरे गाँव को नहीं केवल आधे गाँव को ही कथाभूमि बनायी है, "मैं ने पूरे गाँव को नहीं चुना केवल गाँव के उस टुकडे को चुना है जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ ।"[1]

गंगौली के अधिकांश लोग मुसलमान ही थे । अन्य धर्म के लोग भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में रहते हैं । भारत विभाजन के नारे जब तक बुलन्द नहीं हो रहे थे तब तक गंगौली गाँव के हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे से प्यार के साथ रहते थे । मियाँ लोग दशहरे के लिए चन्दा लेते थे । मोहर्रम के जुलुस में सभी गाँववाले भाग लेते थे । "बडे ताज़िए के आगे आगे अब्बु मियाँ कमर में पटका बाँधे हाथ में चाँदी की मुठवाली एक छडी लिए सोजखानी करते फुन्नन मियाँ बशीर मियाँ और हम्माद मियाँ उनके बाजु होते थे लोग हर दो कदम के बाद सलाम के दो शेर पढते चलते । पीछे हज़ार पाँच सौ आदमियों की भीड होती।"[2] किन्तु पाकिस्तान का सपना जब देश भर में व्याप्त होने लगा तब इसका असर गंगौली गाँव पर भी पडने लगा । मुहम्मद आली जिन्ना ने जब देश भर में बँटवारे की माँग की वहीं से देश भर में साम्प्रदायिक दंगों का प्रारंभ होता है । रज़ा तो उन्हीं मुसलमानों के पक्ष में है जो मानते हैं कि जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग गलत और भ्रामक राजनीति का प्रचार कर रही है । मुस्लिम लीग के नेतागण इन्हीं राजनीति के सहारे

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 302
2. वही - पृ. 74

अपने पदों और अधिकारों को बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं । वे देश भर में मुसलमानों को इकट्ठा करके हिन्दुओं के खिलाफ संघर्ष करने में प्रयत्नरत हैं । इसके लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्र गंगौली में आते हैं और वहाँ के मुसलमानों के मन में साम्प्रदायिकता का विष फैलाने का प्रयत्न करते हैं । काली शेरवाणीवाला लडका कहता है -"अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकडिए, आज उस रस्सी का नाम मुहम्मदाली जिन्ना है । आप अल्लाह की ताकत है उठिए और कहिए कि आप पाकिस्तान बनाना चाहते हैं । ज़रा अपने लीडर को देखिए । और एक यह कांग्रेसवाले हैं । गाँधीजी हो या नेहरू । गलियो गलियों मारे मारे फिरते हैं । और एक हमारे कायदे आजम है जिनसे मिलना इतना मुश्किल है कि लाट साहब को भी उनसे वक्त लेना पडता है ।"[1]

एक ओर मुसलमान अपनी साम्प्रदायिक मानसिक को गाँव भर में फैलने का प्रयत्न करता रहता है तो दूसरी ओर हिन्दु भी उसी रास्ते को अपना लेते हैं । गंगौली गाँव के बरखापुर बस्ती में एक हिन्दु स्वामिजी इस प्रकार कथा सुना रहे है, "तब भगवान कृष्ण ने कहा, "हे अर्जुन हूँ तो मैं हूँ और मेरे सिवाय कोईऔर नहीं है । आज वह मुरली मनोहर भारत के हर हिन्दु को पुकार रहा है कि उठो और गंगा और यमुना के पवित्र तट से इस म्लेच्छ मुसलमानों को हटा दो" आगे वे हिन्दुओं के मन की साम्प्रदायिक मानसिकता को फटकारने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं, "धर्म संकट में है गंगाजलो उठाकर प्रतिज्ञा करो कि भारत की पवित्र भूमि को मुसलमानों के खुन से धोना है ।"[2]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 26
2. वही - पृ. 286

इस प्रकार मुसलमानों को म्लेच्छ चित्रित करते हुए उन्हें देश से भगाने का प्रयत्न हिन्दु साम्प्रदायिक शक्तियाँ कर रही है । इस प्रकार हिन्दु मुस्लिम सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने अपने ढंग से पूरे समाज में सांप्रदायिकता की आग भडकाने का प्रयत्न करती रही ।

राही मासूम रज़ा ने आधागाँव में यह दिखाने का प्रयास किया है कि पाकिस्तान का निर्माण साधारण जनता का निर्णय नहीं बल्कि धर्म के नाम पर उत्पन्न तूफान का परिणाम था । मन्नु पाकिस्तान का विरोध करता है परन्तु सईदा जो उसके रिश्ते की बहिन है । सईदा के प्रति उसके मन में प्यार है । सईदा को न भूल न सकने के कारण पाकिस्तान चला जाता है । कम्मो {कलाम्मुददीन} पाकिस्तान का सख्त विरोध करता है । वह अलीगढ विश्वविद्यालय के लडकों से कहता है -"इहम ई सब ना मान सकते साहब । हिन्दुस्तान के आज़ाद होने के बाद ई गायवा आहिर, ई छिकुरिया या लखना चमा या ई हरिया बढई हमारे दुश्मन काहे को हो जइहें यानी बिना वजहे ? हुआँ ईहे सब पढते है आप लोग का ।"[1] फुन्नन मियाँ के दामात और सद्दन तीन तीन बच्चों का भार बूढों पर छोडकर पाकिस्तान चले जाते हैं ।

रज़ा ने देश विभाजन से उत्पन्न माहौल का चित्रण करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि पाकिस्तान बनाने की मुस्लिमलीगी राजनीति मुसलमानों के लिए कितनी घातक और अहितकर

सिद्ध हुई है । वे कहते हैं -"पाकिस्तान बन जाने के पहले भी गाँव के लोग कलकत्ता, कानपुर, बंबई और ढाका जाते थे परन्तु रूपये कमाकर वापस लौटते थे उनके परिवार गंगौली में ही रह जाते थे ।"[1] गंगौली से जो लोग दूर देश जाकर बस गये वे लोग भी विशेष अवसर आने पर गाँव लौट आते है । रज़ा कहते है -"विशेष रूप से मोहर्रम के अवसर पर सभी लौटते थे और गाँव की खुशी को और भी बढाते थे । परन्तु पाकिस्तान से कोई भी नहीं लौटता - तो क्या-पाकिस्तान मृत्युदेश है ।"[2]

इस प्रकार रज़ा ने आधागाँव द्वारा देश विभाजन तथा तत्पश्चात् उत्पन्न विभिन्न घटनाओं के चित्रण करते हुए देशविभाजन की निरर्थकता को सिद्ध करने का प्रयास किया है । साथ ही साथ उन्होंने स्वतंत्रता के समय हिन्दु-मुसलमानों के बीच होनेवाली देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगों का प्रभाव गंगौली पर दिखाते हुए यह स्पष्ट किया है कि सारे देश में हिन्दु-मुस्लिम और एकता का होना ज़रूरी है । सांप्रदायिक दंगे तो कुछ लोगों की स्वार्थता का परिणाम है । आधागाँव में लेखक ने साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए अपने धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का परिचय दिया है । ठाकुर जयपाल सिंह के द्वारा वे अपने इस धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं । मुसलमानों के प्रति क्रुद्ध होकर हिन्दु जातिवादियों ने जब उन पर आक्रमण किया तब जयपालसिंह हिन्दुओं की उत्तेजित भीड को ललकारते हुए कहते हैं -"खैरियत का ही में वाय की चल जा लोग । का नवाखाली हुई कत्वा हिन्दु इस्त्रियन

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 10

के खराब किहल वाये । बड़ बहादुर हव्वा लोग अउट हिन्दु मरियादा के ढेर खयाल बाये । तुहेर लोगन के त कलकत्ते लौहउट जाये के चाही । हियाँ का धरल वाय की चढ अइला हौ लोग ।"[1] जब भयभीत मुसलमान गाँव छोडकर चला जाना चाहते हैं तो उन्हें ठाकुर साहब धमकाते हुए कहते है -"गाँव से जाए का नाव लेबा लोग त माई चोद के ना रख देब ।"[2] यह बात गाँव भर फैल जाता है । स्वामिजी के भाषण से उत्तेजित साधारण जनता तब से यह सोचने लगते हैं कि -"अगर गुनाह कलकत्ता के मुसलमानों ने किया तो बारिखपुर के बफाती अलावलपुर के घुटऊ हुँडरही के घसीटा को यानि अपने मुसलमानों को सजा क्यों दी जाय । जिन मुसलमान बच्चियों ने-छुटपन में उनकी गोद में पेशाब किया है उनके साथ-जिना क्यों और कैसे की जाये ? उनकी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि जिन मुसलमानों के साथ वे सदियों से रहते चले आ रहे है उनके मकानों में आग कैसे लगा दी जायें ।"[3]

इस प्रकार लेखक हिन्दु और मुसलमानों के सहयोग और सहअस्तित्व का विस्तृत वर्णन करते है । उनके मन में पाकिस्तान के प्रति अनिष्ट और अपने जन्मस्थान के प्रति तीव्र प्यार है । इस बात का स्पष्टीकरण आधागाँव में हुआ है ।

लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि साम्प्रदायिक खायी को बनाये रखनेवाला दरअसल उच्चवर्गीय शासक वर्ग

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 288
2. वही - पृ. 288
3. वही - पृ. 288

G8515

ही है जो अपनी सत्ता एवं स्वार्थता को कायम रखने के लिए साधारण जनता को अपने हाथ का खिलौना बना रहे हैं । रज़ा के इस मनोभाव का स्पष्टीकरण उनके "हिम्मत जौनपुरी" में भी दिखाई पडता है । वे कहते हैं - "सबको यह मालुम हो कि इसी हिन्दुस्तान में यह भी होता था कि एक ही आदमी मसजिद भी बनवाता था और "मसन्वी दर बयाने-इश्के-रामो-सीता भी लिखता था । राम और मसजिद का वैर पुराना नहीं है । यदि इनमें झगडा होता तो "रसखान" ने मक्के के गड्डरिये की जगह ब्रज के गडरिये को अपनी काव्य की आत्मा क्यों बनाया होता और सूफियों ने कृष्ण की काली कमलीवाला क्यो कहा होता । मोहम्मद की कमली तो स्याह और सफेद घाटियोंवाली थी जमइयतुल ओलमाये हिन्द के झण्डे की तरह । और इसलिए तो मैं हैरान हूँ कि यहाँ के मुसलमान कमलीवाले झण्डे को छोडकर हरे चान्द तारे वाले गैर इस्लामी झण्डे के नीचे क्यों खडे हो गये ।"[1]

इस प्रकार लेखक यह स्पष्ट करते है कि हिन्दु मुसलमानों के बीच नफरत या घृणा उत्पन्न करने का पूर्ण दायित्व राजनीति को है । "टोपी शुक्ला" में इसी बात को व्यक्त करते हुए वे कहते है -"नफरत ? यह एक अकेला शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन का फल है । बंगाल,पंजाब और उत्तरप्रदेश के इन्कलाबियों की लाशों की कीमत केवल एक शब्द है - नफरत । इन्हीं तीन डोंगियों पर हम नदी पार कर रहे हैं । यही तीन शब्द बोये और काटे जा रहे हैं । यही शब्द दूध बनकर मांओं की छातियों से बच्चे के हलक में उतर रहे हैं।

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 10

दिलों के बन्द किवाडों की दराज़ों में यही तीन शब्द झांक रहे हैं । आवारा रूहों की तरह ये तीन शब्द आंगनों पर मंडरा रहे हैं । चमगादड़ों को तरह पर फडफडा रहे है और रात के सन्नाटे में उल्लुओं की तरह बोल रहे हैं । काली बिल्ली की तरह रास्ता काट रहे हैं । कुटनियों की तरह लगाई-बुझाई कर रहे हैं और गुण्डों की तरह ख्वाबों की कुआरियों को छेड रहे हैं और भरे रास्तों से उन्हें उठाए लिये जा रहे हैं ।"[1]

देश विभाजन के पश्चात् भारत में स्थित मुसलमानों को दशा अत्यंत दयनीय थी । उस समय के परिस्थिति से वे इतना अधिक भयभीत थे कि घर से बाहर निकलना भी बन्द कर दिया गया । बाहर निकलनेवाले मुसलमानों के प्रति यहाँ के हिन्दु लोग पृथकता का व्यवहार करते थे जिसका स्पष्टीकरण टोपी शुक्ला के मुँह से उन्होंने करवाया है । "टोपी शुक्ला शेरवाणी पहनकर तो एक अन्य यात्री रेल के डिब्बे में उसे मुसलमान समझकर उससे पृथकता का व्यवहार करने लगा । तब उसने कहा -"मैं हिन्दु हूँ, मैं बलभद्रनारायण शुक्ला हूँ और चलिए मान लिया कि मैं शेख सलामत हूँ तो क्या हुआ ?.... आप ही लोग मुसलमानों को भारतविरोधी दल में ढकेल रहे हैं । क्या यह शेरवाणी मुसलमान है ? यह तो कनिष्क के साथ आयी थी यह पाजामा भी कनिष्क ही का है ।"[2]

टोपी शुक्ला में उन्होंने यह स्पष्ट दिखाया है कि

---

1. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 82
2. वही - पृ. 62

देश विभाजन तो हमारे राजनीतिक स्वार्थ का परिणाम है । इस असलियत को भारतवासी पहचाना नहीं । इसलिए ही यहाँ हिन्दु-मुसलमान एक दूसरे के शत्रु बन गये । यहाँ के छोटे छोटे बच्चों के मन में भी अलगाव की भावना बरकरार है । "टोपी शुक्ला" में इफ्फन डिग्री कालेज में इतिहास का अध्यापक नियुक्त हुआ । लेकिन जब पढाने के लि गया तो उसने देखा कि बुझी हुई आँखोंवाले लडके लाशों की तरह बैठे हुए है । इफ्फन सोचने लगा -"इन लडकों को क्या बतलाया जाये ? इनकी समझ में यह बात कैसे आयेगी कि दो नदियाँ मिलकर तीन नहीं जाती एक हो जाती है । इन लडकों को यह कैसे बतलाया जाये कि इतिहास अलग अलग बरसों या क्षणों का नाम नहीं है बल्कि इतिहास क नाम है समय की आत्मकथा का - पानिपत की लडाइयाँ या बक्सर की जंग या प्लासी का युद्ध तो इस नदि के बुलबुले हैं ।"

रज़ा तो यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हिन्दु और मुसलमान भारतमाता की संतानें हैं । हिन्दु लोग अपने को यहाँ का निवासी और मुसलमानों को परदेशी मानकर उसे पृथकता का व्यवहार करते हैं । यह बात तो उचित नहीं । भारत में रहनेवाले हिन्दु और मुसलमान भाई भाई है । इसी बात को उन्होंने टोपी शुक्ला और इफ्फ के दृढ मित्रता द्वारा व्यक्त किया है । वे कहते है -"इफ्फन टोपी की कहानी का एक अटूट हिस्सा है । मैं हिन्दु मुस्लिम भाई-भाई की बात नहीं कर रहा हूँ । मैं यह बेवकूफी क्यों करूँ ? क्या मैं रोज़ अपने बडे या छोटे भाई से यह कहता हूँ कि हम दोनों भाई-भाई है ? यदि मैं

यह नहीं कहता तो आप कहते हैं ? हिन्दु और मुसलमान भाई है तो कहने की ज़रूरत नहीं यदि नहीं हैं तो कहने का क्या फर्क पड़ेगा ।"[1]

भारत में हिन्दु और मुसलमान भाईचारे से रहते थे । रज़ा भी यही चाहते हैं कि आगे भी ऐसा होना चाहिए । टोपी शुक्ला में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा एक दूसरे के लिए किये गये बलिदानों का वर्णन किया है । इफ्फन की पत्नी सकीना को महेश ने बलवाचियों के हाथों से रक्षा की थी और इसी कारण वह बलवाचियों के हाथों से मारा गया । महेश का भाई रमेश भी सकीना को एक बहिन के समान प्यार करता है । युद्धक्षेत्र से भी सकीना को खत लिखता है - "सुक्कन मेरी बहन । मैं लड़ाई के मैदान में हूँ पता नहीं क्या होनेवाला है । हर तरफ खत्म होनेवाली बर्फ का अटूट सिलसिला है । मैं बलत अकेला हूँ क्योंकि मेरे पास तेरी राटरी नहीं है तू इतना क्यों बदल गयी है सुक्कन ।"[2] लड़ाई के मैदान में उसकी मृत्यु की खबर सुनकर सकीना बहुत दुखी हुई । उसके मन में हिन्दुओं के प्रति नफरत है तो भी वह हिन्दु रमेश से इतना अधिक प्यार करती थी कि उसके पास अब भी रमेश द्वारा भेजा गया राखी है । लेखक कहते हैं -"सब जानते थे कि वह हिन्दुओं से नफरत करती है । परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि उसके बक्स में तले चौदह राखियाँ रखी हुई है । इन दोनों में से सच्चा कौन था ? उसकी वह नफरत जिसे सब जानते थे ? या वे राखियाँ जिन्हें कोई नहीं जानता था ? सच और झूठ में फरक करना कोई आसान काम नहीं है । यह बात शायद सकीना को भी नहीं मालूम थी कि उसकी नफरत झूठी है या उसकी राखियाँ ।"[3]

---

1. टोपी शुक्ला -राही मासूम रज़ा - पृ. 36
2. वही - पृ. 130
3. वही - पृ. 131

"कटरा बी अर्जु" उपन्यास में उन्होंने प्रेमा नारायण तथा आशाराम के बीच होनेवाले वादविवाद का वर्णन करते हुए कहा है "वह कहती थी कि पाकिस्तान को अमरीका उकसा रहा है और चीन उसको हिन्दुस्तान दुश्मनी की हवा दे रहा है । वह पूछता था कि पाकिस्तान को हवा खाने पर शौक नहीं है । पर जो सरकार बहुमती सरकार नहीं होगी, वह ये हथकण्डे नहीं अजमायेगी तो कितने दिन टिकेगी ? यहाँ हिन्दु-मुसलमान, ब्राह्मण-अछुत, महाराष्ट्र तमिलनाडु में झगडे होते रहते हैं । वहाँ शिआ-सुन्नी, मुस्लिम कादयानी, बंगाली-पंजाबी, बलवे होते रहते हैं कि दोनों ही सरकारें जनता की सरकारें नहों हैं ।"[1] रज़ा ने अनेक उदाहरणों द्वारा इस बात को स्पष्ट करता है कि देश विभाजन के पश्चात् भी भारत के गाँवों में अनेक ऐसे हिन्दु और मुसलमान है जो अब भी भाईचारे में रहते हैं । यह भी उन्होंने स्पष्ट दिखाया है कि जब तक भारत की जनता राजनीति के धोखेबाजी को समझने में असमर्थ रहेंगे तब तक यहाँ वर्गीय संघर्ष होते ही रहेंगे ।

अवैध सन्तान

विवाह बाह्य-यौन संबंधों से उत्पन्न सन्तानों को अवैध सन्तान कही जाती है । अवैध सन्तान की उत्पत्ति विवाह संस्था और परिवार संस्था पर गहरी चोट है । इसलिए समाज अवैध संतान को तरफ कठोर दृष्टि से देखता है । कुँआरी माँ की सन्तान, विधवा नारी तथा विवाहित नारी को परपुरुष से उत्पन्न संतान, वेश्या या

वेश्या कन्या से उत्पन्न संतान अवैध संतान समझी जाती है । इन संतानों का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा , विवाह - समाज में सम्मान इत्यादि के बारे में जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । इनकी समस्याओं का चित्रण हिन्दी के उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है । इस दृष्टि से प्रसाद के उपन्यास "कंकाल" का खास महत्व है जिसमें अवैध संतान के भविष्य का करुण चित्र खींचते हुए लेखक ने समाज को ही दोषी बनाया है । यशपाल ने "दादा कामरेड" में कुँआरी माता शैल को समर्थन देकर अवैध सन्तान को दबनेवाले दृष्टिकोण को चुनौती दी है ।

राही मासूम रज़ा ने "आधा गाँव" में कमालुद्दीन के चरित्र चित्रण द्वारा अवैध मुसलमान संतान की समस्याओं की तरफ हमारा ध्यान खींच लिया है । उसको हमेशा अपनी सामाजिक स्थिति के संबंध में सोचकर दुःख होता है । इसके बारे में लेखक लिखते हैं - "कमालुद्दीन वल्द सैयद जवाद हुसैन जैदी और रहमान बो । क्या राजरा है । मगर यह बात वह जानता था कि अपने पैदा होने पर उसका कोई इख्तियार नहीं था, इसलिए उसके दिल में अपनी माँ - यानी रहमान की बीवी और जवाद मियाँ की रखैल के लिए भी कोई इज्ज़त नहीं थी ।"[1] कमालुद्दीन की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है कि उसके बाप की खरी हड्डी उसे हलाली नहीं बना सकती थी । इसलिए वह गाँव के उन तमाम लोगों से जलता था जो हलाली थे । अपने माँ की बेअदब ज़िन्दगी के बारे में सोचकर भी उसे बडी ठेस लगती थी । जब कोई वक्ता पाकिस्तान का प्रचार करने

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 247

के लिए अलीगढ से आया तो वह कमालुद्दीन से पूछ बैठा कि क्या आप के बालिद और बालिदा भी वोटर हैं ? "यह सुनकर कम्मो को नशा आ गया । उसने एक बार अपनी माँ के लिए किसी से बालेदा सुना था वरना वह तो न माँ थी, न बीबी । वह तो सिर्फ रहिमान बो थी ।"[1]

विवाह का समय आने पर अवैध संतान की समस्या और भी जटिल हो जाती है । कमालुद्दीन डाक्टरी की विद्या प्राप्त करता है फिर भी वह अब्बू मियाँ की बेटी सईदा से शादी नहीं कर पाता । वह सईदा से बहुत अधिक प्यार करता है । कमालुद्दीन अवैध सन्तान है, इसलिए इनकी शादी समाज कुबूल नहीं करता, क्योंकि वह कहेगा "कहाँ अब्बू मियाँ की बेटी सईदा और कहाँ जवाद मियाँ का हरामी बेटा कम्मो ।"[2] डाक्टरी प्राप्त करने के बाद भी जन्म की अवैधता के कारण कमालुद्दीन समाज के लिए "हरामी" है ।

अवैध मातृत्व

भारतीय समाज में विवाह संस्था का बडा महत्त्व है । विवाह संस्था ही नारी-पुरुष को सामाजिक रूप देती है । यहाँ नारी-पुरुष के यौन-संदर्भों को भारत में केवल प्राकृतिक या नैसर्गिक मानकर नहीं देखा जाता । यही कारण है कि कोई कुँआरी या नारी विवाह नामक सामाजिक संस्था को अवहेलना करके माँ

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 250
2. वही - पृ. 125

बनती है तो समाज के सामने वह एक समस्या के रूप में उपस्थित होती है । विवाह के पूर्व मातृत्व की प्राप्ति को परंपरा विच्छेदक, अधार्मिक एवं असामाजिक समझा जाता है । ऐसी स्थिति में नारी को समाज हेय या नफरत की दृष्टि से देखता है, फलतः उसे कठोर समस्याओं का सामना करना पड़ता है । यह नारी का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि नारी समस्याओं का सामना करे और पुरुष आसानी से छूट जाये । यह पुरुष प्रधान समाज का दोष ही कहा जाएगा ।

राही ने "आधागाँव" में बछनिया के माध्यम से अवैध मातृत्व की समस्या की ओर इशारा किया है । बछनिया सरिफवा से प्रेम करती है जिसके फलस्वरूप वह गर्भवती हो जाती है । आखिर वह उसके साथ भाग जाती है । पुत्री वियोग से उसके माँ-बाप कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

विधवा जीवन

हिन्दी उपन्यासों में विधवा-जीवन के वर्णन को बहुत अधिक महत्व सदैव मिला है । प्रेमचन्द ने विधवा जीवन के कारुणिक चित्र अपने "वरदान", "प्रतिज्ञा", "प्रेमाश्रम", "कर्मभूमि" आदि में उपस्थित किया है । विधवा के कुण्ठित जीवन के दो प्रमुख कारण है - उसका आर्थिक परावलंबन और उसकी स्वाभाविक वासनाओं की अतृप्ति । विधवा का विवाह वास्तव में इन दोनों कारणों का निराकरण करता है ।

इस्लाम धर्म में विधवाओं के पुनर्विवाह के संबंध में कोई धार्मिक बन्धन नहीं है । कुरान अपने अनुयायियों को खुला उपदेश देता है -"यदि तुम बेवा औरतों को निगाह का पैगम देना चाहते हो तो उनसे निकाह का इकरार चोरी छिपे न करना । जो कुछ करना है जायज तौर पर करो ।"[1]

राही मासूम रज़ा ने "आधा गाँव" में हुसैन अली मियाँ की बहिन नुम्मुल हबीबा को स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है -"वह कोई बोस साल से सफेद कपड़े पहन रही थी । शादी के तीसरे दिन वह बेवा हो गयी थी । नुम्मुल हबोबा शादी ब्याह के मौकों पर अछूत हो जाती थी । दुलहन के कपड़ों को वह छू नहीं सकती थी। धीरे धीरे वह बेवगी की आदी हो गयी और धीरे धीरे उसे भी मालूम हो गया कि बेवा के करायज क्या है । एक बात के सिलसिले में उसका जोहन साफ नहीं था । जब आं हज़रत ने पहली शादी एक रांड बेवा से की तो क्या अशरफ आं-हजरत से बड़े हैं कि बेवा से शादी नहीं करते । लेकिन वह यह सवाल करती किससे ?[2]

दहेज प्रथा

भारतीय समाज में हिन्दुओं के समान मुसलमानों में भी दहेज प्रथा का प्रचलन था । इसलिए ही मध्यवर्गीय परिवारों में दहेज को समस्या एक बहुत बड़ी समस्या ही है । रज़ा के लगभग सभी

---

1. कुरान पारा सैकुल , सूरत बकर, टुकु -3 आयज -30
2. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 173

उपन्यासों में दहेज समस्या का सामना करनेवाले मुसलमान परिवारों का चित्रण है । आधागाँव में सकीना की सास अपने बहु को सात लडकियाँ पैदा करने के कारण कोसती है । वे कहती है -"लडकी पे लडकी पैदा न किये जा रही है - बाकी ई घर में रोकड न धरा है ।"[1]

धनी मुसलमान परिवारों में माँ-बाप भारी दहेज देकर लडकियों का विवाह कराते हैं । "टोपी शुक्ला" उपन्यास में रज़ा ने इस बात का वर्णन किया है । मुन्नीबाबु के विवाह का वर्णन करते हुए उन्होंने इस बात को स्पष्ट दिखाया है कि यदि माता-पिता के पास दहेज देने के लिए धन नहीं है तो उनकी बेटियाँ घर में ही रह जाती है । धन है तो लंगडी को भी अच्छे से अच्छे वर मिल जाती है । मुन्नीबाबु तो पिता के कहे विवाह से इनकार करता है क्योंकि "लजवन्ती बहुत अच्छी लडकी थी बस एक आँख ज़रा खराब थी, बायें पैर को घसीटकर चलती थी रंग ज़रा ढंगा हुआ था और मुँह पर माता के निशान थे । परन्तु इन्हीं बातों से क्या होता है । शरीफ लोगों में कहीं कहीं बहुओं की सूरत देखी जाती है सूरत तो होती है रण्डी की । बीवी की तो तबीयत देखी जाती है । लजवन्ती सूरत और तबीयत दोनों ही की अच्छी थी ।"[2] लजवन्ती बहुत कुरूप थी इसलिए कोई भी उससे शादी के लिए तैयार नहीं था । परन्तु मुन्नीबाबु के पिता दहेज के प्रलोभन में फँस जाता है । वह इसलिए मुन्नीबाबु के इनकार से परेशान है । "डाक्टर साहब बहुत परेशान हुए क्योंकि लडकीवाले तंगडे आसामी थे । एक लाख नकद, एक मोटर, पाँच सेर सोना, तीस सेर चाँदी, डाक्टर साहब ने ऊँचनीच पर विचार किया

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 134
2. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 23

और मुन्नीबाबू को समझाने का फैसला किया ।"[1] यहाँ लजवन्ती तो कुरूप है फिर भी भारी दहेज के प्रलोभन से वह अच्छे से अच्छे वर प्राप्त करती है ।

रज़ा ने अपने उपन्यासों में इस बात का चित्रण किया है कि दहेज के कारण अनेक मर्दों और औरतों की ज़िन्दगी बरबाद हो गयी है । दहेज के कारण मुन्नोबाबू को अपने पिता द्वारा निश्चित लडकी से शादी करनी पडी । भारतोय मुसलमान परिवारों में दहेज प्रथा का बढिया प्रचलन है । भारत के प्रत्येक परिवार के लोगों का यही विश्वास है कि लडकीवालों के घर से जितना अधिक धन मिले उतना प्राप्त कर ज़िन्दगो को सुखी बनाया जा सकता है । उसी प्रकार लडकीवाले भी अपने सामर्थ्य से अधिक खर्च करके गर्व का अनुभव करते हैं । "कटरा बी अर्जु" में सी. आई. डी. इंस्पेक्टर अशरफुल्ला खाँ की पत्नी आलम आरा बेगम अपनो इकलौती बेटी की शादी भारी दहेज देकर धूमधाम से करना चाहती है । "एक सौ दस तो जोडे दिये । कोई जोडा पाँच सौ से कम नहीं है या पन्द्रह सौ गहनों के कि कोई सेर महोने में दोबारा न पहनना पडे । फिर पुरानी तर्जवाले खानदानो जेवर अलग की फिर उनका फैशन आ गया है । तो आलम आरा बेगम की दर्दिया सासवाला, नौरत्न, गुलुबन्द, चाकूतवाला, जौशन और बस्तबन्द, जडाऊँ, पानतालियाँ और कंगन, मोतियों का सतलग... चांदो के सब बर्तन तो खैर दिये ही जायेंगे । दुल्हा को एक कार और प्लैटिनम का सिगरेट केस तो देना हो पडेगा, फिर बारातवालों का जोडा । बर बिरादरी, पुराने नौकर चाकर, सात आठ लाख से कम खर्च नहीं होगा ।"[2]

---

1. टोपी शुक्ला - रज़ा - पृ. 23
2. कटरा बी अर्जु - रज़ा - पृ. 150

आजकल के प्रेमी नौजवान यदि दहेज नहीं है तो अपने प्रेम को भी ठुकरा देने के लिए तैयार है । क्योंकि हमारा समाज तो इस प्रकार के प्रेम विवाह के लिए सहमत नहीं है । यदि व्यक्ति बिना दहेज से विवाह करता है तो समाज उसका बहिष्कार ही करते हैं । हमारे समाज में दहेज तो प्रेम से ही बडा है । "कटरा बी अर्ज़" का शहनाज तो उसको घर से निकाल लेने के लिए अपने प्रेमी को खत लिखती है । इस पत्र का उत्तर देते हुए उसका प्रेमी लिखता है -"मैं तुम्हें निकालकर ला सकता हूँ फिर कटरा मीर बुलाकी छोडना पडेगा । नौकरी से निकाल दिया जाऊँगा । नौकरी है तो खर्च चलता नहीं नौकरी भी न होगी तो क्या करेंगे ।"[1] प्रेम करनेवालों को भी संतोषपूर्वक जीवन बिताने की अनुमति भारतीय समाज किसी को नहीं देता । इस प्रकार रज़ा ने मुसलमान परिवारों में प्रचलित दहेज की समस्या पर प्रकाश डालने की कोशिश की है ।

मुसलमान परिवारों में नारियों को अपने उचित पति चुनने का कोई अधिकार नहीं है । वह अपने माँ-बाप के कहे अनुसार किसी भी व्यक्ति को पति के रूप में स्वीकारती है । पुरुष के बारे में ये लोग सोचते ही नहीं । लंगडे या बूढे मर्दों के साथ लडकियों की शादी कराते हैं । इसके विपरीत आवाज़ उठाने का शौक नारी में नहीं । "आधा गाँव" में रज़ा ने लडाई से लंगडे बने मुईनुद्दीन की शादी का इतिवृत्त प्रारंभ से लेकर अंत तक विस्तार के साथ किया है । लंगडे होने एवं बैसाखियों के सहारे चलने पर भी 500 अशर्फियों के दहेज लेकर उसका विवाह एक खूबसूरत जवान लडकी के साथ हुई ।

---

1. कटरा बी अर्ज़ - रज़ा - पृ. 69

मुसलमान तो अपने समुदाय के लोगों के साथ विवा करते हैं । शिआ मुसलमान तो निचली जाति के औरतों के साथ विवा नहीं करते । इसलिए ही "आधागाँव" में शिआ लोग मौलवी बेदार का सख्त विरोध करते हैं । क्योंकि यह हरामी बच्छनिया के साथ विवाह करता है । अपनी श्रेष्ठता एवं कुलीनता को भूलकर ही वह ऐसा करता है । इससे सारे शिआ उसके विरोधी हो जाते हैं । शिआ औरतें अपने ही वर्ग के मर्दों के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करने में नहीं हिचकती । लेकिन वे कभी भी सुन्नी या राकी मर्दों के साथ संबंध नहीं जोड़ती । "आधागाँव" में शिआ औरतों के बारे में रज़ा यही बताते हैं -"लेकिन ऐसा नहीं था कि सैदानियों के हिस्से में कहानियाँ ही न आई हों । फलां मियां की बीवी अपने भतीजे से फंसी है फलां को उनके देवर ने रख छोड़ा है.... लेकिन इसमें शक नहीं कि इन कहानियों में भी हड्डी का रखा जाता था । यानी यह कभी नहीं हो सकता कि फलां की बीवी फलां राकी या जुलाहे से फंसी हुई है ।"[1]

मुसलमान मर्द स्त्री विषय पर सामाजिक मर्यादा का कोई परवाह नहीं करते । ये लोग पत्नी के अलावा अनेक औरतों के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करते हैं । एक पुरुष के अनेक पत्नियाँ भी होती हैं । ये लोग मेहतरानी और चमारिन से भी इश्क फरमाने में नहीं हिचकते । "लेकिन पाँच भाईयों में एक बीवी से तारा काम अब भी नहीं चल सकता । यह भी कोई कमर हुई । उनसे अच्छे

---

1. आधागाँव - रज़ा - पृ. 130

तो हमीं है चार भाइयों में कुलमिलाकर सात बीवियाँ हैं ।"[1] इसके अतिरिक्त अनेक मर्द ऐसे हैं जो रखैलें भी रखती है । "अनेक मर्दों ने ज़ुलाहिनें बिठा रखी है, तक्कन मियां को लौंडबाज़ी का शौक है और अशरफुल्ला खां ने लौंडा पाल रखा है । यौन-संबंधों में इस सामाजिक स्थिति को कथावाचक ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है जो शिआओं के हड्डी के खयाल का मज़ाक उठाने के लिए ।"[2]

तलाक

इस्लाम धर्म में पति और पत्नी दोनों को यह अधिकार दिया गया है कि वे चाहे तो तलाक देकर एक दूसरे से पृथक हो सकते हैं । और अपने इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकते हैं । इस्लाम धर्म में तलाक देने की पद्धति इतनी सरल बतायी गयी है कि कोई स्त्री या पुरूष एक दूसरे को किसी भी क्षण तलाक देकर पृथक हो सकता है । कभी कभी इसका दुरूपयोग भी होता है । व्यक्ति अधिक क्रोध या भावावेश की अवस्था में बिना सोचे-समझे अपनी पत्नी को तलाक दे देता है । इसके लिए उसको बाद में पछताने से कोई लाभ नहीं कि जिसको तलाक दे दी है उससे पुनर्विवाह सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता । रज़ा के हिम्मत जौनपुरी में इसी प्रकार के भावावेश में किये गये तलाक का वर्णन मिलता है । शेख शुजाअत अली दिलगीर जौनपुरी अपने ससुरालवालों से नाराज़ थे । इसलिए उनकी पत्नी जब कभी अपनी घरवालों की बात निकालती तब दिलगीर साहब नाराज़ हो जाते हैं । बेगम बो तो हमेशा अपने

---

1. आधागाँव - रज़ा - पृ. 96
2. हिन्दी आँचलिक उपन्यासों में जीवनसत्य - डॉ. इन्दुप्रकाश पांडेय- पृ. 250

घरवालों के बारे में बातें करती रहती है । दोनों के बीच के यह झगडा अंत में तलाक में परिणत हो जाता है । "मैं ने लाख मना किया है कि तुम इस घर में अपने बडके बाबा बगैरह का जिक्र न किया करो । यह सुनकर बेगम बिगड जाती । आखिर एक दिन बात इतनी बढी कि छिहत्तर बरस के दिलगीर जौनपुरी ने चौसठ बरस की बेगम बी को तलाक दे दी । घर में सन्नाटा हो गया । सब चुप । बस एक आरज़ू जौनपुरी चुप न रह सके । नतीजे में दिलगीर साहब ने आरज़ू जौनपुरी को घर से निकाल दिया । वह उसी समय अपनी माँ को लेकर घर से निकल गये ।"[1] उसी प्रकार हिम्मत जौनपुरी के माँ ने भी अपने पति से तलाक ले ली जिसके कारण पति पत्नी दोनों पछताते रहे । इसी कारण वे अधिक समय तक जीवित न रह सके ।

इस प्रकार के भावावेश में तलाक दी जाती है जिसके कारण वर्षों तक बिताये गये सुखमय पारिवारिक जीवन **तबाह** हो जाता है और परिवार के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं । कुछ संतान पिता के साथ रह जाती है तो कुछ माता के साथ । इस प्रकार एक बार बिगडे हुए घर को फिर से बसाना नामुमकिन सा हो जाता है ।

अन्तर्जातीय विवाह

भारतीय समाज को यद्यपि धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करते है तो भी यहाँ धर्म, जाति, लिंग, भाषा आदि के आधार पर

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 18

भेदभाव वर्तमान है । विभिन्न धर्मवाले लोगों के संस्कार भी भिन्न है । भारतीय समाज इतना रूढिबद्ध है कि यहाँ अन्तर्जातीय विवाह के लिए अनुमति नहीं देते ।

राही मासूम रज़ा तो अन्तर्जातीय विवाह के लिए सहमत नहीं है । इसलिए ही उन्होंने अपने उपन्यास "टोपी शुक्ला" और "ओस की बूँद" में हिन्दु-मुस्लिम के प्रेम को विवाह में परिणत न होते हुए दिखाकर भारतवासियों को संस्कारबद्ध स्वभाव की ओर संकेत किया है ।

"टोपी शुक्ला" में टोपी अलीगढ विश्वविद्यालय में पढते समय वहाँ के एक विद्यार्थिनी सलीमा से प्यार करने लगा लेकिन अपने प्रेम को प्रकट करने में वह असमर्थ हो जाता है । इसलिए वह सलीमा को खत लिखता है । इस बात का वर्णन लेखक इस प्रकार करते है - "टोपी वेटिंग रूम में बैठा सलीमा को खत लिख रहा था ।.... तुम चाहो तो यह खत मुमताज़ आपा को दिखा दो । और वह चाहे तो मेरा रजिस्ट्रेशन करवा दें । फिर भी मैं आज तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि मैं तुमसे इतना डरता हूँ कि तुम्हें अपने आपसे दूर नहीं रख सकता । क्या हम शादी नहीं कर सकते ? तुम यह कह सकती हो कि तुम मुसलमान हो और मैं हिन्दु । बच्चे बहुत चितकबरे होंगे । परन्तु क्या यह नहीं हो सकता कि बच्चों की बात हम बच्चों पर ही छोड दें ।"[1] लेकिन यह खत टोपी सलीमा को नहीं भेजता । वह तो यह जानता है कि हिन्दु

---

1. टोपी शक्ला - राही मासम रजा - प. 124

होकर एक मुसलमान लडकी से विवाह कर हमारे समाज में जोना कठिन ही है । इसलिए वह उस खत को फाडकर फेंकता है । इस प्रकार लेखक ने यह दिखलाते है कि अन्तर्जातीय विवाह के लिए अब भी भारत में अनुकूल वातावरण उत्पन्न नहीं हो पाया है ।

"ओस की बूँद" उपन्यास में ठाकुर शिवनारायण सिंह शहला नामक मुसलमान औरत से विवाह करना चाहता है । वह तो शहला से इतना अधिक प्यार करता है कि शहला के लिए अपने माँ-बाप, बाल-बच्चे सबको छोडने के लिए तैयार हैं । शहला तो समझदारी औरत है वह तो यह जानती है कि शिवनारायण से विवाह कर सुखमय जीवन नहीं बिता सकती । इसलिए वह शिवनारायण के विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती है । वह स्पष्ट शब्दों में कहती है - "मैं आपसे शादी नहीं कर सकती । इसलिए नहीं कि आपके बाल बच्चे हैं । बल्कि मैं आपको मुसलमान बनाना नहीं चाहती और खुद हिन्दु होना नहीं चाहती । चूँकि मैं मजहब को मानती हूँ इसलिए सिविल मैरेज नहीं कर सकती । बोबी मैं आपकी बन नहीं सकती । दासी बनने पर मैं तैयार नहीं हूँ ।"[1]

यहाँ लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह के परिणामों की ओर संकेत किया है । अन्तर्जातीय विवाह में किसी एक को धर्म परिवर्तन करना पडता है । भारत तो धर्म-प्रधान देश है । यहाँ के अशिक्षित एवं अज्ञानी व्यक्ति भी धर्म के उल्लंघन नहीं करते । जीवन की सफलता के लिए व्यक्ति को अपने धार्मिक मर्यादाओं का पालन आवश्यक है ।

---

1. ओस की बूँद - राही मासूम रज़ा - पृ. 114

रीति रिवाज़

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में मुसलमानी ज़िन्दगी के विभिन्न रीति रिवाज़ों, उत्सव-पर्वों, शादी-ब्याहों, आचार-अनुष्ठानों, अन्धविश्वासों, धार्मिक मान्यताओं का वर्णन किया है । विशेषकर उन्होंने "आधागाँव" में इस बात का विशद वर्णन किया है । "आधा गाँव" वास्तव में मुसलमानों की ज़िन्दगी का दस्तावेज़ी उपन्यास है । बाकी सारी घटनाओं का वर्णन परिवेशगत उपन्यास में आ गया है ।

मोहर्रम

मोहर्रम तो मुसलमानों का एक धार्मिक त्यौहार है । मोहर्रम एक इस्लाम महीना है । इसी महीने में ही इमाम हुसैन को, जो मुसलमानों के लिए पूज्य है, कत्ल हुई । इसलिए शिआ संप्रदाय के मुसलमान इसी महीने में इमाम हुसैन की स्मृति में शोक मनाते हैं । शिआ मुसलमानों का विश्वास है कि इमाम हुसैन मोहर्रम के अवसर पर हिन्दुस्तान आते हैं दस्वी की बैठक के बाद वापस कर्बला चले जाते हैं । मुसलमानों का यही विश्वास है कि इमाम हुसैन अमर-बिन-साद से कहा कि यदि उन पर बागी होने का शक किया जाता है तो उन्हें हिन्दुतान चला दिया जाये जाय इसलिए मुसलमानों के मन में हिन्दुस्तान के प्रति बढ़िया प्यार है । उनका यही विचार है कि जिस मुल्क में इमाम हुसैन आना चाहते थे उसी मुल्क में वे पहुँच गये है इमाम हुसैन के कत्ले के शोक में मुसलमान ढाई महीने तक का शोक मनाते हैं । इसमें दस दिन तक इमाम हुसैन तथा कर्बला में कत्ल किये गये साथियों के याद में वे मातम करते है । मातम तो प्रार्थना

करने की एक तरीका है । मातम के लिए विस्तृत विधि विधानें हैं । जिसके अनुसार बच्चे से लेकर बूढे तक व्यवहार करते है । गंगौली के फुन्नन मियाँ जैसे अनपढ व्यक्ति से लेकर विश्वविद्यालय में शिक्षाप्राप्त व्यक्ति भी मातम के विधि-विधानों को जानते हैं । जब वे यात्रा करते हैं तो उसी अवसर पर भी मर्सिये गुनगुनाते हैं । गंगौलीवासियों के मन में इमाम हुसैन के प्रति इतनी अन्धश्रद्धा और भक्ति है कि उनका नाम सुनते ही सभी बिलख बिलखकर रोने लगते हैं । इमाम हुसैन का शोकगान गा गाकर स्त्रियाँ ऊँची आवाज़ में रोती हैं । कुछ स्त्रियों का इतना अन्धविश्वास था कि इमाम हुसैन का नाम सुनते ही वे रोने लगेंगी । "दूसरी शिआ औरतों के बारे में मैं नहीं जानता लेकिन अपने खानदान की औरतों के बारे में ज़रूर जानता हूँ कि उनके रो पडने के लिए इमाम हुसैन का विपदा बयान करने की ज़रूरत नहीं होती बस इमाम हुसैन का नाम लेना काफी हुआ करता था ।"[1] मातम की शुरूआत सोज गाने से होती है जो प्राय: चार या छ: पंक्तियों का होता है । वेदना या दुख से युक्त ये राग कुशल गायक ही गा सकते हैं । इसके बाद मशहूर मर्सियागों के चुने हुए मर्सियें गाये जाते हैं । जिनमें इमाम हुसैन के परिवार के जीवनवृत्त और कर्बला के हत्याकाण्ड का मार्मिक वर्णन है । जिन्हें गाते गाते गायक और श्रोतागण रोने लगते हैं । इसके बाद नोहा गाया जाता है यह तो भावावेश की स्थिति है । इस अवसर पर सभी लोग भावावेश में हाथों से अपने सीने पीटने लगतो है । कुछ लोग बेहोश होकर गिर पडते हैं । अंत में सलाम पढ जाते है जो मोहम्मद खलीफा अली और उनके पुत्र हुसैन और हसन के प्रति पूज्य-भाव से परिपूर्ण होते हैं । अंत में मोहर्रम के जुलूस में ज़ारी गायी जाती है जिनमें खलीफा अली के अतिरिक्त अन्य तीन स्त्री खलीफाओं को कोसा जाता है । सुन्नी

---

1. आधागाँव - राही मासूम रजा - प. 55

मुसलमान तो इन्हीं खलीफाओं के भक्त हैं । मोहर्रम के जुलूस का प्रभावकारी वर्णन भी आधागाँव में पाया जाता है । गंगौली में उत्तरपट्टी तथा दक्षिणपट्टीवालों का अलग अलग ताज़िया है । सुन्दर से सुन्दर ताजिया बनाने के लिए दोनों पट्टीवालों के बीच में मुकाबला है । बड़ा ताज़िया दक्षिण पट्टी में है । ताज़िए के सुन्दरता के बारे में दोनों पट्टीवालों के बीच में स्पर्धा है । इसी स्पर्धा के कारण दोनों के बीच झगड़े भी हो जाते हैं । लाठी तक चलते है जिसमें शिक्षित और सुसंस्कृत लोग भी शामिल है । इमामबाडा उत्तरपट्टी में हैं । इसलिए दक्षिणपट्टीवालों को मातम के बैठक के लिए अपने शान भूलकर जाना पड़ता है । "इस उपन्यास में कथावाचक ने अपनी पट्टी के ताज़िए बड़े दिखाए है जिससे उत्तरपट्टीवालों में जलन और ईर्ष्या उत्पन्न होती है और परिणामस्वरूप दोनों पट्टियों के लोगों के बीच लाठियाँ चल जाती हैं जिसमें शिक्षित एवं सुसंस्कृत शिआ लोग भी मैदान में लड़ने के लिए उतर आते हैं ।"[1] बड़े ताज़िए के नीचे लोग मन्नतें माँगते हैं । मन्नतें माँगते समय सब अपने अपने मन में संकल्प निर्धारित करते है । जब संकल्प पूर्ण हो जाता है तो वह श्रद्धानुसार उसकी पूर्ति कर लेती है । कभी कभी मन्नत पूरी होती है कभी कभी नहीं । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्नतों के प्रति गंगौलीवासियों का पूरा का पूरा विश्वास है । गुलाबीजान थानेदार के द्वारा फुन्ननमियां को पकड़ने तथा कुलसुम अपने पति फुन्नन मियां के बेदाग छुट जाने के लिए चंदन शहीद और फुल्लन-शाह के मज़ार पर मन्नतें मांगती हैं । गुलाबीजान की मन्नत की पूर्ति हो जाने पर वह मजार पर चादर चढ़ाती है । यदि मन्नतें पूरी नहीं होती तो गाँववालों का विश्वास अविचलित ही रहते हैं क्योंकि "मन्नतें तो मन्नतों से टकराती ही रहती हैं । किसी न किसी मन्नत

---

1. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य - डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय - पृ. 246

पूरी होती ही रहती है और इसलिए विश्वासों की दुनिया में कोई तूफान नहीं आता । जिनकी मन्नत पूरी नहीं होती वह यह सोचकर चुप हो जाता है कि खुदा उसका इम्तहान ले रहा है ।"[1] गंगौली के युवा लोग भी परंपराओं एवं रूढ़ियों से अलग होना नहीं चाहते ।

अंधविश्वास

भारतीय समाज के प्रत्येक तबके व समुदाय में अंधविश्वास का प्रचलन है । लगभग भारत के अधिकांश लोगों का जीवन अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से जकडा हुआ है । मुसलमान लोग भी इससे भिन्न नहीं थे । राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों का खूब चित्रण दिखाई पडता है । आधागाँव उपन्यास में रज़ा ने अन्धविश्वासों में जकडे हुए गंगौलीवासियों का चित्रण किया है । भूतप्रेतों के बारे में गंगौलीवालों की यही धारणा है कि इमामबाडे में शुक्रवार की रात को जिन्नात मजलिस करते हैं इसलिए शाम के बाद कोई भी उधर से गुज़रते नहीं । "इमामबाडे के बारे में अजीब अजीब बातें मशहूर थीं । मशहूर था कि हर जुमे (शुक्रवार) की रात को इसमें जिन्नात मजलिस करते है । इसलिए शाम के बाद कोई इधर से गुज़रता ही नहीं ।"[2] "ओस की बूंद" उपन्यास में भी रज़ा ने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा इसके कारण उत्पन्न होनेवाले विभिन्न हानियों का चित्रण किया है । वजीर हसन की पत्नी "हाजरा" अपने पुत्र के वियोग में विक्षुप्त हो जाती है और बहकी बहकी बातें करने लगती है । परन्तु लोगों में यह विश्वास दृढ हो जाते है कि हाजरा के शरीर में जिन

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 95

प्रवेश किया है । वह हमेशा इस प्रकार बुदबुदाती रहती है -

"मेरा कल्लन पाकिस्तान से अल्लाह हो ना ?
दुल्हिन को गोदो कब भरिए ?"[1]

लोगों का यह दृढ विश्वास है कि इस दुनिया में जिन जैसे कुछ पारलौकिक शक्तियाँ है उन शक्तियों के कारण असंभव प्रतीत होनेवा कार्य भी संभव बन जाते हैं । हमारे समाज में ऐसे अनेक लोग है जो इन्हीं अंधविश्वासों का लाभ उठाते है । "ओस को बूँद" का बेहाल शाह इस बात का स्पष्ट उदाहरण है । ये लोग यही बहाना करते हैं कि इन्हीं अलौकिक शक्तियों को अपने वश में करने की ताकत उसमें है । इस प्रकार कहकर ये साधारण जनता को धोखा देते हैं । और उनसे इस कार्य के लिए रूपया हडप लेते हैं ।

भाषाई भिन्नता

भारत के विभिन्न जातियों एवं धर्मवालों की भाषा भिन्न भिन्न है । यहाँ हिन्दी भाषी जाति संख्या की दृष्टि से सबसे बडी है । हिन्दी प्रदेश में बोलचाल की भाषा के आधार पर साहित्यिक भाषा के दो रूप - हिन्दी और उर्दू विकसित हुए है । हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा और उर्दू को मुसलमानों की भाषा घोषित किया गया है । लेकिन हिन्दी और उर्दू को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । अत: हिन्द बोलनेवाले भारत के सभी हिन्दु उर्दू भाषा को समझ सकते हैं । उसी प्रकार उर्दू बोलनेवाले सभी लोग हिन्दी को समझ सकते हैं ।

---

1. आधागाँव - राही मासूम रजा - पृ. 39

रज़ा तो ऐसा रचनाकार है जो मुसलमान ज़िन्दगी को प्रमुखता देकर उपन्यास लिखा है । उन्होंने यही बताया है कि मुसलमान ज़िन्दगी, संस्कृति और सभ्यता में बहुत कुछ अंश ऐसे है जिन्हें उर्दू भाषा द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं । आधागाँव उपन्यास में उन्होंने यह दिखाया है । गंगौली के मुहर्रम के मातम के लिए जो कविताएँ है यदि उसे उर्दू लिपि में न लिखकर देवनागरी लिपि में लिखी जाती है तो पढते समय उसका उल्टा प्रभाव पडेगा । लोगों के मन में इमाम हुसैन के मृत्यु पर स्वाभाविक दुख की भावना जागृत नहीं होती । लेखक कहते है -"नौहा वही था, लफ्ज वही थे, लहजा वही था, बस एक लिपि की अजनबियत ने बीवियों को चिढा दिया था । चुनाचे न किसी की आंख नम कई और न किसी ने बैन किया ।"[1]

रज़ा ने अपने सभी उपन्यासों में उर्दू शब्दों का खुब प्रयोग किया है । इसका कारण तो यह है कि उन्होंने जिस संस्कृति की समस्याओं को ज़ोर देकर अपने उपन्यासों में चित्रित किया है वे उर्दू भाषा भाषी लोगों की संस्कृति है । साथ ही साथ साधारण जनता के लिए उन्होंने बोलचाल को भाषा का प्रयोग ही किया है । फिर भी उन्होंने उर्दू के प्रति अनावश्यक मोह नहीं प्रकट किया है । वे एक उर्दू भाषी व्यक्ति है फिर भी अपनी रचनाओं को उन्होंने हिन्दी में प्रस्तुत किया है -"लेखक ने उर्दू में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने पर भी, स्वयं उच्च-कोटी के उर्दू कवि होने पर भी, तथा दीर्घकाल तक विश्वविद्यालय में उर्दू के प्राध्यापक रहने पर भी उन्होंने उर्दू के प्रति अनावश्यक मोह नहीं दिखाया ।"[2]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 314
2. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 198

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में मुसलमानी ज़िन्दगी के असली रूप को चित्रित किया है । रज़ा तो एक सुशिक्षित, अनुभवी एवं जानकार व्यक्ति है जिसे मुसलमान संप्रदाय के बारे में गहन ज्ञान है । वे गंगौली के शिआ मुसलमान परिवार में उत्पन्न हुए । मुसलमान जीवन के बाह्य एवं आन्तरिक स्तरों का उद्घाटन उनके उपन्यासों में पाया जाता है । उन्होंने मुसलमान धर्म की समस्त विशेषताओं का उद्घाटन कर खोखली होती हुई रीति नीतियों, बाह्याडंबरों, अन्धविश्वासों का खण्डन ही किया है । भारत में अनेक ऐसे मुसलमान है जो अपना अलग हिस्सा चाहते हैं रज़ा ने तो ऐसे मुसलमानों का सख्त विरोध किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में मुसलमानों की रूढ़िवादिता एवं खोखली होती हुई मर्यादा का मज़ाक भी उठाया है । जैसे -"अनेक मर्दों ने जुलाहिनें बिठा रखी है, तक्कन मिया को लौंडबाजी का शौक है और अशरफुल्ला खाँ ने लौंडा पाल रखा है । यौन संबंधों में इस सामाजिक स्थिति को कथावाचक ने बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है । जो मुसलमानों के हड्डी के खयाल का मज़ाक उठाने के लिए है । इस प्रकार राही मासूम रज़ा के उपन्यास औसत भारतीय जीवन के खास तौर पर मुसलमान लोगों के जीवन के असली दस्तावेज़ है ।

अध्याय : चार

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नगरीय चेतना

प्रस्तावना

यह कहना सचमुच ही सही है कि भारत की आत्मा का दर्शन आजकल गाँवों की अपेक्षा नगरों में ही सबसे ज़्यादा है । नगर की बढ़ती हुई आबादी और महानगरों का बढ़ता क्षेत्रफल इस बात का सबूत है । क्योंकि भारतीय जीवन की संपूर्णता और विविधता गाँव की अपेक्षा नगरों-महानगरों में ही सबसे अधिक पायी जाती है । हमारे नगर-महानगर विश्व के प्रसिद्ध महानगर जैसे लन्दन, टोकियो, न्यूयोर्क के समान में आनेवाले नहीं हैं फिर भी महानगरीय जीवन में जो जटिलता, विविधता और गति दिखाई देती है, वह कलकत्ता, दिल्ली, मुंबई, चेन्नई जैसे महानगरों में । आबादी का दबाव महानगर पर अपेक्षाकृत अधिक होता है इसलिए आवास, रोज़गार जैसी समस्याएँ हमेशा सदा सिर उठाकर रहती है । ये समस्याएँ स्वतंत्रता से पहले इतना उग्र और भीषण नहीं थीं । इसलि इन समस्याओं से समकालीन लेखकों को रचनात्मक उत्तेजना नहीं मिली । किन्तु स्वतंत्रता के बाद लोग गाँव छोडकर शहर की तरफ बढ़ने लगे । इसके अलावा विभाजन के बाद शरणार्थियों की भीड़, औद्योगीकरण के कारण नगर-महानगर में बढ़ती आबादी, रोज़मर्रा ज़िन्दगी की ज़रूरतें, और समस्याएँ आदि ने लेखकों की सृजनात्मकता को उर्वर भूमि मुहैया कर दी । इस प्रकार उपन्यासकारों ने इन समस्याओं बडी ईमानदार, बैलौस और तलख अभिव्यक्ति देने की कोशिश की । नगर-चेतना के उपन्यासों ने भी अन्य औपन्यासिक धाराओं की तरह मानव जीवन के विशिष्ट आयामों को रेखांकित करना शुरू किया । राही मासूम रज़ा ने भी नगरीय-महानगरीय चेतना को अपने उपन्यासों में खींचने का सराहनीय कार्य किया है । इस अध्याय में आगे हिन्दी उपन्यासों में खासकर राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में अभिव्यक्त नगरीय चेतना पर विचार किया जाएगा ।

चेतना और नगरीय चेतना

"चेतना" अनुभव जन्य विचार शक्ति है, जो अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करती है । चेतना वह तत्व है जिससे मनुष्य को ज्ञान की, भावनाओं की, क्रियाशीलता की अनुभूति होती है । चेतना के द्वारा ही व्यक्ति, वस्तु, और स्थान को लेकर एक धारणा बनाता है । शहर या नगर के वातावरण को समझने तथा मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करनेवाली विचार जन्य अनुभव शक्ति नगरीय चेतना है ।

नगरीय चेतना और हिन्दी उपन्यास

नगर-जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यासों को मोटे तौर पर नगर बोध या नगरीय चेतना के उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है । नगरीय-महानगरीय समस्याएँ भी असन्तोषजनक आर्थिक स्थिति एवं बढ़ती आबादी से जुड़ी हुई हैं । बढ़ती आबादी ने नगरों-महानगरों की अवस्था को शोचनीय बना दिया है । बुनियादी सुख-सुविधाएँ तक वहाँ मौजूद नहीं है । नगरवासी तो गन्दगी एवं सड़ांध से लिपटी नारकीय ज़िन्दगी गुजर-बसर करने के लिए विवश हैं । इसका अंजाम यह निकला कि परंपरागत आचार-व्यवहार बदलने लगे हैं, नैतिक मानदण्ड एवं लोगों के रीतिरिवाज़ भी बदलने लगे हैं । इन नगरों-महानगरों का वातावरण भी प्रदूषित होने लगे हैं । इन नगरों-महानगरों की समृद्धि, भीड़-भाड़ एवं यांत्रिक जीवन के कारण तथा कस्बों में रहते आम आदमी के जीवन की अभावग्रस्तता एवं तज्जन्य पीड़ा के कारण

समसामयिक साहित्य में ऐसी मनोवृत्तियों की पैदाइश हुई है जिन्हें - "नगरबोध" के संदर्भ में आँका जाने लगा है ।[1] अकेलापन, विसंगतिबोध, अजनबीपन, ऊब एवं टूटन आदि मनोवृत्तियों को इसके तहत देखा-परखा जा सकता है ।

नगर-महानगर की ज़िन्दगी बहुत तेज़ है और संघर्षपूर्ण भी । यहाँ ज़िन्दगी बहुत अधिक तेज़ रफ्तार से गुज़रती है । ऐसे हालात में यहाँ आत्मीयता, आपसीपन और दोस्तानी की भावना बहुत ही कम है । नज़दीकी रिश्ते में भी तनाव और टूटन की स्थितियाँ यहाँ के व्यस्त जीवन में अक्सर बनती हैं । भागदौड, उखाड़-पछाड़ और लाग-लपेट में उलझे नागरिकों को लाचार बनकर मुखौटे धर्मों बनना पड़ता है । मशीनों के नगर में रहकर वे खुद मशीन बन जाते हैं । कृत्रिमता और यांत्रिकता नगर-बोध को कठोर बना देती है और निर्मम भी । इस प्रकार के प्रसंग, स्थितियाँ और अनुभव उपन्यासकार की रचनाशीलता को उकसाते रहे और स्वतंत्रता परवर्ती उपन्यासों का एक बहुत बड़ा हिस्सा नगर-महानगर जीवन के केन्द्र में रखकर लिखा गया ।

वैयक्तिकता को प्रमुखता

नगर जीवन में वैयक्तिकता की बड़ी प्रमुखता है । क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय नगर-समाज में एक धक्कामार संस्कृति विकसित और पल्लवित होती रही । विभिन्न देश-विदेशी विचारदर्शनों के प्रभावस्वरूप हमारी संस्कृति का रूप बहुत अधिक बदल गया है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य विविध आयाम - वी. के. अब्दुल जलील - पृ. 75

सामाजिक मान्यता ही व्यक्तिगत मान्यता को जन्म देती है । आज का व्यक्ति समाज और समय की उपज है और परिवेश की भी । लेकिन आधुनिक परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति का सामाजिक संबंध टूट गया है । परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था से व्यक्ति अपने आपकी मुक्ति चाहता है । वह केवल अपनी प्रगति या स्वार्थ को ही प्रमुखता देता है । इसलिए ही वह अपने बारे में ही सोचता है । दूसरों की परवाह करने का समय उसको नहीं था ।

औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप यहाँ के व्यापार धन्धे अधिक विकसित हो गये हैं । लेकिन वहाँ भी व्यक्तिगत स्वार्थ का असर दिखाई पडा । व्यक्ति केवल अपनी भलाई के लिए व्यापार करने लगा, जिसमें साधारण जनता की आवश्यकताओं पर ध्यान देने का प्रश्न ही नहीं उठता । उद्योगपतियों ने अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए कारखाना स्थापित किया । इसके फलस्वरूप धनिक व्यक्ति अधिक से अधिक धनिक होने तथा दरिद्र अधिक से अधिक दरिद्र बनने लगा । इन्हीं आर्थिक जटिलताओं के कारण नगरों और महानगरों की आजीविका बहुत दुष्कर हो गयी । इन्हीं परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के प्रति व्यक्ति अपना आक्रोश प्रकट करने लगा । इसके परिणामस्वरूप निर्मम और अमानवीय व्यक्तिवाद ने जन्म लिया । मानव मन में किसी न किसी प्रकार स्वतंत्र होने की उत्कट अभिलाषा पनप उठी । इस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति व्यक्ति के संबंध में विघटन होने लगा । स्त्री-पुरुषों में पारस्परिक स्पर्धा भाव, परंपरागत सामाजिक मूल्यों के प्रति आक्रोश, वैयक्तिक प्रतिमानों की अभिव्यक्ति आदि अवस्थाएँ इन्हीं परिवर्तनों का परिणाम है ।

"समष्टि के स्थान पर व्यष्टि-मानस की स्थापना के निमित्त युवावर्ग में वैयक्तिक प्रतिमानों का सामाजिक मान्यताओं के प्रति विरोध, धार्मिक रोतिरिवाज़ों, परंपराओं, संस्कारों के प्रति संघर्ष परिलक्षित होता है ।"[1]

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर युग में समाज-सापेक्ष व्यक्ति के बदले समाज निरपेक्ष व्यक्ति का जन्म होने लगा । मध्यवर्गीय समाज में ही ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक दिखाई पड़ी, क्योंकि इस प्रकार की मशीनी औद्योगिक सभ्यता का असर अधिक रूप से मध्यवर्ग पर ही पड़ा । समाज की इन आर्थिक समस्याओं के कारण मध्यवर्गीय परिवार टूटने लगा । आपसी संबंधों एवं सहज मानव मूल्यों का ह्रास होने लगा । दूसरी ओर पूँजीपतियों एवं उद्योगपतियों की धन कमाने की लालसा ने गहरे व्यक्तिवाद को जन्म दिया । इन व्यक्तिवादियों में समाज के प्रति आक्रोश की भावना दिखाई पड़ती है । यह भावना अधिक तीव्र होकर बाद में अपने प्रति भी आक्रोश बन जाती है । इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति जीवन में विभिन्न समस्याएँ पनपीं जैसे - अहं, असुरक्षा, अकेलेपन, अजनबीपन, मनुष्यत्वहीनता, स्त्री-पुरुष संबंध का विघटन आदि ।

मध्यवर्गीय कुंठाग्रस्त अजनबी व्यक्ति तथा उसकी मानसिकता की तरफ हमारे अनेक लेखक आकर्षित हुए । अत: 1950-60 के आसपास के अधिकांश उपन्यासों में इस अकेलेपन, कुण्ठा, संत्रास और मानसिक यातनाओं का यथार्थ चित्रण हो पाया । उषा प्रियंवदा की "रुकोगी नहीं राधिका", मोहन राकेश का "अंधेरे बन्द कमरे", मन्नू भण्डारी का "आपका बंटी" निर्मल वर्मा का "वे दिन" आदि उपन्यास इस कोटि में आते हैं ।

---

1. हिन्दी उपन्यास तीन दशक - डॉ. राजेन्द्र प्रताप - पृ. 66

बनते बिगडते व्यक्तिगत और सामाजिक संबंध

महानगरीय सभ्यता में बनते बिगडते सामाजिक और व्यक्तिगत संबंधों की असली अभिव्यक्ति हिन्दी की कई औपन्यासिक रचनाओं में हुई है । मोहन राकेश के "अंधेरे बन्द कमरे" इसकी बडी मिसाल है । महानगरीय ज़िन्दगी की भीड, कृत्रिमता और ग्रामीण ज़िन्दगी के स्वच्छ शांतता की तुलना गाँव से पलायन कर महानगर में आए हुए व्यक्तियों द्वारा की गयी है । गाँव की सी पहचान, सहयोग, सौहार्द आदि बातें शहर में नहीं है।महानगरों का जीवन एकदम कृत्रिमता से भरपूर है । अकेलेपन, अजनबीपन, दौड़धूप, सन्देह, तिक्तता आदि के कारण महानगरीय ज़िन्दगी का हाल नाज़ुक बन गया है । यहाँ पति-पत्नी, भाई-बहिन, माँ-बेटे आदि के पारिवारिक संबंध रूपये पर टिके हैं । "अंधेरे बन्द कमरे" में आज के दिल्ली के माध्यम से आधुनिक महानगरीय जीवन का विशद चित्रण हुआ है । इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है हरबंस और नीलिमा । दोनों की पारस्परिक तनावपूर्ण ज़िन्दगी उपन्यास का मुख्य विषय है ।

हरबंस एक ऐसा व्यक्ति है जो सामाजिक मूल्यों को बनाये रखना चाहता है । वह एक रूढ़िवादी व्यक्ति है । लेकिन उसकी पत्नी नीलिमा का व्यक्तित्व उससे एकदम भिन्न है । वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व चाहती हैं । नीलिमा के खुले व्यक्तित्व को हरबंस पसन्द नहीं करता । वह नीलिमा को अपना खिलौना बनाना चाहता है । नीलिमा द्वारा दूसरों से बातचीत करना भी वह पसन्द नहीं करता । इसलिए दोनों के पारिवारिक जीवन अंधेरे बन्द कमरे में है । दोनों के बीच का

यह वैयक्तिक संघर्ष दोनों को कुछ नहीं होने देता । हरबंस एक साहित्यकार बनना चाहता हैं और नीलिमा एक नर्तकी बनना चाहती हैं । पहले हरबंस ही हठ करके नीलिमा को नृत्य करने का प्रोत्साहन देता है । लेकिन जब उसको बहुत अधिक ख्याति मिलती है तब उसकी ख्याति हरबंस को उकसाता है । हरबंस किसी भी प्रकार नीलिमा को अपने ऊपर होने नहीं देता । लेकिन नीलिमा उसके एकाधिकार से मुक्ति पाना चाहती है । अपनी नृत्यकला को विकसित करते हुए समाज में प्रतिष्ठित होने के पीछे उसकी व्यक्ति प्रतिष्ठा ही काम करती है । वह स्त्री में व्यक्ति स्वातंत्र्य का होना अनिवार्य मानती है । "मैं ने आज तक अपने को किसी पुरुष के सामने हीन नहीं होने दिया, किसी को अपनी कमज़ोरी का फायदा नहीं उठाने दिया । मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहती । पुरुष में स्त्रियों के प्रति जो संरक्षात्मक भाव है वह मुझे बरदास्त नहीं था इसलिए मैं ने ऐसा काम चुना जिससे मैं अपने आपको किसी पुरुष के बराबर सिद्ध कर सकूँ ।"[1]

हरबंस और नीलिमा अपनी अपनी वैयक्तिकता के कारण एक दूसरे के प्रति प्रेम और घृणा करते हैं । इसलिए ही वे प्रेम को एक प्रकार से यन्त्रणा समझते हैं । दोनों को अपने अपने प्रेम में कोई आत्मविश्वास नहीं है । हरबेस की दृष्टि में -"प्रेम में स्थिरता तथा स्थायित्व लाने के लिए विशाल हृदय ही नहीं विशाल मस्तिष्क भी चाहिए ।"[2]

आधुनिक परिवर्तित महानगरीय सभ्यता में अणुपरिवार का विघटन साधारण सी घटना है । "अंधेरे बन्द कमरे" के हरबंस और

---

1. अंधेरे बन्द कमरे - मोहन राकेश - पृ. 462
2. वही - पृ. 73

नीलिमा के मानसिक द्वन्द्व भी इन्हीं पारिवारिक विघटन से जन्मे है । विदेश से हरबंस नीलिमा को पत्र लिखता है । उसी पत्र में यही मानसिकता की अभिव्यक्ति है -"मुझे बहुत दिनों से लग रहा था कि हम दोनों साथ साथ रहकर सुखी नहीं रह सकते । मगर अपने देश में रहते हुए एक सामाजिक परिस्थिति मुझे तुम्हारे साथ रहने को मज़बूर कर रही थी । आज इस डेक पर खुले समुद्र के बीच मैं अपने आपको मज़बूरी से मुक्त समझता हूँ ।"[1]

हरबंस और नीलिमा सामाजिक नैतिक मूल्य को बनाये रखने के लिए न चाहते हुए भी एक साथ रहने के लिए मज़बूर है । यहाँ दोनों के व्यक्तित्व स्वातंत्र्य का मुखर-स्वर देख सकते हैं । हरबंस तो पुरुष-मेधा समाज का प्रतिनिधि हैं । वह नीलिमा को अपने ऊपर देखना नहीं चाहता । लेकिन नीलिमा में स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की चाह अधिक है । वह "खा पीकर तथा घूमकर संतुष्ट नहीं, घरेलू ज़िन्दगी जीना उसे अभीप्सित नहीं । पति के लिए एक चीज़ बनकर रहना उसे असह्य है ।"[2] नीलिमा पुरुषों के साथ स्त्री का समान अधिकार पाना चाहती है । दूसरी ओर हरबंस तो नीलिमा को स्वतंत्र होने नहीं देता । दोनों की यही स्पर्धा भाव दोनों की ज़िन्दगी को बोझ जैसा बना देती है ।

मधुसूदन इस उपन्यास का कथावाचक हैं जो कथा को आगे ले चलता है । वह भी ज़िन्दगी की इस बोझ से पीड़ित है । उसकी ज़िन्दगी भी परिवर्तित नगरीय परिवेश में भड़कती फिरती ज़िन्दगी है ।

---

1. अंधेरे बन्द कमरे - मोहन राकेश - पृ. 138
2. वही - प. 511

वह पहले सुषमा नामक स्त्री से प्यार करता है लेकिन बाद में सुषमा को त्यागकर निम्मा के साथ विवाह करता है । मधुसूदन तो ग्रामीण ज़िन्दगी के भोलेपन और सच्चाई को पहचानता है । इसलिए ही वह शहर की कृत्रिमता से अधिक ग्रामीण ज़िन्दगी के भोलेपन को अधिक चाहता है ।

इस उपन्यास में लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को पूरी वास्तविकता के साथ चित्रित किया हैं । ये मध्यवर्ग सफेदपोश वर्ग के जीवन जगत की समस्याओं की ओर नहीं जाता । केवल भौतिक भोगलिप्त ही उनकी ज़िन्दगी का प्रमुख विषय है । व्यक्ति अपने परिवेश के अनुकूल ही वस्तुओं की आवश्यकता का अनुभव करता है । मध्यवर्गीय व्यक्ति के लि यही भोगलिप्सा ही ज़िन्दगी का सब कुछ है । भूख, शोषण, अत्याचार आदि समाज की शोचनीय अवस्था की वे परवाह नहीं करते । सुख सुविधापू जीवन ही उनके लिए सब कुछ है । इसके लिए वे दौड धूप करते हैं । लेकिन जब उसको अपने इच्छानुकूल ज़िन्दगी नहीं मिलता तभी उसके मन में अकेलेपन अजनबीपन आदि भावनाएँ जाग उठती हैं ।

अस्मिता की तलाश

अपनी अस्मिता की तलाश भी महानगरीय जीवन की एक खासियत है । पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के समन्वय से उत्पन्न पारिवारिक एवं व्यक्ति संबंध के टूटन को उषा प्रियंवदा के "रुकोगी नहीं राधिका" उपन्यास में विषय बनाया गया है । इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है राधिका । राधिका में आधुनिक नारी के परिवर्तित व्यक्तित्व को हम

पा सकते हैं ।उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में नारी की अस्मिता और व्यक्तित्व को समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । परिवार के बीच अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज में टूटती और बिखरती हुई नारी का चित्रण उन्होंने अत्यंत सहज ढंग से किया है । राधिका मध्यवर्गीय परिवार की लडकी है । उसे अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की खोज दूर-दूर भडकाती है । बचपन में ही माँ के चल बसने के कारण राधिका पिता से अधिक मिली जुली रहती थी । इसलिए जब पिता दूसरी विवाह कर लेती है तब वह अपने को निराधार समझती हैं । एक प्रकार की दिशाहीनता, अस्तित्वहीनता उसके व्यक्तित्व को आन्दोलित करती है । स्वतंत्रता और अस्तित्व के लिए भडकनेवाली राधिका इसके बीच अपने पिता, भाई, सौतेली माँ किसी की बात को बरदास्त नहीं कर पाती । वह पिता से कहती है, "जो आप चाहते हैं वहीं हमेशा क्यों हो ? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है ? मैं आपकी बेटी हूँ यह ठीक है, पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी ।"[1] राधिका जो चाहती हैं वही करती है । उस पर कोई दबाव नहीं डालता । इसलिए ही वह एक विदेशी पत्रकार के साथ भारत छोडकर अमेरिका चली जाती है । किन्तु कुछ दिनों के बाद पत्रकार भी उसका साथ छोड देता है । राधिका को इस बात पर बहुत अधिक दुख होता है । क्योंकि वह देश उसके लिए बिलकुल नया-नया है । एक साल के बाद वह वहाँ से चली जाती है । उसके बाद वह दिल्ली, इलाहाबाद जैसे शहरों में भी घूमती फिरती है । किन्तु कहीं वह अपना स्थान जमा नहीं पाती ।

अपने इस भडकाव में राधिका अनेक पुरुषों के संपर्क में आती है । किन्तु किसी को भी वह अपने पुरुष के रूप में स्वीकारती नहीं ।

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 67

वह यह निश्चय कर लेती है कि उसी पुरुष के साथ विवाह करेगी जो उसके अतीत और अवगुणों सहित स्वीकार कर ले । ऐसे दृढ विचारों में उसके अस्तित्वबोध की तीव्र आकांक्षा व्यक्त होती है । वह वास्तव में प्रेमी में पति नहीं पिता खोजती है । अंत में उसके इच्छानुसार अनुकूल व्यक्ति उसको मिल जाती है । उसके साथ वह शारीरिक संबंध भी स्थापित करती है । लेकिन अंत में उस व्यक्ति को भी वह छोड देती है और मनोश के साथ उसका विवाह भी होता है ।

इस उपन्यास द्वारा उषा प्रियंवदा ने आधुनिक परिवर्ति नगरीय सभ्यता में पलनेवाली नारी की असली रूप दिखाया है । आज का नारी जीवन कई समस्याओं से ग्रस्त हैं । आधुनिक नारी में व्यक्ति स्वातंत्र्य की चाह अधिक है । वह पुरुष के साथ समान अधिकार पाना चाहती हैं । पुरुष के प्रेमपाश में या पुरुष की सुरक्षा वलय में अपने आपको बन्धित करना वह नहीं चाहती । नारी की इसी मुक्ति-कामना ही आज उसके जीवन की सबसे बडी समस्या बन गयी है । राधिका की ज़िन्दगी की समस्याएँ इस बात का स्पष्ट सबूत है ।

अकेलेपन और अजनबीपन

अकेलेपन और अजनबीपन शहरी जीवन की एक अन्य विशेषता है । शहरी जीवन की विसंगतियों में मिसफिट होनेवाले पुरुष नारी और बच्चे का चित्र मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास "आपका बंटी" में उभारा है । अकेलेपन और अजनबीपन से मुक्त होने के लिए व्याकुल मानव मन की व्याकुलता का वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है ।

अकेलेपन के तनाव से गुज़रनेवाले बालमन की विह्वलता का चित्रण भी इस उपन्यास में हुआ है । नारी की आकुलता, उसके जीवन की घनीभूत वेदना दूसरों को पराजित करने की इच्छा आधुनिकता बोध या नगरीकरण की उपज है । "आपका बंटी" उपन्यास सामाजिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी । क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का व्यक्तिमन पर पड़नेवाले प्रभाव तथा इसके परिणामस्वरूप व्यक्तिमन में आनेवाले परिवर्तन को इस उपन्यास में दिखाया गया है । सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न व्यक्ति संबंध का विघटन ही इसका प्रमुख विषय है । "आपका बंटी" की समस्या जितनी मनोवैज्ञानिक है उतनी ही सामाजिक भी है । इसे केवल दांपत्य जीवन के बिखराव या नारी के अहम की समस्या या आधुनिक बोध से प्रभावित नारी के मानसिक संघर्ष की रचना कहना समीचीन नहीं है । यह तो आधुनिक भावबोध की जटिलता और सामाजिक जीवन में व्याप्त विघटनात प्रवृत्ति की उपज है ।"[1]

"आपका बंटी" उपन्यास की विशेषता यह है कि इस उपन्यास के सभी पात्र किसी न किसी प्रकार की जटिलताओं का सामना करनेवाले है । किन्तु ये इन्हीं जटिलताओं के विरुद्ध संघर्ष करते हैं । परिवर्तित होनेवाले परिवेश से जुड़े रहने के लिए ये तैयार हैं । बंटी, शकुन, डा.जोशी, अजय सब अपने अपने रोतेपन को समाप्त करने में क्रियाशील है । इस उपन्यास के सभी पात्र अकेलेपन के शिकार हैं । इस अकेलेपन के एहसास को अधिक तीव्र बनाने के लिए पात्रों के आपसी संबंध को अधिक घनिष्ठ बना दिया है । बंटी अकेला है । उसके माँ-बाप एक

---

1. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास - डा.रामविनोद सिंह - पृ.10

दूसरे से अलग रहते हैं । बंटी अपने माँ के साथ है इसलिए अपनी माँ से वह अधिक जुड़ा रहता है । लेकिन जब माँ का दूसरे व्यक्ति से विवाह हो जाता है तब बंटी एकदम अकेला हो जाता है । उसके लिए यह अकेलेपन बहुत तीखा और पीड़ादायक हो जाता है । उसके लिए इस संसार में एकमात्र सहारा मम्मी ही था । मम्मी का यह उपेक्षा भाव बंटो को बहुत अधिक उकसाता है । वह एक प्रोब्लम चैल्ड बन जाता है । शकुन को ज़िन्दगी में भी वह प्रोब्लम बन जाता है । बंटी के पिता अजय उसको अपने साथ ले जाता है । वहाँ भी अपनी सौतेली माँ को वह पसन्द नहीं करता । अत: पिता के यहाँ भी बंटी प्रोब्लम बन जाता है । इस उपन्यास द्वारा लेखिका ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि बिछुड़े माँ-बाप के बच्चे किस प्रकार के यन्त्रणाओं से युक्त ज़िन्दगी से गुज़र रहे हैं । यहाँ बंटी अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील है । माँ-बाप के संबंध विघटन उसके ज़िन्दगी को अधिक तनावपूर्ण बना देता है । उसका व्यक्तित्व अहम से भर जाता है । अपनी माँ की तरह वह भी दूसरों को पराजित करने तथा अपने को विजयी देखने में आत्मसुख का अनुभव करता है । यहाँ यह देखते हैं कि हमारे समाज में व्यक्ति अपने बारे में ही सोचता है । अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए मनुष्य सब कुछ करता है इसके कारण दूसरों का क्या दोष होता है इसके बारे में वह सोचता ही नहीं । शकुन और अजय की ज़िन्दगी में भी यही होता है । शकुन और अजय एक दूसरे को पराजित करने के लिए अलग हो जाते हैं । उपन्यास के अन्तिम भाग में शकुन इस बात को पहचानती है । वह कहती है -"सच हम लोग शायद बंटी को मात्र साधन ही समझते रहे, अपने अपने अहम, अपनी अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपनी अपनी कुण्ठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे।बंटी के संदर्भ में कभी सोचा ही नहीं ।"[1]

---

1. आपका बंटी - मन्नू भण्डारी - पृ. 203

समकालीन नगरीय परिवेश में स्त्री पुरुष के खण्डित दांपत्य के कारण बच्चों की दयनीय स्थिति निर्मित होती है । इस विषय पर यह उपन्यास सीधा दृष्टिपात करता है ।

अकेलेपन की संवेदना

महानगरीय परिवेश के अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करनेवाला उपन्यास है निर्मल वर्मा का "वे दिन" । ये चेकोस्लोवाकिया के परिवेश में लिखा गया पहला हिन्दी उपन्यास है । पश्चिमी सभ्यता के प्रचार प्रसार से उत्पन्न आंतकपूर्ण परिस्थिति उपन्यास को महानगरीय परिवेश प्रदान करता है । यूरोपीय जीवन में व्याप्त विडंबनाग्रस्त परिस्थिति उपन्यास का प्रमुख विषय है । उपन्यास के आदि से लेकर अंत तक उदासीनता जटिलता और तनावपूर्ण वातावरण छायी हुई है । द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न आतंकपूर्ण परिस्थिति को इस उपन्यास में बडी सफलता के साथ व्यक्त किया गया है । युद्धोपरांत मानव मन भय, आतंक, अलगाव, निस्संगता, रीतेपन आदि से भरा हुआ था । "अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करनेवाला यह उपन्यास इन्द्रिय संवेदनों और मनोदशाओं को "विविड" और "वंडरफुल" ढंग से अंकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है ।"[1]

महानगरीय परिवेश में जीनेवाले व्यक्ति है रायना, इन्दी, टी.टी.फ्रांज, मरिया, मीता आदि । उन सभी का जीवन

---

1. हिन्दी उपन्यास : विविध आयाम - चन्द्रभानु सोनवाणे - पृ. 306

समस्याओं से ग्रसित है । युद्धेतर परिस्थिति में मानव की कोमल भावनाएँ सब विनष्ट हो गयी हैं । सब व्यक्ति भड़क रहे हैं । निराशा, दुख, अवसाद सब में व्याप्त हैं । सभी विवश है । प्रेम के मानसिक पक्ष को छोड़कर शारीरिक पक्ष को प्रमुखता मिली है । प्रेम को वक्त काटने के लिए भोगी जाने योग्य वस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है । रायना और जाक के लिए भी प्रेम एक ऐसी वस्तु है । इसलिए ही वे दोनों एक दूसरे से अलग रहते हैं । उनका पुत्र मीता दोनों के साथ अलग रहता है । फ्रान्ज मरिया को छोड़कर बर्लिन जा रहा है इन्दी को बहिन का पत्र मिलता है । पर पत्र पढने की उत्सुकता उसमें नहीं । अत: एक प्रकार की उदासीनता सब में व्याप्त है । इन्दी कहता है -"अब घर बहुत अवास्तविक-सा जान पड़ता है ।"[1]

इस प्रकार "वे दिन" महायुद्धोत्तर मानवीय ट्राजडी का सही दस्तावेज़ है । आधुनिक व्यक्ति के परिवर्तित मनस्थिति को उपन्यास में उभारा गया है । इस उपन्यास ने आज के व्यक्तिमन के जड़ भावबोध की अभिव्यक्ति में कामयाबी हासिल की है ।

शहरी जीवन और औद्योगिक व्यवस्था पर आधारित उपन्यासों में अमृतलाल नागर का "अमृत और विष" , "बूँद और समुद्र", राजेन्द्र यादव का "उखड़े हुए लोग", ममता कालिया का "बेघर", बदी उज्जमां का "एक चूहे की मौत", जगदंबा प्रसाद दीक्षित का "मुर्दाघर", आदि अधिक प्रमुख है । स्वतंत्रता परवर्ती इन नगरबोध से युक्त उपन्यासों में मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की असलियतों को बड़ी समग्रता और

---

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 34

सजगता के साथ चित्रित किया गया है । परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति अपने परिवेश से कटा हुआ है । इसलिए ही उसकी ज़िन्दगी अव्यवस्थित है । आज के इंसान की ज़िन्दगी संघर्षपूर्ण है । हमारी आर्थिक व्यवस्था हो व्यक्ति मन के विघटन का एक कारण है । आज अर्थ ही व्यक्ति को योग्य या अयोग्य बना देता है । धन है तो महामूर्ख भी महापण्डित की उपाधि प्राप्त कर सकता है । धन नहीं है तो महापण्डित भी महामूर्ख बन जाता है । हमारे चारों ओर इस प्रकार के अनेक अन्याय और अत्याचार चल रहे है । किन्तु महानगर में रहनेवाले मध्यवर्गीय व्यक्ति इन सबके प्रति निष्क्रिय और निस्संग है । प्रतिक्रिया विहीन मध्यवर्गीय मानव के मन में एक प्रकार का रीतेपन फैला हुआ है । आज सर्वत्र यांत्रिकता छायी हुई है । यन्त्रों के पुर्जे के समान चलनेवाली ज़िन्दगी से मनुष्य को मुक्त करने के लिए नगरबोध से युक्त उपन्यासों का चयन हुआ है । इस लक्ष्य में ये उपन्यास काफी अंश तक सफल भी निकले हैं ।

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नगरबोध

राही मासूम रज़ा समाज और समय की गतिविधियों से वाकिफ सामाजिक चेतना के रचनाकार है । अपनी रचनाकार की सामाजिक सच्चाइयों को उन्होंने अपने उपन्यासों में अंकित किया है । आधुनिक परिवर्तित भारतीय समाज का वास्तविक रूप उनके उपन्यासों में पा सकते हैं । समय-परिवर्तन के साथ साथ समाज में होनेवाले परिवर्तन को रज़ा ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है । रज़ा का प्रथम उपन्यास "आधागाँव" का रचनाकाल सन् 1966 है । इस उपन्यास में 1937 से 1952 तक के पन्द्रह वर्ष की अवधि में होनेवाली घटनाओं का वर्णन है । उसी प्रकार

बादवाले उपन्यासों में भी तत्सामयिक समाज का चित्रण उन्होंने किया है । "आधागाँव" में उन्होंने स्वतंत्रता तथा देशविभाजन के परिणामस्वरूप परिवर्तित ग्रामीण समाज का मुख गंगौली गाँव के द्वारा चित्रित किया है । "हिम्मत जौनपुरी" से लेकर "कटरा बी अर्जु" तक के उपन्यासों में परिवर्तित समाज तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । "आधागाँव" को छोडकर रज़ा के बाकी सारी औपन्यासिक रचनाओं में नगरीकरण के फलस्वरूप विकृत होते रहे भारतीय समाज को भली भाँति चित्रित किया गया है । "राही ने अपने कथानकों का चयन मध्यवर्गीय शिक्षित, सुसंस्कृत एवं सभ्य नागरिक समाज के जीवन में से किया है । इस वर्ग की ज्वलन्त समस्याओं और विभीषिकाओं, अन्तर्द्वन्द्व और आन्तरिक रिक्तता तथा मानस-मन्थन का उद्घाटन इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में किया है ।"[1]

रज़ा ने अपने उपन्यास हिम्मत जौनपुरी के कथानक को तीन भागों में बाँटा है । प्रथम भाग में "हिम्मत जौनपुरी" के पूर्वजों का वर्णन है साथ ही साथ उनके जन्म बचपन और युवावस्था का भी । दूसरे भाग में हिम्मत जौनपुरी के युवावस्था से लेकर बंबई जाने के पूर्व तक का वर्णन है । तीसरे भाग में उनके बंबई जीवन का संक्षिप्त परिचय मिलता है । इस उपन्यास में बंबई महानगर की पृष्ठभूमि में अध्यवर्गीय भारतीय नागरिकों की सामाजिक समस्याओं का सशक्त रेखांकन दिखाई देता है । बंबई में गफ्फार चा नामक चाय के दूकानदार से तथा प्लेटफार्म पर रहनेवाली जमुना नामक वेश्या से हिम्मत जौनपुरी का परिचय हो

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि -
डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 234

जाता है । उन्हीं की ज़िन्दगी की विडम्बनाग्रस्त परिस्थिति के वर्णन द्वारा बंबई महानगर की शोचनीय अवस्था का चित्र उन्होंने हमारे सामने उपस्थित किया है । हिम्मत जौनपुरी तो बंबई में एक ऐसे वातावरण में रहते थे वहाँ लोग हमेशा आपस में लडते झगडते रहते थे । हिम्मत जौनपुरी का अंत भी एक झगडे के कारण होता है । "वह जिस वातावरण में रहता वहाँ प्रायः आपस में झगडे हुआ करते थे । एक आपसी झगडे में वह भी फंस गया और उसके कुछ ही दिनों बाद एक दुर्घटना में उसका अंत हो गया ।"[1]

आत्महत्या : एक अभिशाप

आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में दिखाई पडनेवाली एक समस्या है आत्महत्या की समस्या । हमारा समाज इतना अधिक दूषित हो गया है कि यहाँ व्यक्ति ने ज़िन्दगी को एक बोझ के समान स्वीकार किया है । मध्यवर्गीय व्यक्ति हमेशा समस्याओं के साथ जूझता रहता है । जब समस्याओं का सामना करने में असमर्थ हो जाता है तब वह आत्महत्या करता है । मनोवैज्ञानिक और आर्थिक कारण ही आत्महत्या के लिए सबसे अधिक प्रेरक शक्ति है । संयुक्त परिवार तथा अणुपरिवारों में लगातार आत्महत्याएँ होती रहती हैं । बेरोज़गारी, निर्धनता, गरीबी, भूख, मानसिक एवं शारीरिक समस्याएँ ही आत्महत्या के लिए प्रमुख कारण है ।

राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास "टोपी शुक्ला" में टोपी शुक्ला का अंत आत्महत्या में दिखाया है । टोपी शुक्ला तो एक विशेष प्रकार के आदतवाला व्यक्ति है । वह परिस्थिति से तादात्म्य

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 154

होने में पूर्णरूप से असफल है । वह किसी न किसी प्रकार ज़िन्दगी की समस्याओं के साथ कोम्प्रामाईस होना चाहता है लेकिन कोम्प्रामाईस नहीं कर पाता । इसलिए वह अंत में आत्महत्या कर ही लेता है । इस उपन्यास के अन्तिम परिणाम द्वारा रज़ा ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नहीं है । रज़ा तो आत्महत्व को पसन्द नहीं करते । उनका यही दृष्टिकोण है कि व्यक्ति को जीवन को समस्याओं के साथ सामंजस्य करना ही चाहिए । आत्महत्या तो जीवन का हनन है । रज़ा ने तो स्वयं यह स्वीकार किया है -"मुझे यह उपन्यास लिखकर कोई खास खुशी नहीं हुई । क्योंकि आत्महत्या सभ्यता को हार है । परन्तु टोपी के सामने कोई और रास्ता नहीं था । यह टोपी मैं भी हूँ और मेरे ही जैसे और बहुत से लोग भी हैं । हम लोगों और टोपी में बस एक अन्तर है । हम लोग कहीं न कहीं किसी न किसी अवसर पर कम्प्रोमाईस कर लेते हैं और इसलिए हम जी रहे हैं । टोपी कोई देवता या पैगम्बर नहीं था । किन्तु उसने कम्प्रोमाईस नहीं किया और इसलिए उसने आत्महत्या कर ली ।"[1]

टोपी शुक्ला का जीवन आदि से अंत तक संघर्षों से युक्त था । उसका जन्म एक हिन्दु परिवार में ही होता है । उसको अपने घरवालों से कोई प्यार नहीं मिलता । उसका यही विचार है कि उसकी बदसूरती के कारण ही घरवाले उसके प्रति उपेक्षा भाव प्रकट करते हैं । घर में तो अपने दोनों भाईयों के समान उसको कोई अधिकार या सुविधायें नहीं मिलती । बचपन से इफ्फन नामक एक मुसलमान लडके के साथ उसकी

---

1. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 7

मित्रता हो जाती है । घरवालों के इस तिरस्कृत और उपेक्षाभाव के कारण वह अपने साथी इफ्फन को अधिक प्यार करने लगा । इफ्फन के घरवालों के साथ वह इतना अधिक घुलमिल गया कि मुसलमान संस्कारों का उस पर गहरा प्रभाव पडता है । इफ्फन तथा उसके घरवालों को वह अपने घरवालों से अधिक प्यार करता है । इफ्फन की दादी को मृत्यु के अवसर पर वह इफ्फन की दादी के बदले अपने दादी की मृत्यु चाहता है । "अपने एकांत जीवन में उसे इफ्फन की दादी से अत्यधिक प्रेम मिलता है । तभी तो उसको मृत्यु हो जाने के बदले अपनी दादो का मरना ही उचित समझता है ।"[1]

उसी अवसर पर इफ्फन के पिता का स्थानान्तरण हो जाता है । इफ्फन अपने परिवारवालों के साथ दूसरे जगह चले जाते हैं । इफ्फन को चले जाने के बाद टोपी अपने को बिलकुल अकेला महसूस करने लगता है । वह किसी न किसी प्रकार अपने परिवारवालों से अलग हो जाना चाहता है । इफ्फन के साथ के मित्रता के कारण मुसलमान संस्कारों का उस पर गहरा प्रभाव पडता है । इसलिए उच्चशिक्षा पाने के लिए वह अलीगढ मुस्लिम यूनिवेर्सिटी में पहुँचता है । वहाँ इफ्फन के साथ उसको मुलाकात हो जातो है । दोनों को मित्रता और अधिक दृढ हो जाता है । ये दोनों एक दूसरे के साथ इतना अधिक प्यार करते हैं कि अलग होना नहीं चाहते । इसलिए टोपी इफ्फन के घर में रहने लगा । दोनों के बीच को इस घनिष्ठ मित्रता के कारण उन्हें ज़िन्दगी में बहुत अधिक समस्याओं का सामना करना पडा । टोपी के साथ की आत्मीय मित्रता के कारण इफ्फन को अपने कालेज में रीडरशिप्प नहीं मिलती । और इफ्फन के साथ की मित्रता के कारण टोपी को कोई नौकरी भी नहीं मिलती । उसी

---

1. टोपी शुक्ला -राही मासूम रज़ा - पृ. 60

प्रकार टोपी और इफ्फन के आत्मीय संबंध को लोग गलत दृष्टि से देखते हैं और उनका बदनाम करते हैं । इन संघर्षमय जीवन से तंग आकर इफ्फन अपने परिवारवालों के साथ कश्मीर चला जाता है । यह बात टोपी के लिए बहुत अधिक वेदनाजनक थी ।

इतना ही नहीं अलीगढ़ यूनिवेर्सिटी में अध्ययन करते समय सलीमा नामक एक मुस्लिम युवती से वह प्रेम करने लगता है। वह यह जानता है कि सलीमा से उसका विवाह नहीं हो जायेगा । यह बात भी उसके मानसिक संघर्ष के लिए एक और कारण है । वह सलमा को खत लिखता है - इसमें वह कहता है -"क्या हम शादी नहीं कर सकते ? तुम कह सकती हो कि तुम मुसलमान हो और मैं हिन्दु । बच्चे बहुत चितकबरे होंगे । परन्तु क्या यह नहीं हो सकता कि हम बच्चों की बात बच्चों पर ही छोड दें ।"[1]

इस प्रकार टोपी शुक्ला की ज़िन्दगी आदि से अंत तक संघर्षमय थी । बचपन में घरवालों का उपेक्षाभाव उसे बहुत अधिक सताता है । बडे हो जाने पर इफ्फन के साथ मित्रता निभाने के कारण उन्हें बहुत अधिक यातनाएँ सहनी पडीं । बेरोज़गारी भी उनके जीवन की और एक समस्या बन गयी । मुस्लिम यूनिवेर्सिटी में अध्ययन करने के कारण उसको हिन्दु संस्थाओं में कोई नौकरी नहीं मिलती । हिन्दु होने के कारण मुसलमान संस्थाओं में भी कोई नौकरी नहीं मिलती । इन सभी अफ्वाहों के साथ ही साथ उसके आत्ममित्र भी उसे छोड देता है ।

---

1. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ.121

उसका प्रेम भी असफल हो जाता है । इस प्रकार जीवन के हर मोड पर उसे असफलता का ही सामना करना पडा । इफ्फन के चले जाने के बाद वह इफ्फन के घर में अकेला हो जाता है । अकेलेपन और एकांतता तो आत्महत्या के लिए सबसे अधिक प्रेरक शक्ति है । इफ्फन के घर की एकांतत से टोपी घबराने लगता है । वह अपने जोवन के बारे में सोचता है उसे ऐसा महसूस होने लगा कि उसका जीवन आदि से अंत तक निराशापूर्ण था । इस निराशापूर्ण जीवन से मुक्ति पाने का एकमात्र आधार आत्महत्य हो है । मानसिक संघर्ष के अतिरेक को इस अवस्था में वह आत्महत्या कर ही बैठता है । उसकी मृत्यु के दूसरे दिन उसे एक स्थान से नौकरी का पत्र, सकीना के पास से राखी के साथ एक पत्र भी पहुँचता है ।

इस उपन्यास के अंत द्वारा लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि आत्महत्या तो किसी भी समस्या का समाधान नहीं है । आत्महत्या तो हमारे परिवर्तित मध्यवर्गीय समाज की सबसे बडी समस्या बन गयी है । आज का व्यक्ति समस्याओं के साथ जूझने में असमर्थ है । अत: आज के ज़िन्दगी इतना विकराल और जटिल है कि व्यक्ति किसी भी प्रकार की समस्याओं को सुलझा नहीं पाता ।

गरीबी

गरीबी किसी एक समुदाय को समस्या मात्र नहीं हैं । वह गाँव की ही नहीं शहर की भी समस्या है । गरीबी तो आधुनिक परिवर्तित नगरीय परिवेश का और एक चेहरा है । गरीबी लोगों को आत्महत्या के लिए भी प्रेरित करती हैं । आज के ज़माने में गरीबी के

कारण आत्महत्या ही नहीं होती बल्कि माता-पिता अपनी संतान की हत्या कभी कभी कर डालते हैं । कभी कभी उसे बेचते भी हैं । डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में नगरीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न गरीबी का विकराल रूप हमें दिखाया हैं । "दिल एक सादा कागज़" में उन्होंने एक ऐसी नारी का चित्र प्रस्तुत किया है जो भूख के कारण तड़पनेवाले बच्चों को दयनीय अवस्था देखकर उसे मार डालती हैं । मुनीश नजवन्ती को अपने द्वारा बनाये गये चित्रों को दिखाकर कहता है -"इस औरत को देखिए । यह एक माँ है । तीन चार बरस पहले इस पर अपने तीन छोटे छोटे बच्चों के मलक का केस चला था । इसने भारी अदालत में कहा था -"हाँ, मैं ने अपने बच्चों को मारा डाला क्योंकि मुझसे उनका भूखों मरना नहीं देखा जा रहा था ।"[1]

"दिल एक सादा कागज़" में रज़ा ने मध्यवर्गीय साहित्यकारों में पायी जानेवाली आर्थिक विषमता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है । लेखक स्वयं एक साहित्यकार है गरीबी और अभावग्रस्तता का जानकार भी है । वे यह जानते हैं कि जो साहित्यकार अपनी साहित्य रचना द्वारा जीवन यापन करना चाहते हैं उसकी अत्यंत दयनीय दशा ही हो जाती है । वह कभी भी उच्चकोटि की साहित्यरचना नहीं कर सकता । क्योंकि वह अपनी योग्यता को कुत्सित कर आर्थिक समस्याओं के साथ ही जूझते रहते हैं । "दिल एक सादा कागज़" का रफ्फन साहित्य-रचना द्वारा जीवनयापन करना चाहता है । घर गृहस्थी संभालने के लिए उसे ज़बरदस्ती से निचले स्तर के साहित्यकार बनना पड़ा । जन्नत रफ्फन की पत्नी है । दोनों

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 80

का प्रेम विवाह ही था । जन्नत एक मध्यवर्गीय लडकी थी । वह रफ़्फन के साहित्यकार व्यक्तित्व से प्रेम करती थी । लेकिन बाद में उसने समझ लिया कि उत्तम साहित्य सृजन से जीवनयापन नहीं कर सकती । इसलिए ही साहित्य-रचना को आर्थिक अभाव के निवारण का मार्ग समझने के लिए मज़बूर हो गयी । उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन लेखक इस प्रकार करते हैं - "घर का किराया देना एक अच्छी नज़्म लिखने से ज़्यादा बडा काम है । बिजली का बिल भरना एक अच्छी कहानी लिखने से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है । पाठकों के तारीफ भरे पत्र गर्म चाय की एक प्याली नहीं बन सकते । एक रुपये का नोट नहीं बन सकते .... कुछ नहीं बन सकते ।"[1]

इस प्रकार निचले स्तर में साहित्यरचना करने पर भी रफ़्फन ज़िन्दगी का ठीक ढंग से देखभाल करने में असमर्थ हो पाता है । इसलिए उसने फिल्म की ओर मुड गया । फिल्म तो उस समय एक ऐसा माध्यम था जिससे आसानी से रुपया कमाया जा सकता था । रफ़्फन तो फिल्मी कहानियाँ लिखना शुरू किया । इस प्रकार के चित्रण द्वारा रज़ा ने भारतीय मध्यवर्ग में फैली हुई भयंकर दरिद्रता का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है । उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि गरीबी गाँवों के अनपढ अशिक्षित लोगों के लिए ही बाधक नहीं बल्कि शिक्षित मध्यवर्गीय व्यक्ति भी इसके चंगुल में फँस गये हैं ।

"कटरा बी अर्जु" में लेखक ने दरिद्रता के कारण शिक्षा प्राप्त करने में असफल हो जानेवाली शहनाज का चित्रण किया है ।

शहनाज को पढ़ने लिखने में बड़ा शौक था । गरीबी और अभावग्रस्तता के कारण उसकी पढाई बीच में ही रूक गयी । फिर भी कहीं से कहीं किसी कागज़ के टुकडे मिलने पर वह बड़ी तत्परता के साथ उसको पढ़ती थी । "शहनाज के बारे में रज़ा यही कहते है -"शहनाज में जो डबल खराबी थी, वह यह थी कि उसे पढ़ने का शौक था । और कुछ न मिलता तो जोश्वन के यहाँ से आनेवाली पुडियों के कागज़ संभालती फिरती जो आमतौर से पुराने अखबार के टुकडे होते । कभी कभी स्कूल की कापियों का कागज़ निकालना । रूलदार कागज़ पर लिखे हुए खत भी निकल आते कभी कभार वह उन्हों को पढ़ती रहती और सुक्कन के कोसनों की तरफ से उन क्षणों में उसके कान बन्द हो जाते ।"[1] शहनाज के घर की इतनी दयनीय दशा है के उसकी माँ भूख के कारण किसी न किसी प्रकार ज़िन्दगी से मुक्त होना चाहती है । मध्यवर्गीय समाज में ऐसे अनेक परिवार है जहाँ माँ-बाप अपने बच्चों की भूख को देखकर ईश्वर से उसके मर जाने की प्रार्थना करते हैं । शहनाज की माता सकीना तो हर दिन ईश्वर से यही प्रार्थना करती रहती है । लेखक कहते हैं -"सकीना बी उर्फ सुक्कन उठते-बैठते अल्लाह मियाँ को अपनी तरह से समझाती रहती थी कि शहनाज मर गयी होती तो अच्छा होता । अब भी मर जाये तो बुरा नहीं ।"[2]

"सीन-75" उपन्यास में रज़ा ने मध्यवर्गीय क्लर्कों में पायी जानेवाली गरीबी की समस्या का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है । मध्यवर्गीय क्लर्कों की यही दयनीय दशा है कि वे अपने तुच्छ मासिक वेतन से अपने हैसियत को बनाये रखने में असमर्थ हो पाते हैं । उनका वेतन

---

1. कटरा बी अर्ज़ू - राही मासूम रज़ा - पृ. 22

इतना कम है कि जिससे ज़िन्दगी की प्राथमिक आवश्यकतायें भी पूरी नहीं हो पाती । अली मुल्लाह एक सरकारी कार्यालय में काम करनेवाला व्यक्ति है जिनके साथियों के जीवन की दयनीय दशा लेखक इस प्रकार व्यक्त करते हैं -"अलीमुल्लाह ही कामवाला था । बाकी तीनों दोस्तों को महीने के आखिर में फाइनेंस भी किया करता था । तीनों दोस्त के महीने का आखिर अलग-अलग शुरू हुआ करता था हरीश को महीने की 15 को तनख्वाह मिलती थी । तो उसके महीने का आखिर पहली दूसरी से लगता था । कभी कभी उसके महीने का आखिर कई महीनों तक फैल जाता था क्योंकि छोटी और मंझली फिल्म कंपनियों में तनख्वाह का कोई भरोसा नहीं है । वी.डी.के महीने की तनख्वाह लगभग साल भर चलती थी । अली अमजद के महीने का आखिर आमतौर से महीने के आखिर में ही होता था ।"[1]

भिक्षा वृत्ति

भिक्षा वृत्ति भी एक ऐसी समस्या है जिसे आधुनिक परिवर्तित नगरीय परिवेश में हम पा सकते है । भिखारियों में तो धोखेबाज़ भी हैं जो भिक्षाटन द्वारा जनता का धोखा देता है । कुछ लोग ऐसे हैं जो भिखारियों का संगठन बनाकर उसके द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं । वी.डी.ऐसा एक व्यक्ति है । वह अपनी इस योजना का वर्णन अपने मित्र अली अमजद से इस प्रकार करता है -"मैं भिखमंगों की एक वर्कशाप चला रहा हूँ । भीख माँगने की तरफ अभी तक पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान नहीं गया है । अब तक ये रैकेट गुण्डों के हाथ में था और

तुम जानो, गुण्डों में कोई ऐस्थेटिक सेंस तो होता नहीं । किसी की आँखें फोड़कर उसे अन्धा फकीर बना दिया । किसी की टाँगें तोड़ दीं..... वगैरह वगैरह । एक दिन लेटे लेटे बेवे वेव आ गयी कि भीख माँगने के काम को शोफेस्टिफिर तरीके से आर्गनाईज़ किया जाए तो बहुत माल मिलेगा ।

"कटरा बी अर्जु" में रज़ा ने इतवारी बाबा के द्वारा भिक्षावृत्ति की समस्या का चित्रण किया है । इतवारी बाबा के द्वारा लेखक यह बताना चाहता है कि आज के भिक्षुक वास्तव में बड़े धनवान होते हैं । इतवारी बाबा ने तो भिक्षाटन को एक नौकरी के रूप में स्वीकार किया है । वह हफ्ते के छः दिन भीख माँगते हैं सातवें दिन आराम किया करते थे । एक दिन इतवारी बाबा को भोलानाथ की दूकान पर देखकर देशराज ने पूछा, "ई का भाई । इतवारो बाबा आज पोर को कैसे दिखा दे रहे ?"

हम आज से का कहते हैं, चौदह दिन को उवाली छुट्टी को, जो सरकारी लोग लेते हैं, ओहो छुट्टी पर हैं, इतवारो बाबा ने कहा । उन्नति के वास्ते कोई का किहिस है आज तक ? और भैया कोई बात भी नहीं कि हमारा और टाटा बिरला और लाल महम्म बीडो वाले में कुछ कम है वजन में ।"[2]

इस प्रकार इतवारो बाबा के द्वारा लेखक ने यह व्यक्त किया है कि सभी भिक्षुक वास्तव में दरिद्र नहीं होते । इस बात को

---

1. सीन-75 - राही मासूम रज़ा - पृ. 104

स्पष्ट करते हुए वह देशराज से कहते हैं -"आज हम उ जो रानी मण्डलीवाले अकीक अहम्मद ऐडाकेट है न उसके पास जाके अपना वसीयतनामा लिखवाया ..... बैंक में बारह हज़ार तीन सौ सत्ताईस रूपया चौबीस पैयसा नकद है ।"[1]

इस प्रकार के वर्णन द्वारा लेखक ने भिक्षावृत्ति के नाम पर चलने वाले पाखण्डों एवं व्यवसायों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

महंगाई

नगरीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न और एक समस्या है महंगाई । यह महंगाई भी मध्यवर्गीय परिवारों की अभावग्रस्तता का और एक कारण है । महंगाई के बढ़ जाने के कारण मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति बहुत दुरितपूर्ण बन गयी हैं । रूपये का तो कोई मूल्य नहीं रह गया है । पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप हमारा देश उत्पादन के क्षेत्र में बहुत अधिक आगे है जिससे जनता का जीवनस्तर कुछ ऊँचा बन गया । अतः उत्पादन सामग्री के उपभोक्ता की संख्या अधिक बढ़ गयी जो महंगाई का एक कारण है । रज़ा ने जिस प्रकार मध्यवर्गीय समस्याओं का चित्रण अपने उपन्यास में किया है उसमें महंगाई की समस्या को अधिक ज़ोर दिया गया है । "कटरा बी अर्जु" में इतवारी बाबू भीख माँगकर जीवन बिताने वाला व्यक्ति है । आज महंगाई के कारण मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी है कि वहाँ से भीख माँगने के लिए वे

---

1. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 144

लज्जा का अनुभव करते हैं । वे बिल्लो से कहते है -"अरे बेटा हमारे लड़कपन में पाँच रूपये में चार परानी का पूरा घर चला जात रहा इज्ज़त से और मज़े में । आज जेब जितनी जियादा होती जा रही, पैयसा कम होता जा रहा । पहले लोग हमारी तरह आके भीख देते रहे । अब हमें देखके सड़क की पटरी बदल ले हैं । बहुत से लोगन से तो भीख मांगना छोड़ दिया है, केह मारे कि हम्में उनके घर का हाल मालुम है ।"[1]

मध्यवर्गीय व्यक्तियों में विशेषकर माहिम वेतन पानेवालों की दशा अत्यंत दयनीय है, जिन्हें वेतन महीने की प्रथम तिथि में मिलती है वह वेतन पिछले महीने के उधारों को चुकाने में समाप्त हो जाता है । जीवन यापन के लिए उन्हें फिर उधार लेना पड़ता है । उनका जीवन उधारों से ही गुज़रता रहता है । इसलिए ही मध्यवर्गीय परिवारों का सामाजिक जीवन बहुत अधिक बिगड़ गया है । किसी शादी-ब्याह, उत्सव-पर्व आदि के अवसर पर खर्च करने के लिए उन्हें फिर उधार लेना पड़ेगा । देशराज के विवाह के अवसर पर आशाराम लौण्डा नाचते हुए निराशापूर्ण आवाज़ में गा रहा है -

"रसगुल्ला घुमाय के मार दियो रे ।
पहिला रसगुल्ला मैं ने ससुरजी को मारा ।
पहिला रसगुल्ला मैं ने ससुरजी को मारा ।
उनको बूढा समझ के छोड़ दियो रे ।
रसगुल्ला घुमाय के मार दियो रे ।

आशाराम उदास हो गया । घुमा के मारने के लिए रसगुल्ला है कहाँ महाराज ? रसगुल्ला है कहाँ ? शक्कर सात रूपये किलो ।

---

1. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 32

माश को दाल चार रुपये किलो । दूध तीन रुपये किलो । ससुरजी को मारने के लिए रसगुल्लों का बन्दोबस्त हो नहीं सकता तो उसका जो उचाट हो गया ।"[1]

वेश्या बनने की मज़बूरी

वेश्या समस्या तो आधुनिक परिवर्तित शहरीय समाज का और एक चेहरा प्रस्तुत करती है । आधुनिक नारी परिस्थितिवश वेश्यावृत्ति अपनाती है । हमारा दूषित समाज ही वेश्या समस्या के लिए उत्तरदायी है । अधिक रूप से नारी को गरीबी और भूख के कारण वेश्यावृत्ति को मज़बूरन अपनाना पडता है । परिवर्तित नगरीय परिवेश में वेश्याओं की संख्या अधिक बढती जा रही है । डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में वेश्या समस्या का भली भाँति चित्रण किया है । "हिम्मत जौनपुरी" में उन्होंने बंबई महानगर के इस दूषित वातावरण का चित्रण किया है । इस उपन्यास की जमुना सडक पर जीवन बितानेवाली वेश्या है । इसी जमुना के साथ हिम्मत का परिचय होता है जमुना की जीवन-कथा सुनकर उससे हिम्मत प्रेम करने लगता है । जमुना का जन्म फुटपाथ पर ही हुआ और वह अब भी फुटपाथ पर जी रही है - उसको रहने के लिए घर नहीं है कोई सगे संबंधी नहीं है वह तो यह नहीं जानती कि घर माने क्या है । हिम्मत तो गाँजीपुर के अपने घर के बारे में कहता है तो वह पूछती है -"ई घर का होता है राजा ? हिम्मत उत्तर देता है कि "इतो तुहे बनायेगा जो घर आंगन देखिस होय ? तब बिल्लो

---

1. कटरा बी अर्ज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 89

पूछती है कि आंगन का होता है ? हिम्मत कहता है "आंगन ओको कहते है बिल्लो की चारपाई बिछाई कर रात को लेट जाओ तो दूर-दूर तक मार आसाने आसमान दिखाई दें । यह सुनकर जमुना हँसते हुए उत्तर देती है कि "अरे तो आंगन-आंगन का बोलता है फुटपाथ बोल फुटपाथ ।"[1]

इन असहाय व्यक्तियों के लिए न कोई धर्म है न जाति है न भेदभाव भी । ईश्वर पर उनका कोई भरोसा नहीं । उनके लिए सबसे प्रमुख है भूख । भूख को मिटाने के लिए ये अपने शरीर बेचती हैं । जमुना तो मन्दिर के फाटक पर जाकर ईश्वर से यही प्रार्थना करती है कि अधिक से अधिक ग्राहक मिल जाय । जब वह प्रार्थना के लिए मन्दिर पहुँचती है तब एक व्यक्ति मन्दिर के बाहर निकला उसने अपनी आँखों से जमुना से कुछ इशारा किया तब तो वह पीछे मुडकर सीढ़ियाँ उतरने लगी ।

वेश्यावृत्ति तो जमुना के लिए एक नौकरी है । बचपन से ही यह काम करती रहती है । हिम्मत उसे यह व्यवसाय छोडने को कहता है लेकिन वह छोड नहीं पाती । क्योंकि वेश्यावृत्ति को वह हीन नहीं मानती । दूसरे व्यक्ति किस प्रकार काम करके जीवन यापन करता है उसी प्रकार वह भी अपने शरीर को बेचकर जीविकोपार्जन करती है । वह हिम्मत से स्पष्ट शब्दों में कहती है -"देख हिम्मत, तु धंधे में टांग मत अडाया कर । तु गफ्फार चाचा से काहे को नहीं कहता कि ऊ चाय बनाना छोड दें । बिल्लो के पास फूल है । गफ्फार चाचा के पास चाय है अपन के पास बदल । जे के पास जो होवेगा ऊ वही चीज़ बेचेगा ।"[2]

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 116
2. वही - पृ. 126

हिम्मत जौनपुरी के विवाह के प्रस्ताव को जमुना ठुकरा देती है । वह हिम्मत जैसे अच्छे व्यक्ति को बदनाम करना नहीं चाहती । वह उसी प्रकार अपनी ज़िन्दगी चलाना चाहती है जिस प्रकार पहले ही था । वह अपने जीवन को परिवर्तित करना नहीं चाहती । निराशापूर्ण शब्दों में वह इस प्रकार बताती है -"जमुना अब नई नहीं हो सकती रे । वह उदास हो गयी । "अपन टैक्सी है हिम्मत । जबले मीटर चल रहा, चल रहा । फिर ठप ।"[1]

जमुना का निराशावादी स्वर यहाँ मुखरित है । वह यही समझती है कि वह तो दुराचारिणी हो गयी है । इस कुमार्ग से ईश्वर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता । और वह इस कुमार्ग से मुक्त होना भी नहीं चाहती । किसी न किसी प्रकार इस ज़िन्दगी को जोकर समाप्त करना चाहती है ।

"टोपी शुक्ला" में रज़ा ने मनूबाई नामक वेश्या का चित्रण किया है । यह मनूबाई तो "हिम्मत जौनपुरी" की जमुना की तरह नहीं । यह ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखती है । लेखक ने मनूबाई का वर्णन इस प्रकार किया है - वैसे तो शहर की सौ-सवा-सौ रंडियों की तरह यह भी एक रंडी थी, परन्तु मुन्नीबाई ने अपने पेशे में भी धर्म का दामन नहीं छोड़ा था । उसे मालुम था कि एक न एक दिन तो भगवान को मुँह दिखलाना ही पड़ेगा । इसलिए उसने मकान की एक कोठरी में एक शिवालय बना रखा था । रोज़ तड़के नहा-धोकर वह नटराज भोले शंकर

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 126

भूतनाथ की पूजा कर लिया करती थी । और शाम को जब वह बलोस हथियार सजाकर अपनी दूकान खोलती तो इसका ख्याल रखती कि..... गाना तो जो चाहे वह सुन ले परन्तु कोई शूद्र या म्लेच्छ रहने न पाये ।"[1]

मुनीबाई एक तवायफ थी । इसलिए बहुत से लोग उसके पास गाना सुनने के लिए आते थे वे तवायफ से गान के साथ अन्यवस्तुओं की आशा रखकर जाते हैं । इन उपन्यासों द्वारा रज़ा जी यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि समाज ही वेश्यावृत्ति के लिए उत्तरदायी है । जब तक समाज से उन्हें प्रोत्साहन मिलता रहेगा तब तक लोग एक पीढी के बाद दूसरी पीढी इस व्यवसाय में लगे रहेंगे ।

गरीबी के कारण पारिवारिक जीवन में विषमता और व्यक्ति स्वातंत्र्य की माँग

व्यक्ति स्वातंत्र्य और अस्मिता की पहचान नगर चेतना की एक विशेषता कही जा सकती है । आज के मध्यवर्गीय व्यक्तियों में यह भावना दिखाई देती है । इसी व्यक्ति स्वातंत्र्य के कारण वह मनचाही पत्नी प्राप्त करता है या पति प्राप्त करती है । प्रेमविवाह को व्यक्ति स्वातंत्र्य के कारण आज का व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व चाहनेवाला है । वे अपने इच्छानुसार अपना जीवनसाथी चुनता है । बिना सोचे समझे ही व्यक्ति यह कार्य करता है ।

इसलिए अधिकांश प्रेम विवाहों का असफल परिणाम ही हम देख पाते हैं । स्त्री पुरूषों के नासमझ के कारण उत्पन्न होनेवाली इन्हीं समस्याओं का चित्रण रज़ा के उपन्यासों में देखा जा सकता है । "दिल एक सादा कागज़" इसका स्पष्ट उदाहरण है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं रफ्फन और जन्नत । दोनों पति पत्नी हैं । दोनों का प्रेम विवाह था । उनके विवाहेतर जीवन की कुपरिणामों को दिखाकर लेखक प्रेम विवाह की असफलता को पुष्टि करते हैं । जन्नत तो इसी आशा से रफ्फन को प्यार करती थी कि वह भविष्य में एक उच्चकोटि का साहित्यकार बन जायेगा लेकिन विवाह के बाद वह यह समझ लेती है कि उसके सारे सपने टूट गये हैं । रोमांस की भावना कुछ ही दिनों में ही उतर गयी तो जन्नत अपनी विवाहोत्तर ज़िन्दगी के बारे में बहुत अधिक सपना बुनती रहती थी लेकि उसको ज़िन्दगी में उसका विपरीत फल ही मिला था । उसको पता चला कि उसका विवाह साहित्यकार रफ्फन के साथ नहीं हुई बल्कि हिस्ट्री टीचर रफ्फन के साथ हुई है । "लेखक से तो उसने प्यार किया था, विवा तै किया था उसने गवर्मेंट हायर सैकेंडरी स्कूल के हिस्टरी टीचर से, जो हर महीने तनख्वाह पाता था ।"[1] रफ्फन तो जन्नत को निराशा जानत था । जन्नत तो एक मध्यवर्गीय परिवार को लडकी थी । जीवन की विषमताओं और अभावग्रस्तता को वह जानती नहीं थी । विवाहेतर अभावग्रस्त जीवन उसे बहुत अधिक सताती थी । जन्नत की यह भावना देखकर रफ्फन ने समझ लिया कि प्यार कोई टिकाऊ चीज़ नहीं है । यह तो बुझनेवाले दीपक के समान है । संपन्नता और समृद्धि में ही प्यार को हम बनाते रख सकता है । प्यार तो बुझनेवाले दीपक के समान है तेल समा हो जाने पर वह बुझ जाता है । दोनों के यह मनोविकार दोनों के बीच

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 76

में झगडा उत्पन्न करता है । जन्नत तो स्पष्ट रूप से अपने पति से कहती है -"मैं ताजमहल की फरमाईश तो करती नहीं, पर एक साफ-सुथरा घर तो मांग ही सकती हूँ ।"[1] अपने अपने व्यक्ति स्वातंत्र्य के संबंध में वे दोनों सोचने लगते हैं ।

स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंध

यौन जिजीविषा तो आधुनिक परिवर्तित नगरीय समाज का और एक विकृत चेहरा है । आज की निम्न मध्यवर्गीय तथा उच्चवर्गीय युवा पीढी यौनाचार पर ज़ोर देती है । बिना किसी हिचहिचाहट से वह एक से अधिक व्यक्तियों के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करती हैं । अपनी अन्य प्राथमिक आवश्यकताओं के समान इसको भी वह एक आवश्यकता समझती है । डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुषों के बीच के अनैतिक संबंध का वर्णन किया है । "दिल एक सादा कागज़" इसका स्पष्ट उदाहरण है । इस उपन्यास में रज़ा ने रफ्फन के चरित्र चित्रण द्वारा इस बात का विश्लेषण किया है । विवाह के बाद ही जन्नत यह जान लेती है कि अनेक नारियों के साथ रफ्फन के संपर्क थे और अब भी यह संपर्क ज़ारी है । रफ्फन के एक मित्र माला से ही जन्नत यह जान लेती है । रफ्फन के बारे में जन्नत की अनभिज्ञता पर आश्चर्य प्रकट करती हुई माला कहती है -"लगता है कि आप इनकी जियाग्राफी पर मर मिटी है और हिस्ट्री की खबर ही नहीं है ।"[2] यह जानकर जन्नत को बहुत आश्चर्य होता है कि शादी के बाद इतने दिन

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 103

बीत जाने पर भी वह रफ्फन को ठीक ढंग से पहचानी नहीं । जन्नत की दशा का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं "एकदम से जन्नत को ऐसा लगा कि रफ्फन को वह जानती ही नहीं । जो आता है वह परत उतार देता है और अन्दर से एक अजनबी निकल आता है । एक ऐसा आदमी जिसका अपना कोई नाम नहीं है । कभी किसी का आशिक कहा जाता है, कभी किसी का किराये पर, हां जैसे किराये पर चलनेवाला एक घर कि जाने कितने लोग और कैसे कैसे लोग, रह चुके हैं इस घर में । तो क्या घर भी सेकेण्ड हैण्ड होता है । किसी को यह कहते तो सुना नहीं गया कि उसने एक सेकेण्ड हैण्ड घर खरीदा है ।"[1] रफ्फन आधुनिक मध्यवर्गीय व्यक्तियों का सच्चा प्रतीक है । वह एक से अधिक नारियों के साथ संबंध जोडना कोई गलत कार्य नहीं मानता । रफ्फन का चरित्र चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा - "कोई ऐसी बात नहीं थी कि रफ्फन उन लोगों में था जो पराई बहू बेटियों को अपनी बहूबेटियाँ मानकर जोते हैं । उनकी ज़िन्दगी में कई लडकियाँ आई । जीवन की आधुनिक वास्तविकता मध्यवर्गीय मूल्यों की बैसाखी नहीं लगती । बदन का कंवरापन सौन्दर्य की तौहीन है । सेक्स कोई गाली नहीं, पर उसमें एक फ्यूडल खराबी अब भी जो रही है । दोस्त की बहन अपनी बहन होती है और अपनी बहन होती है और अपनी बहन से इश्क नहीं लडाया जाता ।"[2]

लेखक ने अनैतिक संबंध का विरोध किया है । उनकी दृष्टि में हमारी समाज में इसी विषय पर संयम का होना अनिवार्य है । एक आदर्श परिवार के लिए पति और पत्नी दोनों का आदर्शशील होना

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 168

आवश्यक है । पति का कुमार्ग में चलने से घर का शान्तिपूर्ण सुखमय वातावरण विनष्ट हो जायेगा और घर का वातावरण नरकतुल्य । रफ़्फन आधुनिक मध्यवर्गीय युवापीढ़ी का प्रतिनिधि है, जो अन्य स्त्रियों के साथ के संपर्क अस्वाभाविक नहीं मानता । रज़ा के अनुसार घर का सुख एवं शांति पुरुषों पर निर्भर है । पति और पत्नी दोनों के व्यवहार ही घर को स्वर्ग और नरक बना देता है । "राही जन्नत की मनस्थिति का विश्लेषण करते हुए अपने विचार को स्पष्ट कर देते हैं कि घर का सुख पुरुष के संयम पर ही निर्भर है । स्वयम उच्छृंखल रहकर वह पत्नी से आदर्श व्यवहार नहीं कर सकता । जहाँ पत्नी से यह आशा की जाती है कि वह पति को भगवान तुल्य माने वहाँ पति से भी वही आशा की जाती है कि वह पत्नी को संतुष्ट एवं सुखी रखने में ही अपने जीवन की सफलता माने ।"[1]

आधुनिक नगरीय सभ्यता में नारी भी पुरुष के समान एक से अधिक पुरुषों के साथ अनैतिक संबंध जोडने में नहीं हिचकती । बीसवीं शती के आरंभ में नारी घर की चार दीवारों को तोडकर बाहर खुली हवा में आ पहुँची । नारी भी यौन जिजीविषा को भूख जैसा एक शारीरिक आवश्यकता समझने लगी । इसी भूख को मिटाने के लिए वह अपने मनचाहे किसी भी व्यक्ति के साथ अनैतिक संबंध जोडने लगी । नारी शिक्षा, नारी जागरण, समानता की मांग, अधिकारों के प्रति सतर्कता आदि नारी की इस खुली मनस्थिति का मूलकारण है ।

राही ने "दिल एक सादा कागज़" में नारी का वैसा ही रूप चित्रित किया है जो आधुनिक नगरीय परिवेश में हम देखते हैं ।

---

1. रज़ा के उपन्यासों में समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 192

इसके लिए बंबई के फिल्मी जगत को उन्होंने चुन लिया है । बंबई तो फिल्मी उद्योग का केन्द्र है । भारत के विभिन्न कोनों से युवक-युवतियाँ अभिनेता बनने की अभिलाषा लेकर बंबई पहुँचकर अपने जीवन को विनष्ट कर देते हैं । फिल्मी जगत में तो अभिनेताओं का विभिन्न अभिनेत्रियों के साथ तथा अभिनेत्रियों का विभिन्न अभिनेताओं के साथ अवैध संबंध स्थापित करना बुरा नहीं माना जाता था । इस उपन्यास में पुरुष के ज़रिए राही ने यही बात पेश की है । पुष्पा एक ऐसी औरत है जो अभिनेत्री बनना चाहती है । वह तो सभी अभिनेताओं पर आशिक है । एक बार पुष्पा के पड़ोस पर एक फिल्मी हीरो शाहजदा काश्मीरी आ पहुँचा । पुष्पा ने उसके साथ अनैतिक संबंध स्थापित कर लिया । विवाहित नारियों का अन्य पुरुष विशेषकर अभिनेताओं के साथ संपर्क स्थापित करना सर्वसाधारण बात हो गयी है । मिसेज़ चावला भी एक ऐसी नारी है जो पुष्पा के समान शाहज़दा काश्मीरी से अनैतिक संबंध जोड़ दिया । मिसेज चावला तो उस हीरो के प्रति इतना आकर्षित है कि वह अपने पति को देखभाल भी एकदम भूल गयी । "मिसेज चावला ने चावला का नोटीस लेना एक दम छोड़ दिया । वह दिन भर शाहज़दा के नशे में रहती और शाम को उसकी बाहों में ।"[1] चावला तो इस व्यवहार के प्रति एकदम चुप है । फिल्मी जगत में तो व्यक्ति अपने इच्छानुसार ही व्यवहार करता हैं वहाँ पति पत्नी का कोई संबंध नहीं है । पति के परस्त्री संपर्क को रोकने में व्यक्ति एकदम असमर्थ हैं । मिसेज चावला के व्यवहार का उस पर क्या गहरा असर डालता है इस बात का वर्णन लेखक ने इन शब्दों में किया है - "जाहिर है कि चावला साहब को भांपने में बहुत देर नहीं लगी, वह भांप गया और भांपते ही उन्हें "रफ्फर" और जन्नत से शिकायत हो गयी । चुनाये इण्डस्ट्री में यह बात फैली कि "बागी और जन्नत शाहज़दा

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 88

काश्मीरी के दलाल है.... लोगों ने तो जन्नत के तीन चार बच्चे भी गिरवा दिये जो उसे फिल्म मास्टरों से चन्दे में मिले थे ।"[1] सीन-75 उपन्यास में भी उन्होंने इस प्रकार की एक नारी का चित्रण किया है । फिल्मी कहानी लेखक फन्दाज़ी की पत्नी राधिका भी मिसेज चावला जैसी एक नारी है । वह किसी भी पुरुष के प्रशंसा में फंस जाती है । धर्मेन्द्र, नौकर रामनाथ आदि से वह बहुत आकर्षित है । उसकी बेटी भी नौकर रामनाथ से प्रेम करती है और उसके साथ अनैतिक संबंध भी स्थापित करती है । फन्दाजी तो ये दोनों बात जानता है लेकिन प्रतिशोध करने की ताकत उसमें नहीं । अपने बेडरूम पर रामनाथ को पाकर भी वह चुप हैं "इसी बीच फन्दाज़ी आ जाते हैं, परन्तु वे भी स्थिति को समझ जाते हैं तथा बिना पूछताछ किए रामनाथ को अपने कमरे से लौटने देते हैं ।"[2]

आधुनिक नागरिक परिवेश पारिवारिक संबंधों को तनावपूर्ण ज़िन्दगी का एक प्रमुख कारण स्त्री पुरुष की यह यौनजिजीविषा है । इसी अनैतिक संबंध में परिवार का टूटन ही होता है । परिवार के बच्चों पर ही इसका बुरा असर पड़ता है । बच्चे तो माँ-बाप के वश के बाहर हो जाते हैं । वे भी माँ-बाप के उसी कुचाल में चलने लगेंगे । माता पिता उन्हें ठीक रास्ते से चलाने में असमर्थ हो जायेंगे । यह समस्या तो हमारे उच्चवर्गीय परिवारों में विशेषकर फिल्मी जगत में हमेशा होती रहती हैं ।

"कटरा बी अर्जू" में राही ने जेल के बन्दियों में पायी

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ.88
2. वही - पृ.89

जानेवाली यौनजिजीविषा का वर्णन किया है । भाग्यवती एक ऐसी औरत है जिसने जेल के अन्य कैदी युवतियों को रखैल बना रखी हैं । भाग्यवती का वर्णन रज़ा ने इस प्रकार दिया है । "भाग्यवती पढ़ी-लिखी थी । दिल्ली युनिवेर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ाया करती थी ।... अपनी तन्हाई के अन्धे कुंए में कैद थी । उसे जिस लड़की से प्यार था उसकी शादी हो गयी और उसने उस लड़की को कत्ल कर दिया । अदालत में उसे पागल साबित न किया जा सका । उम्र कैद की सज़ा हुई । वह उम्र कैद की सज़ा काट रही थी जब कोई नयी कैदी आती तो वह दीवानी हो जाती और इसमें बला की ताकत आ जाती और यह उस नयी कैदी को दूसरी तमाम कैदी औरतों के सामने रेज करती । और फिर बिलकुल सीधी हो जाती ।"[1]

इस प्रकार के वर्णन द्वारा लेखक ने स्त्रियों में पायी जानेवाली इस भयानक समस्या का वर्णन किया है ।

आपात्कालीन परिस्थिति में लिखा गया रज़ा का उपन्यास है "कटरा बी अर्ज़ू", जिसमें उन्होंने आपात्काल के समय सरकार द्वारा जनता पर किये गये क्रूर व्यवहारों का वर्णन किया है । विशेषकर पुलिस अधिकारियों का जनता पर किये गये निर्मम और अमानवीय व्यवहारों का वास्तविक वर्णन उनके उपन्यासों में पायी जा सकती है । देशराज और उनकी पत्नी बिल्ली इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है । इस उपन्यास में सरकारी अधिकारियों के निर्मम व्यवहार के कारण देशराज के परिवार को होनेवाली दयनीय पराजय का चित्रण किया गया है ।

देशराज एक सीधा सादा व्यक्ति है । आशाराम उसका मित्र है । आशाराम पर यह आरोप लगाया गया था कि वह सरकार के विरुद्ध कार्य कर रहा है । यह जानकर भयभीत होकर आशाराम छिप जाता है । जाते समय वह देशराज से मिलता है । पुलिस को पता चला कि देशराज आशाराम का पता जानता है । यह बात जानने के लिए पुलिस देशराज को पकडता है । उसे गिरफ्तार कर बन्दी बना देता है । आशाराम के बारे में जानने के लिए देशराज पर किए गये अमानवीय व्यवहार का लेखक ने इस प्रकार वर्णन किये है -"जगदम्बा प्रसाद ने उसे घसीटकर दूसरी दीवार पर दे मारा । और फिर तीनों सिपाही बडी मेहनत से "पूछताछ" करने लगे । उसे उल्टा लटका दिया गया । उसके पाखाने के जगह में पिसी हुई लाल मिर्च भर दी गयी । उसे इलैक्ट्रिक के शॉक दिये जाने पर उसे भी जिद आ गयी थी कि वह अपने दोस्त का पता नहीं बतायेगा । वह न जाने कितनी बार बेहोश हुआ और उसे न जाने कितनी बार होश आया । उसने गिनना भी छोड दिया था । वह सिर्फ यह खेल खेल रहा था कि यह शर्त लगाता अपने आपसे कि ठोकर कहाँ पडेगी या डण्डा कहाँ पडेगा । या सिगरेट कहाँ बुझाई जायेगी । और अगर उसका अन्दाज़ा सही निकलता तो उसे एक अजीब सी खुशी होती । अब उसे यह सोचकर शर्म भी नहीं आती थी कि वह इतने लोगों के सामने नंगा है क्योंकि बदन तो था ही नहीं । बस एक अताह, नाकाबिले बरदास्त दर्द था और दहकती हुई आग-सी एक प्यास थी ।"[1]

इस प्रकार निरपराधियों पर किये जानेवाले निर्मम और अमानवीय व्यवहार द्वारा लेखक ने आपात्कालीन क्रूर परिस्थिति को हमारे सामने उपस्थित किया है ।

---

1. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 182

बंबई महानगर के बहुरंगी जीवन को चित्रित करनेवाले "सीन-75" उपन्यास में आधुनिक नगरीय परिवेश के मध्यवर्गीय व्यक्ति का वर्णन मिलता है जो अपने बारे में ही सोचता है । समाज से उसका कोई सरोकार नहीं है । वह किसी न किसी प्रकार अपनी ज़िन्दगी को बनाये रखने में प्रयत्नरत है । जीवन को बनाये रखने की इस दौड-धूप में वह अधिक से अधिक हृदयहीन बन जाता है । विशेषकर फिल्मी जगत में दिखाई पडनेवाले मनुष्य की हृदयहीनता का वास्तविक चित्रण सीन-75 में अधिक रूप से दिखाई पडता है । इस उपन्यास का अली-अमजद एक मध्यवर्गीय लेखक था जो फिल्मी उद्योग के लिए बंबई आ पहुँचता है । वह बंबई में अपने मित्रों के साथ एक फ्लैट में रहने लगा । इन्हीं मित्रों द्वारा बंबई महानगर का झगडा, मृत्यु आदि का वर्णन किया गया है । अपने मित्रों के इस झगडे के कारण वह बहुत निराश थे । एक साथी हरीशराय की फिल्म के लिए वह स्क्रिप्ट बना रहा था । एक दिन सीन नंबर 75 लिखने के बाद वह बहुत उदास सा दिखायी देने लगा । उसी दिन वह नींद की गोलियाँ खाकर मर गया । उसकी मृत्यु का फिल्मी जगत पर कोई प्रभाव नहीं पडा । अली अमजद के अभाव के बारे में अमीमुल्लाह ने जब हरीश राय से पूछा तब वह निस्संग होकर इस प्रकार कहा -"हाँ कल रात किसी वक्त वह मर गया । यह कहते-कहते वह एकदम से मुस्कुरा दिया क्योंकि एक फोटोग्राफर पास खडी हुई हेमा मालिनी के साथ उसकी तस्वीर ले रहा था ।"[1]

इस प्रकार फिल्मी जगत से संबंधित व्यक्तियों की हृदयहीनता का वर्णन सजीव चित्रण किया गया है ।

---

1. सीन-75 - राही मासूम रज़ा - पृ.13।

निष्कर्ष

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने औपन्यासिक सृजन को शुरुआत यद्यपि "आधा गाँव" नामक आँचलिक उपन्यास से की थी, और इसी विधा के सशक्त उपन्यासकार के रूप में पहचान बन ली थी । तो भी आँचलिकता में उनके अनुभव की अभिव्यक्ति सीमित नहीं रही । नगर जीवन की बहुआयामी छवियों को उभारने की कोशिश उन्होंने अपने औपन्यासिक रचनाओं में की है । इसलिए नगरबोध या नगर-चेतना की अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में मिलती है । नगर-महानगर के व्यस्त और त्वरित जीवन को राही के जिन उपन्यासों में समग्रता के साथ पेश किया गया है वे परिवेश के प्रति उनकी जागरूकता और संपृक्ति का अच्छा परिचय देते हैं । भीड़, मशीन, दफ्तर आदि अनेक कटघरों में बंटा हुआ जीवन खास तौर से मध्यवर्गीय शहरी जीवन जिन आर्थिक प्रश्नों और रोजमर्रा की समस्याओं से जूझ रहा है, उनमें बेरोज़गारी, श्रम का शोषण, गरीबी, महंगाई, बदली हुई नैतिक दृष्टि आदि को उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नगरीय चेतना की अभिव्यक्ति उन्होंने किस मार्मिकता और ईमानदारी से अपने उपन्यासों में की है । वह बहुत उल्लेखनीय ही है ।

अध्याय : पाँच

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना

प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन और ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर काल की सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है । ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति जिन उपन्यासों में हुई है उनमें किसी जनपद या गाँव विशेष के लोकजीवन के तत्वों का विशद चित्रण हुआ है । इन चित्रणों के ज़रिए उपन्यासकार वहाँ की जनता के रीति-रिवाज़, परंपरा, धार्मिक एवं नैतिक आचार-विचार, विश्वास-आस्था आदि के साथ लोक संस्कृति की पूरी तस्वीर पेश करते हैं । इन उपन्यासों में जनसामान्य या ग्राम विशेष की बोली का स्वरूप भी प्रदर्शित होता है । ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति करनेवाले ये उपन्यास नवीन जन-चेतना के प्रतीक हैं । जन चेतना कहाँ की ? गाँवों की या ग्रामांचलों की । वे जनपद, ग्राम या ग्रामांचल ब्रिटिश शासनकाल में आर्थिक सामाजि एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े थे उनको देश को स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद स्वतंत्रता और मानवाधिकार प्राप्त होते हैं । इन गाँवों व जनपदों में जन चेतना को नई ज़हर प्राप्त हुई । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासक ने ग्राम को जिस जन चेतना को अपनी औपन्यासिक रचनाओं में अभिव्यक्त करने की कोशिश है, उसे ग्रामीण चेतना कही जा सकती है । ग्रामीण चेतन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल" और "परती परिकथा", नागार्जुन के "बलचनमा", "बरुण के बेटे", "बाबा बटेश्वरनाथ", "रतिनाथ की चाची" एवं "नई पौध", रांगेय राघव का "कब तक पुकारूँ", रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर", "जल टूटता हुआ", "सूखता हुआ तालाब" एवं "आकाश की छत", शिवपूजन सहाय का "देहाती दुनिया", राही मासूम रज़ा का "आधा गाँव", हिमांशु

श्रीवास्तव का "लोहे के पंख", भैरव प्रसाद गुप्त के "सत्ती मैया का चौरा" एवं "गंगा मैया", शिवप्रसाद सिंह के "अलग अलग वैतरणी" आदि कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास हैं ।

राही मासूम रज़ा ने अपनी औपन्यासिक यात्रा का प्रारंभ "आधागाँव" शीर्षक आंचलिक उपन्यास के लेखन करके किया था । यह उपन्यास ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति से भरपूर हैं । उनके अन्य उपन्यासों में भी ग्रामीण चेतना का सशक्त चित्रांकन मिलता है । आगे की पंक्तियों में हिन्दी उपन्यासों और खास तौर से राही जी के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण चेतना पर प्रकाश डालने का विचार है ।

ग्रामीण चेतना और हिन्दी उपन्यास

ग्रामीण जीवन के संस्पर्श से युक्त उपन्यासों को मोटे तौर पर ग्रामीण चेतना के उपन्यास कहे जा सकते हैं । "चेतना" शब्द का सामान्य अर्थ है "ज्ञान" या "चैतन्य" से किया जाता है ।"[1] "चेतना स्वयं को और अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।"[2] चेतना मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे व्यक्तिगत विषय में तथा अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है । इसी ज्ञान को विचार शक्ति (बुद्धि) कहा जाता है ।[3] चेतना का प्रवाह जीवन का द्योतक है । चेतना का अपने आप में एक स्वतंत्र अस्तित्व है । यह एक सहज अनुभव है ।

---

1. हिन्दी बृहत् कोश - मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव एवं राजवल्लभ सहाय - पृ. 384
2. हिन्दी विश्वकोश (खण्ड-4) - डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी - पृ. 282
3. वही - पृ. 282

यह अनुभव या बोध युगानुकूल परिस्थितियों के संबंध में निर्णयिक भूमिका का निर्वहन करके मनुष्य का उचित मार्गदर्शन करता है । इसी प्रकार ग्राम चेतना वह चेतना है जो गाँव के वातावरण को समझने एवं मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करती है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में ग्रामीण चेतना का स्वर स्वातंत्र्योत्तर काल में ही अधिक ज़ोर से सुनाई पडता है । यद्यपि पूर्व-प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का स्वर है तो भी स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में ग्रामीण चेतना का जो स्वर मुखरित हुआ वैसा स्वर पूर्ववर्ती उपन्यासों में नहीं मिलता । प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों को ग्रामीण चेतना से युक्त उपन्यास कह सकते हैं । उनके "प्रेमाश्रम", "रंगभूमि", "गोदान", "कर्मभूमि" आदि उपन्यासों में बनारस और उसके समीपवर्ती ग्रामीण अंचल के सजीव चित्र मिलते हैं । लेकिन प्रेमचन्द का उद्देश्य केवल ग्रामीणता का चित्रण नहीं बल्कि संपूर्ण देश में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का चित्रण ही है । इसके लिए उन्होंने ग्रामांचल को आधार-भूमि के रूप में स्वीकार ही किया है । अतः प्रेमचन्द के उपन्यासों को पूर्ण रूप से ग्रामीण चेतना से युक्त उपन्यास नहीं कह सकते । देश भर में व्याप्त समग्र समस्याओं का एक भण्डार है प्रेमचन्द के उपन्यास । "प्रेमचन्द की दृष्टि आंचलिक या सीमित नहीं थी । व्यापक दृष्टि से ग्रामीण जनता का, किसानों एवं मज़दूरों का यथार्थ चित्रण उन्होंने किया है ।"[1]

प्रेमचन्द युग के बाद प्रेमचन्दोत्तर युग में विशेषकर

स्वातंत्र्योत्तर युग में भारत में सर्वत्र परिवर्तन ही होता रहा । गाँव या ग्रामीण जनता इससे अछूते नहीं थी । आज़ादी के बाद भारत के गाँवों में एक बहुत बडा परिवर्तन ज़मीन्दारी उन्मूलन के रूप में हुआ जिससे ग्रामीण जीवन कृषि, अर्थ व्यवस्था आदि बहुत अधिक बदल गया । भारत के गाँवों का शासक यह ज़मीन्दार वर्ग ही था । ये लोग भारत में अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था को कायम रखने के पक्षधर थे । अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था में वे बिना किसी डर से किसानों का शोषण कर सकते थे । स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था भी पूँजीवादी ज़मीन्दारी व्यवस्था के पक्षधर थी । अत: हमारी शासन व्यवस्था का निर्माण ग्रामीण जीवन के उद्धार के लिए नहीं, बल्कि उच्चवर्गीय ज़मीन्दारों के उद्धार के लिए ही हुआ । लेकिन स्वतंत्र भारत में सामन्ती व्यवस्था की स्थापना ज़मीन्दारी उन्मूलन के लिए एक कारण है । "भारत की सामन्ती व्यवस्थ का यह स्वरूप राष्ट्रीय पूँजीपति के हितों के विरुद्ध था तथा इस वर्ग के स्वतंत्र विकास के मार्ग में यह व्यवस्था बाधक थी ।"[1]

इस प्रकार सामन्ती व्यवस्था और पूँजीवादी व्यवस्थ के बीच संघर्ष शुरू हुआ । जनता का शोषण करने तथा शोषण से मुक्त करने की प्रक्रिया के इस संघर्ष के बीच भारत के गाँव काफी बदल गये । पंचवर्षी योजनाएँ, औद्योगिक क्रांति भी ग्रामीण चेतना के परिवर्तन के लिए एक अंश तक उत्तरदायी है । औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप कृषि व्यवस्था में प्रचलित शताब्दियों पुराना रीति रिवाज़ें समाप्त हो गयी सिंचाई, खाद, बीज आदि की राजकोय सुविधाओं ने कृषि उद्योग को आधुनिक बना दिया । कृषि के आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण ने

---

1. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. कुँवरपाल सिंह - पृ. 154

ग्रामीण जीवन में भी व्यक्तिवादी जीवन पद्धति को जन्म दिया । ग्रामीण जीवन में परंपरागत संस्कारों का ह्रास होने लगा । कृषि तथा औद्योगीकरण से उत्पन्न नवीन सुविधाएँ ग्रामीण जनता में बदलाव लायी है । हरित क्रांति ने निर्धनता और संपन्नता की दीवारें और भी ऊँची कर दी । इन सभी परिवर्तनों के कारण ग्रामीण जीवन में अनेक विकृतियां उत्पन्न होती रहीं ।

आज़ादी के बाद यद्यपि ज़मीन्दारी व्यवस्था की समाप्ति हुई तो भी ज़मीन्दारों ने अपनी विशिष्ट शक्ति को बनाये रखने के लिए प्रयत्न किए । उन्होंने सरकार द्वारा बनायी गयी पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा लाभ उठाया । अतः उनका रोब और ताकत पहले के समान ही रही । इसलिए ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद किसानों ने जिस स्थिति परिवर्तन का सपना देखा था वह सपना पूर्ण रूप से टूट गया । किसानों की भलाई के लिए हरित क्रांति हुई लेकिन जिनका फल केवल बड़े किसानों एवं भूस्वामियों को ही मिला । छोटे किसानों एवं भूमिहीन मज़दूरों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ ।

ग्रामीण जीवन के इस बदले हुए चेहरे को अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में उभारा है । ग्रामीण जीवन की आधार भूमि पर लिखनेवाले उपन्यासकारों ने ग्राम्य जीवन और उससे संबंध इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों को भली भाँति समझा और इसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है । ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति करनेवाले उपन्यासकारों ने अपने अपने गाँव को पृष्ठभूमि बनाकर लिखने की परंपरा प्रारंभ किया । नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त

शिवप्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, शिवप्रसाद मिश्र, जगदीश चन्द्र, राही मासूम रज़ा आदि इस श्रेणी में आनेवाले श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में बनते-बिगड़ते ग्रामीण संबंध

स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित ग्रामीण परिवेश को कई उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में उभारने की कोशिश की हैं । नागा की तमाम औपन्यासिक रचनाएँ इसकी अच्छी मिसालें हैं । अपने "बलचन द्वारा उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में बनते बिगड़ते ग्रामीण संबंधों को उद्घाटित किया है । इस उपन्यास में तत्कालीन समय के शोषित पीड़ित खेतीहर मज़दूरों की दयनीय दशा का चित्रण दिखाई पड़ता है । सामंतव व्यवस्था के शोषणतंत्रों एवं अत्याचारों की हूबहू नकल इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत है । उपन्यास का नायक "बलचनमा" इन अत्याचार से पीड़ित है । वह अपनी आँखों के सामने ज़मीन्दारों द्वारा अपने पित को पिटते देखता है । पिता की रक्षा के लिए ज़मीन्दार की पैर पकड़त दादी को देखता है । भूख के मारे तड़पनेवाली अपनी माँ और दादी क चित्र उनके आँखों के सामने हमेशा बनते बिगड़ते रहते हैं । बलचनमा स्पष कहता है -"भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गुदा चूर चूर कर फाकती है, यह भी भगवान ठीक करते हैं और सरकार आप कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परवाल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते हैं सो भी भगवान की ही लीला हैं ।"[1]

---

1. बलचनमा - नागार्जुन - पृ. 46

स्वतंत्रता प्राप्ति के थोडे पहले से लेकर ज़मीन्दारी उन्मूलन तक इसका कथानक चलता है । इसलिए ही ज़मीन्दारी व्यवस्था के असली रूप का चित्रण इस उपन्यास में दिखाई पडता है । "फूलबाबु" जैसे ज़मीन्दार द्वारा इस बात का स्पष्टीकरण हुआ है । किसानों का क्रूर-पिटायी करनेवाले फूल बाबू नमक-कानून तोडने के लक्ष्य में गिरफ्तार हो जाता है । इसके बारे में बलचनमा कहता है -"यह जो दस दस पाँच पाँच आदमी कुर्ती, धोती, टोपी पहनकर गले में माला डाले चढआ बकरे की तरह नमक बनाने जाते थे, सो मुझे बाबु लोगों का खिलवाड ही लगा था । ऐसे भी कहीं किसी को स्वराज्य मिला है ।"[1] फूलबाबु द्वारा नागार्जुन ने हमारे राजनीतिक नेताओं के असली रूप को दिखाया है जिनकी कथनी और करनी में आकाश पाताल का अंतर है । यहाँ फूलबाबू बाहरी तौर पर वर्ग विरोध का भाव प्रकट करते हुए नमक तोडो आन्दोलन में भाग लेते हैं । यह केवल अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं लेकिन अन्दर ही अन्दर उसकी लडाई वर्गहित के लिए ही है । ज़मीन्दारों की यह झूठी मर्यादा निरीह किसान लोग समझते नहीं । बलचनमा जैसे एक या दो व्यक्ति ही पहचानते हैं ।

भारत को स्वतंत्रता मिली ज़मीन्दारी उन्मूलन का कानून भी पास हो गया । लेकिन ज़मीन्दार वर्ग इन्हीं कानून से ही फायदा उठाता रहा । कानून पास हो गया लेकिन ज़मीन पर ज़मीन्दारों का ही अधिकार रहा । इसी अवसर पर क्रांतिकारी वर्ग का जन्म होता है । बलचनमा एक क्रांतिकारी कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में उपन्यास में प्रस्तुत है । मार्क्सवादी सिद्धांतों को उन्होंने कभी नहीं पढा है । अपने जीवन के कटु

---

1. बलचनमा - नागार्जुन - पृ. 63

अनुभव ही उसे मार्क्सवादी बना देता है । वह किसी ज़मीन्दार या मालिक को नहीं डरता था । बलचनमा के इस तेजोमय व्यक्तित्व से ज़मीन्दार डरते हैं । वे अपने गुण्डों द्वारा बलचनमा की हत्या कर देते हैं । ज़मीन्दार लोग अपने अधिकार परंपरा से जिन सुख सुविधाओं का मज़ा चख रहे है इसे कायम करने के लिए कोई भी कदम उठाने में नहीं हिचकते । सटेआम किसी को हत्या करने में भी कोई कसर नहीं छोडते लेखक इस उपन्यास के ज़रिए यह जाहिर करना चाहते हैं कि सामाजिक व्यवस्था में असरदार तब्दीली लानी चाहिए । यहाँ हरदम पूँजीवादी को ही विजय होती रहती हैं क्योंकि उनके समर्थक दिन प्रतिदिन बढते रहते हैं क्योंकि उनको ही सत्ता-कानून का समर्थन मिलता है । उनके पास ही धन और बल उपलब्ध है ।

ग्रामीण जीवन के सुन्दर परिप्रेक्ष्य में सजाये गये इस उपन्यास में यह सन्देश मिलता है कि बिना सही चेतना, संगठन और संघर्ष से गरीबों की कभी मुक्ति नहीं हो सकती । "बलचनमा" एक ऐसा सुन्दर उपन्यास ठहरता है जो स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्राम्य-व्यवस्था का चेतना-युक्त रूप प्रस्तुत करता है ।

पूँजीवादी सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ आवाज़

मिथिला के मछुओं की ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं को सामने लानेवाला उपन्यास है नागार्जुन के "वरुण के बेटे" । इसका कथानक सामन्तवादी व्यवस्था के अंत और पूँजीवादी व्यवस्था के विकास के प्रारंभिक बिन्दुओं से शुरू होता है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से संघर्ष करनेवाले मछुए प्राकृतिक प्रकोप से भी पीडित हैं । सरकार की

ओर से उन्हें कुछ सहायताएँ मिलती हैं । लेकिन उससे उनको प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती । आज़ादी के बाद गाँव के किसानों का शहरी मज़दूरों में परिवर्तित हो जाना एक युगीन सच्चाई है । "वरुण के बेटे" में यह दिखाया गया है कि मछुए लोग भी कोसी योजना के काम करने के लिए चले आते हैं । परिवर्तित सामाजिक परिस्थिति से चेतना पाकर मछुए नारे लगाते हैं । मलाही गोढीयारी के छोटे से ग्रामांचल की इनकी समस्याएँ तमाम भारत की समस्याएँ ही हैं, जिनमें भूमि व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और राजनीति भी समाविष्ट है ।इस उपन्यास में सर्वहारा वर्ग को आवाज़ मिली है । हमारी सामाजिक व्यवस्था जिस शोषण से भरपूर है उससे मुक्ति सर्वहारा वर्ग के अभ्युदय से ही संभव है ।

ग्रामांचल की तमाम विशेषताएँ

फणीश्वरनाथ एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने ग्रामीण चेतना की तमाम विशेषताओं, प्रवृत्तियों की ईमानदार अभिव्यक्ति अपनी औपन्यासिक रचनाओं में की है । रेणु ने अपने उपन्यास "मैला आँचल" में बिहारकेपूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को पृष्ठभूमि बनाया है । मेरीगंज गाँव की तमाम विशेषताओं को उन्होंने इस उपन्यास में उभारा है । उन्होंने यह स्वीकार किया है "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास इसमें फूल भी है शूल भी है धूल भी है, गुलाल भी, कीचड भी है चन्दन भी । सुन्दरता भी है कुरूपता भी ।"[1]

स्वतंत्रता तथा तदुपरांत गाँव में हुए सामाजिक परिवर्तन

---

1. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु - पृष्ठ-भूमिका

का प्रभावशाली चित्र "मैला आँचल" में पेश किया गया है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद ग्रामांचलों में हुए परिवर्तनों की बुरी तलख अभिव्यक्ति उपन्यास में मिलता है । "रेणु का मैला आँचल ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद ग्रामीण जीवन की स्थिति का प्रामाणिक दस्तावेज़ है ।"[1]

कालीचरण इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है जो सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना द्वारा जनता के मन में नवीन चेतना जगाते हैं । आर्थिक विषमता और तत्कालीन राजनीतिक शोषणतंत्र से पीडित ग्रामीण जनता कालीचरण की पार्टी से अधिक प्रभावित हो जाते हैं । वे सब उनके पीछे लाल झण्डे के नीचे संगठित हो जाते हैं । काली चरण का लक्ष्य वर्ग-संघर्ष द्वारा समाज में सच्चरित्रता की स्थापना ही है । वह किसानों का आह्वान देता हुआ कहता है -"उठो किसानो, किसानों के सच्चे सपूतो ! धरती के सच्चे मालिको उठो । क्रांति की मशाल लेकर आगे बढो ।"[2]

सत्ताधारी शासक वर्ग का प्रतिनिधि है बावनदास । उसके द्वारा रेणु ने अवसरवादी राजनीतिक दल का चित्रण किया है । बावनदास एक ऐसा व्यक्ति है जो हमेशा अन्याय का विरोध करता है । ऐसे लोगों के लिए हमारे राजनीतिक दल में कोई स्थान नहीं मिलता । अवसरवादी, स्वार्थलोलुप, कपटी व्यक्ति ही राजनीति में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं । बावनदास द्वारा रेणु ने यह बात सिद्ध की है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. कुंवरपाल सिंह - पृ. 164
2. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु - पृ. 101

स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्याप्त राजनीति का असली रूप "मैला आँचल"में मिलता है । इसमें रेणु ने जिस राजनीतिक शोषण तंत्र का चित्रण किया है वह गाँवों में प्रचलित राजनीति ही है । लेखक का लक्ष्य ग्रामीणता तथा वहाँ की जनता हो है । ग्रामीण जनता की राजनीतिक समझ बहुत सीमित है और ग्रामीण परिस्थितियों के अनुरूप है । रेणु द्वारा चित्रित राजनीति मेरीगंज की राजनीति ही है । गाँवों में प्रचलित नादान राजनीति।हमारे समाज में प्रचलित समस्त बुराईयों के मूल में राजनीति के क्षेत्र में फैली विसंगतियाँ हैं । जातिवाद की भावना, उच्च नीचत्व, धार्मिक बुराईयाँ आदि राजनीति का रूप धारण कर हमारे सामने खड़े हैं । इन सबका जीवंत सही प्रमाण है फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आँचल" ।

ग्रामीण जीवन में व्याप्त विघटन

पटानपुर गाँव के सीधे सादे ग्रामवासियों के जोवन को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है "परती परिकथा" । इसका कथानक उस काल में होता है जब भारत में हरित क्रांति प्रारंभ हो गयी थी । कृषि में वैज्ञानिक प्रविधि के प्रयोग का प्रारंभ होता रहता है । सरकार को ओर से खाद, बीज और यंत्रों की सुविधा प्रदान की जा रही थी । ज़मीन्दारी उन्मूलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों का भी विशद वर्णन "परती परिकथा" में है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद प्रत्येक ग्रामीण एक-एक इंच भूमि को अपना लेने में प्रयत्नरत है । अपने धन-संपत्ति को बनाए रखने के लिए प्रत्येक ज़मीन्दार विभिन्न कुचक्र रचते हैं । जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण ज़िन्दगी के समस्त क्षेत्रों में विघटन

दृष्टिगोचर होता है । प्रत्येक गाँव, मुहल्ले और टोलों में टूट रहा था । परिवार में तथा व्यक्तिगत संबंधों में भी यह टूटन दिखाई पड़ता है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के कारण उत्पन्न एक समस्या है यह विघटन । विघटन की यह समस्या हिन्दुस्तान के प्रत्येक गाँव की समस्या बन गयी ।

जितेन इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है जो सरकार द्वारा प्रदान की गयी सुविधाओं का लाभ उठाकर परानपुर नामक परती भूमि को हरियाली से युक्त बना देता है । इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद हमारे समाज में हुए दुष्परिणामों एवं सद्परिणामों का सही दस्तावेज़ "परति परिकथा" नामक उपन्यास पेश करता है ।

इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है जितेन्द्र जो परिवर्तन का पक्षधर है । वह जनता के मन में नवीन चेतना उजागर करने का प्रयत्न करता है । वह गाँव के नादान कृषकों को सहयोग की शक्ति का पाठ पढाता है । तत्कालीन राजनीति में प्रचलित झूठी मर्यादा का असली रूप ग्रामवासियों को परिचय कराता है । वह संपूर्ण ग्रामवासियों की भलाई के लिए अथक परिश्रम करता है । इसलिए ही पूरे राजनीतिक वृन्द उनके विरुद्ध हो जाते हैं । वे उनके विरुद्ध कुप्रचार करते हैं । "गाँव में जैसे ही वह सुधार कार्य प्रारंभ करने की बात करता है, गाँव के लोग उसका विरोध करते हैं । लुत्तो के अनुयायी उसे चोर, गिरहकट, शराबी, मक्कार, ज़ुआरी आदि अन्य अनेक संबोधनों से विभूषित करते हैं । स्त्रियाँ उस पर चरित्र-हीनता का दोष लगाती है ।"[1] इस प्रकार "परती परिकथा" में संपूर्ण गाँव में व्याप्त परिवर्तन के स्वरूप को हम देख सकते हैं - "इसमें ज़मीन्दारी

---

1. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डा.कुँवरपाल सिंह - पृ. 168

प्रथा के अंत, भूमिदान, गंवई-नेताओं का अभ्युदय, उनकी बेइमानी, स्वार्थपरायणता, राजनीतिक पार्टियों का संघर्ष और उनकी अनैतिकता के ऐसे चित्र प्रस्तुत किए गए हैं कि अंचल का राजनीतिक जीवन साकार हो उठा है ।"[1]

ज़मीन्दारी शोषण के खिलाफ संघर्ष

भैरवप्रसाद गुप्त का "गंगा मैया" ज़मीन्दारी शोषण के विरुद्ध किसानों के संघर्ष की गाथा है । इस उपन्यास में 1948 से लेकर 1951 तक भारत के सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में हुए परिवर्तन को प्रमुखता दी गयी है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के अवसर पर ज़मीन्दार किसी न किसी प्रकार अपने सत्ता को बनाये रखने के लिए प्रयत्नरत थे । किसान वर्ग भी वर्ग चेतना और मार्क्सवादी चेतना से आकर्षित होकर ज़मीन्दारों के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार हो रहा था । ज़मीन्दारों का अत्याचार सहते-सहते किसानों के मन में उनके प्रति घृणा का सागर लहर रहा था । "गंगामैया" का एक प्रमुख पात्र है "मटरू" जो मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित है । वह ज़मीन्दारों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए किसानों को प्रेरित करता है । वह कहता है "तुम लोग अपनी रकम वापस माँग लो । साफ कह दो कि हमें ज़मीन नहीं लेनी यही होगा न कि एक फसल न बो पाओगे.... अगर एक बार ज़मीन्दारों को तुमने चस्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं तुम्ह बाल-बच्चा भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फँस जायेंगे.... तुम लोग मेरा कहा मानो और मेरा पूरा पूरा साथ दो ।"[2]

---

1. आधा गाँव एक आलोचनात्मक अध्ययन - डा. दिलशाद जिलानी - पृ. 9
2. गंगामैया - भैरवप्रसाद गुप्त - पृ. 32-33

ज़मीन्दार वर्ग की शक्ति क्षीण हो रही थी । ज़मीन्दार लोग मरटू को किसी न किसी प्रकार खतम करना चाहते थे । वे झूठी मुकदमा लगाकर उसकी तीन वर्ष की सजा करा देते हैं उसे तीन वर्ष की सजा मिलती है । जेल से वापस आकर भी मरटू ज़मीन्दारों के विरूद्ध किसानों को एकत्रित कर संघर्ष उत्पन्न करता है । इस संघर्ष में ज़मीन्दारों पर किसानों की विजय होती है । ज़मीन्दारी व्यवस्था की समाप्ति हुई । लेकिन बहुत अधिक सामन्ती मूल्य और मर्यादाएँ हमारे समाज में वर्तमान है जिससे छुटकारा पाना बहुत कठिन है । इस उपन्यास में इन्हीं झूठे मूल्यों एवं मर्यादाओं को तोडने का आह्वान मिलता है । इस उपन्यास का गोपीचन्द सामंती मूल्य के विरूद्ध अपने भाई की विधवा से विवाह करता है । जिससे संपूर्ण समाज उनका विरोधी बन जाते हैं । मरटू सामंती-मूल्य को नकारनेवाला व्यक्ति है । इस उपन्यास में सामाजिक मूल्य के साथ-साथ व्यक्ति की संवेदना को भी अधिक महत्व दिया गया है । रूढ़िवादी सामन्ती व्यवस्था और ज़मीन्दारी शोषण तंत्र पर विजय प्राप्त करनेवाले परिवर्तित भारतीय समाज को इस उपन्यास में दिखाया गया है ।

ज़मीन्दारी शोषण तंत्र के विकृत चेहरे

स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित भारतीय समाज में व्याप्त समस्त शोषणतंत्रों का साकार रूप [illegible] में है । ज़मीन्दारी उन्मूलन से उत्पन्न परिस्थितियाँ, पूँजीवादी व्यवस्था के कारण उत्पन्न असंगतियाँ, राजनीतिक नेताओं के शोषण के विविध आयाम, बेरोज़गारी, महंगाई आदि बातों का चित्रण इस उपन्यास में है । इस उपन्यास में ज़मीन्दारी किसान संघर्ष ही प्रमुख है । ज़मीन्दारों के लिए भूखे ही दम तोड परिश्रम

करनेवाले किसान जब ज़मीन्दारों के विरुद्ध संघर्ष करने लगे तो ज़मीन्दारों के लिए यह असहनीय हो जाता है । यह उपन्यास दोनों के बीच के संघर्ष के जय पराजय का चित्रण है । लेकिन यहाँ के सामाजिक व्यवस्था हमें यही उद्‌बोध कराते हैं कि ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद भी हमारी सामाजिक व्यवस्था ठीक पहले के समान चलती रहती है । इसमें कोई बदलाव नहीं आया है । अगर ऐसा बदलाव होना है तो ज़रूर हो यहाँ किसानों का रा होना आवश्यक है । हमारी तत्कालीन सामंती व्यवस्था भी इन्हीं शोषणों एवं अत्याचारों का पक्षधर है । इस उपन्यास में मन्नो स्पष्ट शब्दों में कहत है -"तुम किसी भी किसान या मज़दूर को ले लो, उसके घर को जाकर देखो उसके तन के कपड़े देखो, उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है ज़मीन्दार न रहे, तो अब स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने उनकी जगह ले ली है और किसानों पर वे उन्हीं की तरह हुकूमत करते हैं ।"[1]

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रया किया है कि हमारे समाज में बहुत अधिक परिवर्तन हुए हैं । इन सबका बुरा प्रभाव निम्नजातीय किसानों पर पड़ा है और अच्छा प्रभाव सब उच्चवर्गीय शासक वर्ग पर भी पड़ा है । इस उपन्यास में भी अवसरवादी नेताओं के असलियतों का पोल खोलकर दिखाया है ।

ग्रामीण जीवन का साकार रूप

रांगेय राघव के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का साकार रूप मिलता है । उनके "कब तक पुकारूँ" में राजस्थान और वज्र की सीमा

---

1. सती मैया का चौरा - भैरवप्रसाद गुप्त - पृ. 561-62

के गाँवमेंबसे करनट वर्ग की ज़िन्दगी को आधार भूमि बनायी गयी है । वहाँ के गाँववालों के अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, गरीबी, रीतिरिवाज़ शोषण के विविध आयाम इन सबका चित्रण इस उपन्यास में है । "कब तक पुकारूँ" (1958) के करनटों (नटो के एक विभेद) के जीवन का रीति रिवाज़ का, उनके दैनिक कार्यक्रम, आजीविका के साधनों, नट कौशल, स्वच्छ यौन संबंधी, शराब पीने और तम्बुओं में रहने का वर्णन है ।"[1] शोषित वर्ग के उत्पीडन को सशक्त ढंग से रांगेय राघव ने इस उपन्यास में उभारा है । "ये दुनिया नरक है हम गन्दे कीडे हैं । तू ने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है, जहाँ आदमी करता है तो इसके लिए दर्द तक नहीं होता । यहाँ पाप इतना बढ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कोढ बनकर अपने अपनी अच्छी देहो को गन्दा बना लेता है, यहाँ एक आदमी देवता है पर हम तो कमीन है वो बडे लोग क्यों करते है ऐसा ? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमो पर अत्याचार करने में नहीं काँपते?"[2]

इस उपन्यास में लेखक का मार्क्सवादी दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है । उनका लक्ष्य उपेक्षित पीडित वर्ग में वर्गचेतना जगाना ही है । इस उपन्यास के पात्र जैसे सुखराम, नरेश, त्यागो, कजरो आदि विरोधी परिस्थितियों को झेलते-झेलते जीवन में विजय प्राप्त करते हैं । इस उपन्यास में उन्होंने अछूते वर्ग करन्ट के रीतिरिवाज़ों, अंधविश्वासों, आचार अनुष्ठानों, सांस्कृतिक परंपराओं, जादुटोना आदि का विशद वर्णन ही किया है । साथ ही साथ ग्रामीण अंचल के प्रकृति रमणीय सौंदर्य का सजीव चित्रण भी किया है ।

---

1. आधागाँव : एक आलोचनात्मक अध्ययन - डा. दिलशाद जिलानी - पृ.
2. कब तक पकारूँ - रांगेय राघव - प. 378

मोहभंग की स्थितियाँ

स्वतंत्रता के प्रति जनता में बड़ी चेतना हुई । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की जनता मोहभंग के दौर से गुज़रने लगी । जनता ने सपना देखा था कि पानी के प्राचीर टूटेंगे । लेकिन पानी के दीवारों के टूटने के बदले जल ही टूटने लगा । ग्रामीण जनता के सपनों के टूटने का चित्र रामदरशमिश्र ने अपने "जल टूटता हुआ" में प्रस्तुत किया । यह "कछार" के तिवारीपुर गाँव के परिवेश में लिखा गया उपन्यास है । यहाँ के ग्रामीणों की व्याकुलता, पिछड़ेपन, आर्थिक शोषण आदि का यथार्थवादी वर्णन इस उपन्यास में है । व्यक्तिसंबंधों का संघर्ष बाद में सामाजिक संघर्ष का रूप धारण कर लेता है । महोपसिंह - गणपतिया, महिपाल-सतीश, राजकुमार जैसे व्यक्तियों का टकराहट हिन्दु मुसलमान, ज़मीन्दार-मज़दूर के टकराहट का रूप धारण कर लेता है । इस उपन्यास के पात्र व्यक्तिगत दुख और सामाजिक समस्याओं से पीडित हैं । लेखक ने तिवारीपुर गाँव की परिस्थिति द्वारा यह सिद्ध किया है कि स्वतंत्र भारत की राजनीति अपने पूर्ववर्ती अंग्रेज़ी शासन से भिन्न नहीं है, जिनमें जनसाधारण के हित के बजाय उनके प्रति हीनता की भावना है । गाँव के विद्यालय का इन्तज़ाम, पंचायती चुनाव, चकबन्दी, सरपंजी, रोज़ी रोटी का संघर्ष ये सब ऐसे कार्य है जो हिन्दु मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे के लिए कारण बन जाते हैं । इस उपन्यास में राजनीतिक नेताओं का मुखौटा खींच लिया गया है जो धर्म के नाम पर लोगों के बीच में संघर्ष उत्पन्न कर अपनी स्वार्थपूर्ति करते हैं । "कितने लोग धर्म के नाम पर मरे किन्तु धर्म के रक्षक बाबू साहब और सैयद साहब धर्म की रखवाली में हो पड़े रहे धर्मात्मा बने रहे । उन्हें न चोट आयी, न उनके परिवारों का कोई आहत हुआ और धर्म की रक्षा भी हो गई ।"[1]

इस प्रकार जनता के मन में साम्प्रदायिकता का विष फैलाकर नेतानुमा लोग लाभ उठाते हैं । इस उपन्यास द्वारा लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि -व्यक्तिगत संबंधों एवं सामाजिक संबंधों में जो टूटन यहाँ वर्तमान है इसके मूल में सामाजिक परिस्थिति ही कार्य करती है । एक श्रेष्ठ समाज से ही श्रेष्ठ परिवार और व्यक्ति का जन्म होता है । सामाजिक परिस्थिति के अनुसार ही मनुष्य के व्यक्तित्व रूपायित होता है । यही इस उपन्यास का मन्तव्य है ।

किसानों में नयी चेतना का विचार

शिवप्रसाद सिंह के "अलग अलग वैतरणी" ग्रामीण जीव में आये सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को विषय बनाया गया है । इस में भी किसानों और ज़मीन्दारों के संघर्ष की कहानी कही गयी है । किसानों के विरुद्ध ज़मीन्दारों के निर्दयतापूर्ण व्यवहार का तथा इसके विरुद्ध उत्तेजित होनेवाले किसानवर्ग के परिवर्तित चेहरे को हमें दिखाया गया है । सरूप भगत की लडकी जुलरिया के साथ जब श्रीसिंह छेडछाड करता है तो सरूप भगत इसके विरुद्ध उत्तेजित होकर कहता है - "इज़्ज़त तो सबकी एक ही है बाबू । चाहे चमार की हो चाहे ठाकुर की । हम आपका काम करते हैं मंज़ूरी लेते हैं । हमें गरज हैं कि करते हैं आपको गरज है कि कराते हो इसका मतलब ई थोडा हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये ।"[1] यहाँ किसान-वर्गों में पायी उस नवीन चेतना का परिचय मिलता है ।

---

1. अलग अलग वैतरणी - शिवप्रसाद सिंह - पृ. 249

इस उपन्यास में ग्रामपंचायत का अधिकारी पहले ज़मीन्दार था जो अपने अधिकार का दुरूपयोग करता है । अपनी राजनोतिक शक्ति द्वारा वह गाँव को गरीब जनता का शोषण करते हैं सरकारी अफसर वर्गों पर उनका ही अधिकार है । वह अपने अधिकार के बल पर सभी सरकारी अफ्सरों, पुलोस अधिकारियों से अपना काम करा लेता है । "इसी टोपी का असर है कि थाना, पुलीस, नेता, अफसर, सभो को समझा बुझाकर काम करा लेता हूँ । वरना कहीं न तो स्कूल को इमारत पर छन पडती न चमारों के लिए कुआ बनता न गाँव की गालियों में नवदना बनते ।"[1]

इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किय है कि गाँवों में यद्यपि ज़मीन्दारी उन्मूलन हुआ है तो भी ज़मीन्दारी वर्ग सत्ता को दूसरे रूप में अपनी मुट्ठी पर हावी कर रखा है परिवर्तित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था से गाँववालों को केवल व्यथा ही मिली है । गाँव पर अब भी उन्हीं लोगों का अधिकार है जो पहले जनता को शोषण करता रहता था ।

सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न व्यक्ति संबंधों का टूटन और यौन संबंधों के प्रति नवीन दृष्टिकोण आदि का परामर्श भी इस उपन्यास में हुआ है । नवीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में यौन संबंधों का बिगड जाना स्वाभाविक है । इस उपन्यास में पटनहिया भाभी अपने पति से असंतुष्ट होकर कभो शशिकांत की ओर आकर्षित होती है तो कभो देवनाथ और विपिन की ओर ।

---

1. अलग अलग वैतरणी - शिवप्रसाद सिंह - प. 338

भारतीय गाँवों में हुआ एक परिवर्तन है, शहर की ओर आकर्षण । शहरी ज़िन्दगी के बाह्याडंबर को अपनाने के लिए ग्रामीण जनता शहर की ओर भाग रही है । करैता गाँव में भी शहर की ओर भागने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है । "हमारे गाँव में आजकल एक तरफा रास्ता खुला है, निर्यात-सिर्फ निर्यात । जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहाँ से चला जाता है । अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी जाती है, अच्छे मोटे ताज़े जानवर, बैल, भेड़ें, बकरे जाते हैं । हट्टे-कट्टे मज़बूत जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है खींच लिये जाते हैं पल्टन में, पुलीस में, मलेटरी में, मिल में । फिर वैसे लोग जिनके पास अक्ल है पढ़े लिखे हैं यहाँ कैसे रह जायेंगे । वे जायेंगे ही जाना ही होगा ।"[1]

इस प्रकार करैता गाँव में बहुत से लोग नगर की ओ भाग गये हैं । बहुत से ऐसे लोग हैं जो किसी न किसी प्रकार भागने का प्रयत्न करते हैं यहाँ अब ऐसे लोग ही रहते हैं जो बहुत कमज़ोर और अभागे हैं ।

<u>दमनकारी शोषकों के चिरपरिचित किस्से, दबनेवाले शोषितों के भी</u>

भारत के दलितों की अवसादपूर्ण ज़िन्दगी को और उनके संघर्ष को जगदीश चन्द्र ने अपने "धरती धन न अपना" उपन्या में उभारा है । चमादड़ी गाँव के चमार वर्ग की पूरी मानसिकता काली नामक व्यक्ति द्वारा यहाँ व्यक्त हुई है । पंजाब का एक मोहल्ला है चमादड़ी । इसी मोहल्ले को केन्द्र बनाकर ही उपन्यास का कथानक

---

1. अलग अलग वैतरणी - शिवप्रसाद सिंह - पृ. 67

चलता है । दलित एवं पीडित वर्ग का संघर्ष पूरे उपन्यास में गुँजायमान है । दलित वर्ग की पीडित अवस्था को व्यक्त करते हुए जगदीशचन्द्र कहते है - आर्थिक अभावों की चक्की में युग-युगान्तरों से पीस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं, जिस भूमि पर वे रहते थे, जिस ज़मीन को वे जोतते थे यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहते थे कुछ भी उनका नहीं था । इन्हीं बातों को देखकर मेरे किशो मन की वेदना सहसा अपने सभी बाँध तोडकर फूट निकली और मैं ने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया । प्रस्तुत उपन्यास लिखने का मूल प्रेरणाबिन्दु यही है ।"[1]

काली इस उपन्यास का प्रमुख पात्र हैं । शहर से लौटकर अपने गाँव में आनेवाले काली के मन में एक सुन्दर सपना है - अपने गाँव में अपना एक छोटा घर बनाना । इसी सपने की पूर्ति के लिए काली को व्यक्तिगत रूप से और सामाजिक रूप से कई विरोधों का सामना करना पडता है । इसी कारण उनका भाई बिरादर उनके विरुद्ध हो जाते हैं । फिर भी काली घर बनाना शुरू कर देता है और उन्हें बहुत अधिक यातनाएँ सहन करनी पडती है । चारों तरफ से उमडे विरोधों के कारण काली अपना घर पूरा कर पाने में असमर्थ हो जाता है । वह चमादडी के अपने लोगों को अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है । काली उन्हें समझाता है कि गाँव की संपूर्ण संपत्ति पर ज़मीन्दारों का ही अधिकार है यही अधिकार ज़मीन्दारों की शक्ति है । इसी शक्ति को हटाने के लिए संघर्ष की ज़रूरत है । डा. विशनदास और कामरेड टहलीसिंह के सहयोग से चमार लोग संघर्ष

---

1. धरती धन न अपना - जगदीश चन्द्र - प. 8

के लिए तैयार हो जाते हैं । लेकिन बिशनदास और टहलीसिंह अंत में पीछे हटते हैं । लेकिन चमादडी के चमार पीछे हटने के लिए तैयार नहीं थे । दोनों के बीच के संघर्ष में चमार वर्ग का विजय होता है ।

भारत के दलित एवं पीडित वर्ग को संघर्ष के लिए आह्वान करनेवाला उपन्यास है यह । लेखक ने पैनी दृष्टि से गाँव के और वहाँ के संबंधों का विस्तृत चित्रण किया है ।

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना

स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासकारों में डॉ. राही मासूम रज़ा का विशेष स्थान है । ग्रामीण जीवन पर लिखा गया उनक सबसे श्रेष्ठ उपन्यास है -"आधा गाँव" । इस उपन्यास में उत्तरप्रदेश के गाँजीपुर जिले के गंगौली गाँव के शिआ मुसलमानों की जीवन कथा चित्रित है । शायद रज़ा ने ही पहली बार मुसलमानों की जीवन-कथा को आधार बनाकर महत्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन किया है । "आधागाँ की कहानी भारत विभाजन के पश्चात् घटित घटनाओं का सामने करनेव मुसलमानों पर केन्द्रित है । "हिन्दी उपन्यास साहित्य में शायद पहली बार एक छोटे गाँव में रहनेवाले शिआ-मुसलमानों की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सामने लाने का प्रयास आधागाँव में किया गया है ।"[1] इसी प्रकार विवेकोराय की राय में -"आधा गाँव" हिन्दी साहि का गौरव ग्रन्थ है, जो सर्वथा नयी परंपरा का प्रत्यावर्तन करता हुआ अभिनंदनीय साहित्यिक साहस है ।"[2] लेखक के अनुसार यह "गंगौली में

---

1. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. कुँवरपाल सिंह - पृ. 174

गुज़रनेवाली समय की कहानी है, कई बूढे मर गये, कई बच्चे जवान हो गये, यह उम्रों के इस हेर-फेर में फँसे हुए सपनों और हौसलों की कहानी है । यह कहानी है उन खण्डहरों की जहाँ कभी मकान थे और यह कहानी है उन खण्डहरों पर बनाए गए है ।"[1]

"आधा गाँव" बदलते सामाजिक राजनीतिक तथा विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों की अभिव्यक्ति करता है । इसमें भारत विभाजन का गंगौली गाँव के शिआ मुसलमानों पर पडनेवाले प्रभाव का बहुत गहराई के साथ चित्रित किया गया है । राही मासूम रज़ा ने गंगौली गाँव के आधे भाग को ही उपन्यास के लिए विषय बनाया है । इसलिए ही उन्होंने उपन्यास का नाम "आधा गाँव" रखा है । तमाम गाँव के आधे हिस्से में शिआ मुसलमान समुदाय के लोग रहते हैं । आधे हिस्से में अन्य जाति-धर्म के लोग ।

गंगौली गाँव और वहाँ के लोग

राही ने गाँव गंगौली के ज़र्रे-ज़र्रे को बडी असरदार शैली में पेश किया है । उपन्यास का घटना क्षेत्र निरंतर गंगौली गाँव और यहाँ के शिआ निवासियों का समाज है । लेखक ने इन शिआ मुसलमानों की व्यथा की बेबाक और तलख अभिव्यक्ति बडी साफगोई से की है । उनकी आत्मीयता, उनकी देश-भक्ति को शंका-दृष्टि से देखा जा रहा है । उसे बाहर से आया हुआ अतएव पराया जाना जाता है इतिहास के चक्र के नीचे उनकी मानवीयता को कुचला जा रहा है । इसी प्रकार उपन्यासकार ने गंगौली की मिट्टी की गंध को, कीचड़ और

गोबर को, खेत और खलिहान को प्राकृतिक शोभा को उतनी प्रमुखता के साथ चित्रित किया है जितना कि वहाँ लोगों को । गंगौली गाँव और वहाँ के लोगों की मनस्थिति और ज़िन्दगी को पाकिस्तान बनने से पूर्व और उसके बाद की घटनाओं के आधार पर प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास के प्रथम खण्ड में गंगौली में, पाकिस्तान की कल्पना एक हवाई कल्पना के रूप में आती है । वहाँ के लोगों के लिए यह सब नया है । वे मसले को पूरी तरह समझ नहीं पाते । गाँव का लड़का अलीगढ़ जाकर पढ़ने लगा है । छुट्टियों में गाँव आता है तो गफ़ूरन को अलीगढ़ के लतीफे सुनाया करता है और जिन्ना की राजनीति समझाया करता है । कहता है -"हिन्दुस्थान के दस करोड़ मुसलमान कायदे-आज़म के पसीने पर खुन बहा देंगे ।"[1] ये बातें न गफ़ूरन को समझ में आतीं, न सितारा को । गफ़ूरन कहतीं, अब मियाँ आप ए लिखे हैं, ठीक ही कहते होंगे ।"[2] अब्बास कहता, "एक मरतबा पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान ऐश करेंगे... ऐश ।"[3] वह राष्ट्रवादी मुसलमान नेताओं को गालियाँ देता, क्योंकि उसके मत में ये लोग मुसलमानों को हिन्दुओं के हाथ बेचने पर तुले हैं ।

"गाँव के लोग नौजवानों से पूछते हैं कि उनके पाकिस्तान का क्या हाल है । उनकी जिज्ञासा कि गंगौली पाकिस्तान जाएगा या हिन्दुस्थान में रहेगा । वे कोशिश करें कि यह गाँव भी पाकिस्तान में चला जाए । यह संभव नहीं, तो ठीक है । वे बाप-

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 54
2. वही - पृ. 55

दादा का स्थान, इमामबाडा, और खेतीबाडी छोड़कर अन्यत्र पाकिस्तान के फेरे में जानेवाले नहीं है । वे ऐसे मूर्ख नहीं है । हिन्दुओं ने उनका क्या बिगाडा है ; वे अब तक सब साथ रहे हैं । उनसे तो क्या, मुस्लिम में ही शिआ-सुन्नियों का आपसी झगडा रहता है । सुन्नी लोग हज़रत अली का ताबूत उठाने नहीं दे रहे थे उस समय हिन्दु परसराम ही उनकी सहायता करने आया था । जिन साहब तो ताबूत उठानेवाले नहीं आए ।"[1]

निरीह ग्रामीण जनता

ग्रामीण जनता बहुत ही निरीह और भोली-भाल है । उन्हें हिन्दुवाद या मुस्लिमवाद से कोई सरोकार नहीं । छिकुरिया गाँव का एक दलित है । जब वह शहर में एक हिन्दुवादी मास्टर से मुस्लिम विरोधी प्रचार सुनता है तो वह स्वीकार नहीं करता । हिन्दुवादी नेता तर्क देता है कि इन मुसलमानों ने मन्दिर तोडकर मस्जिदें बनवा ली हैं । छिकुरिया निरीह ग्रामीण है । साधारण किसान है । वह कहता है कि मुसलमानों के अत्याचारों के इतिहास में जाने में कोई रुचि नहीं । वह तो देखता है, ज़मीन्दा में बारिखपुर के {हिन्दु} ठाकुर साहब के गुल्म गंगौली के मियां लोग के ज़ुल्मों से किसी तरह कम नहीं । गाँव की साधारण जनता वर्तमा जीवन उसकी काम चलाऊ व्यवस्था से सन्तुष्ट है । वह पिछले युग की कहुताओं और भविष्य के कल्पित दुस्वपनों में रुचि नहीं ले पाता

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 154-155

गंगौली में बसनेवाले शिआ मुसलमानों का वासस्थान उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी में विभाजित है । दोनों पट्टीवालों के बीच की आपसी स्पर्धा से उपन्यास का कथानक प्रारंभ होता है । धर्म के नाम पर चलनेवाली यह स्पर्धा दोनों पट्टीवालों को एक दूसरे से अलग रखती है । धर्म के नाम पर चलते विभिन्न अत्याचारों, शोषण तंत्रों एवं बाह्याडम्बरों का खुला-खुला वर्णन आधागाँव में हैं ।

अलगाववादी राजनीति का दखल-अंदाज़

स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक राजनीतिक परिस्थिति और भारत विभाजन ही "आधागाँव" उपन्यास का प्रमुख विषय है । तत्कालीन हिन्दु-मुस्लिम स्पर्धा और मुस्लिमलीगी नेताओं पर उन्होंने तीखा प्रहार किया है । एक कट्टरपंथी दक्खियानूसी मुसलमा परिवार का सदस्य होते हुए भी उन्होंने मुस्लिम लीगी अलगाववादी राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है । "मुस्लिम लीग की राजनीति जो वास्तव में प्रतिक्रियावादी राजनीति थी, उसके ऊपर जितना सशक्त प्रहार राही ने किया है और जिस प्रामाणिक ढंग से किया है उतना अन्य लेखकों में दुर्लभ है ।"[1]

धार्मिक या राजनीतिक शोषणतंत्रों का चित्रण "आधा गाँव" में आदि से अंत तक है । लेकिन इस उपन्यास को हम कभी भी राजनीतिक या धार्मिक उपन्यास नहीं मान सकते । गंगौली में घटित होनेवाली घटनाओं का विवरण ही इस उपन्यास से हमें मिलता है । "यह कहानी न धार्मिक है न राजनीतिक क्योंकि समय न धार्मिक

होता है न राजनीतिक और यह कहानी है समय ही की । यह गंगौली में गुज़रनेवाली समय की कहानी है ।"[1] "आधा गाँव" का कथानक उद्गम, "मियाँ लोग", "तानाथाना", "नमक", "गाथा", "प्यास" और "तनहाई" की कई मंजिलों से गुज़रता हुआ "नई पुरानी रेखाओं" में समाप्त होता है । यद्यपि कथानक में बिखराव दिखाई पड़ता है, फिर भी इस प्रकार का नाम देकर कथानक को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास उन्होंने किया है । इस उपन्यास में 1937 से लेकर 1952 तक घटित घटनायें जैसे देश की स्वतंत्रता, भारत पाक् विभाजन, ज़मीन्दारी उन्मूलन आदि से उत्पन्न विभिन्न भीषणतायें साकार हो उठी है । उपन्यास में रज़ा ने स्वयं को कथावाचक के रूप में प्रस्तुत किया है । यह एक ऐसा कथावाचक है जो गंगौली के शिआ मुसलमानों के अंतरंग का जानकार है । वे इस समुदा का ही अदम्य होने के कारण इस लक्ष्य में सफल निकले हैं । "इस कहानी में जगह जगह "मैं" इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूँ कि यह कहानी मुझसे दूर न जा सके कि मैं जब चाहूँ इसे छू लूँ ।"[2]

रज़ा ने उपन्यास द्वारा यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारत के गाँवों में अनेक ऐसे हिन्दु और मुसलमान लोग मौजूद हैं जो भारत-पाक विभाजन को नहीं चाहते थे । "आधा गाँव" में गंगौली गाँव के मुसलमान लोग मुस्लिम लीग के राजनीति के पीछे छिपे स्वार्थता को अच्छे ढंग से पहचानते हैं । गंगौली में अनेक ऐसे लोग हैं जो पाकिस्तान को नहीं चाहते थे । उनकी दृष्टि में भारत एक है और उन्हों का ही देश हैं । मुसलमानों के लिए एक अलग देश को आवश्यकता नहीं । रज़ा ने यह स्पष्ट दिखाने का प्रयास किया है कि हमारे देश का विभाजन यहाँ के

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 11

राजनीतिक नेताओं की कुटिल चालों का परिणाम हैं । "गंगौली के अनपढ, अज्ञानी, नादान मुसलमान भी इसका जानकार है । मुस्लिमलोगी नेतागण केवल मुसलमानों को भलाई ही चाहते हैं । लेकिन गंगौली गाँव में विभाजन की विभीषिका का शिकार हुए हिन्दु और मुसलमान है ठाकुर कुँवरपाल सिंह, फुन्ननमियाँ आदि इसका उदाहरण हैं ।

भारत-पाक विभाजन का उद्देश्य हिन्दु-मुसलमानों को अलग करना ही था । गंगौली में अनेक ऐसे मुसलमान हैं जो इन अलगाववाद दृष्टिकोण को नहीं चाहते थे । हक्कीम सय्यद अली कबीर, अब्बुमियाँ, रब्बन बी, मिग्दाद आदि इनमें कुछ हैं।जिस उद्देश्य से देश का विभाजन हुआ उसका विपरीत परिणाम ही निकला । "ए बशीरा ई पाकिस्तान त हिन्दु मुसलमान को अलग करे को बना रहा । बाकी हम त ई देख रहे कि ई मियां-बीबी बाप-बेटा और भाई बहिन को अलग कर रहा ।"[1]

ज़मीन्दारों का शोषण तंत्र

राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास आधागाँव में तत्कालीन समय में भारत भर के गाँवों में व्याप्त लगभग सभी समस्याओं को ओर दृष्टि डालने का प्रयास किया है । उस समय भारत की ग्रामीण जनता विभिन्न शोषणतंत्रों से पीडित थी । ज़मीन्दारी शोषण, इनमें प्रमुख है । क्योंकि उस समय भारत के गाँवों पर ज़मीन्दारों का ही अधिकार था । ग्रामीण जनता ज़मीन्दारों के शोषणतंत्रों से पीडित थे । आधागाँव में रज़ा ने ज़मीन्दारों के शोषण तंत्र का वास्तविक रूप चित्रित

---

1. आधागाँव - रज़ा - पृ.355

किया है । गंगौली गाँव के अधिकांश मुसलमान ज़मीन्दार है । ज़मीन्दारी ही यहाँ के अधिकांश लोगों की ज़िन्दगी का एकमात्र सहारा था । ये ज़मीन्दार किसानों का शोषण कर सुखलोलुपतापूर्ण ज़िन्दगी बिताते थे । "फुन्ननमियाँ" गंगौली का एक प्रमुख ज़मीन्दार है उनके स्वभाव की चर्चा करते हुए राही लिखते हैं -"तमाम छोटे ज़मीन्दार गिरोहबन्द थे, रात को डाके डलवाते थे दिन को मुकदमा लडवाते थे कभी इसे बेदखल किया कभी उसे दखल दिलवा दिया । इसी हेर-फेर में सौ पच्चास खरे हो जाते थे । कानून अपनी जगह लेकिन अगर कोई बात शान के खिलाफ हो गयी तो थाना फूँक गया ।"[1] ये फुन्ननमियाँ ने अपनी इच्छापूर्ति के लिए ज़मीन्दारी शक्ति का खूब प्रयोग किया है । इस बात का स्पष्टीकरण इन्हीं शब्दों में होता है -"अभी कोई सात आठ बरस पहले थानेदार शरफुद्दीन ने फुन्ननमियाँ को गाली दे दी थी तो फुन्ननमियाँ ने रात को कोई दो सौ आदमियों के साथ थाने पर छापा मारकर थानेदार शरफुद्दीन को अगवा कर लिया था फिर उन्हें एक पेड से बाँधकर उनकी पैबन्दी मूँछों का एक एक बाल उखाड लिया था ।"[2] यहाँ फुन्ननमियाँ अपनी ज़मीन्दारी शक्ति के कारण ये सब करता है और शरीफुद्दीन को गाँव से भगाने में सफल हो जाता है । गंगौली गाँव के किसानों का जीवन ज़मीन्दारों पर ही आश्रित था । ये किसान जीवन भर दम-तोड परिश्रम करते हैं लेकिन उन्हें परिश्रम का कोई अच्छा फल नहीं मिलता । वह केवल लगान देनेवाला दास बनकर रह गया था । समय पर लगान न देने के कारण ज़मीन्दार अशरफुल्ला खान आसामी को घर बार नीलाम कर देने की धमकी देते हैं - "साले अगर परसों तक लगान और कर्जमय सूद के न आ गया तो ढोर डंगर सब नीलाम

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ.83

करवा दूँगा और अपने इस लाट साहब को भी ले जा और इन्हें बतला कि ज़मीन्दारों से कैसे बातचित की जाती है ।"[1] लाट साहब आसामी का बेटा है जिसने ज़मीन्दार के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित न करने के लिए कठोर यातना दी जा रही थी । "सलाम करो ज़मीन्दार को । बा ने उसे कुहनी मारकर सरगोशी में कहा । उसने खाँ साहब को सलाम किया

"आधागाँव" में कहीं भी ज़मीन्दार-कृषक संघर्ष नहीं दिखाई पडता । क्योंकि गंगौली के किसान ज़मीन्दारी शक्ति से भयाक्रांत है । वे ज़मीन्दारों के इस नृशंस व्यवहार से कुण्ठित और संत्रस्त थे । लेकि अपनी घृणा को बाहर प्रकट करने का शौक उन्हें नहीं था । क्योंकि उन्हीं के अनुसार "ज़मीन्दारी मजहब की तरह मज़बूत थी । शख्सियत उसके चंगुल में थी । उनका जी चाहता कि ज़मीन्दारी खतम हो जाये कि वह अपनी ज़मीन के मालिक बन जायें, मगर उनमें यह आरज़ू करने का हौसला नहीं था ।"[3]

इस प्रकार "आधा गाँव" में ज़मीन्दारी शोषण तंत्र का असली रूप ही हम देखते हैं । निम्नवर्गीय जनता के मन में यह विश्वास सुदृढ हो गया कि वे किसी भी तरह ज़मीन्दारों के चंगुल से मुक्त नहीं होगा । ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद पाकिस्तान के निर्माण के उपरांत गंग के ज़मीन्दारों के सुखलोलुपतापूर्ण जीवन कुछ अंश तक समाप्त हो जाते हैं ।

देश की स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने ज़मीन्दारी उन्मूलन को कानून के रूप में स्वीकार किया । गंगौली के अधिकांश मुसलमा

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 154

2. वही - पृ. 154

ज़मीन्दार थे । उनका आर्थिक आधार ज़मीन्दारी ही थी । ज़मीन्दारी उन्मूलन के पश्चात् गंगौली के मुसलमानों की आर्थिक दशा बहुत दयनीय हो गयी । गंगौली के मुसलमान ज़मीन्दार दूसरों से काम कराते थे अब जीविकोपार्जन के लिए खुद काम करने लगे । ज़मीन्दार फुस्तुमियाँ ने इमामबाड़े के कमरे में जूतों की दूकान खोल दी है । कुछ ज़मीन्दारों ने अपने विनष्ट प्रताप को अपनाने के लिए तथा तुरन्त धनवान बनने के लिए जुआ खेलना शुरू किया । अब्बुमियाँ जो गंगौली के एक गरीब ज़मीन्दार है शमा मुअम्मा हल करके तुरन्त धनवान बन जाना चाहते हैं । "वे हर रात सईदा की माँ के बुदबुदाने की परवाह न करते हुए शमा मुअम्मा हल करने लगते और मुआ माँगने लगते कि बस एक बार मुअम्मे को इनाम मिल जाये, परन्तु हर बार होता यह कि जब इनाम चार गलतियों तक बाँटा जाता तो उनके हल में पाँच गलतियाँ निकल आतीं । फिर अगले मुअम्मे की तैयारी शुरू हो जाती.....पर मुअम्मे के इन्तज़ार में ज़िन्दगी की ज़रूरतें रुक नहीं जाती । .... ज़रूरतें महंगी होती जा रही थीं ।"[1]

ऋणग्रस्तता

भारत के गाँवों में व्याप्त एक प्रमुख सामाजिक और आर्थिक समस्या है ऋणग्रस्तता की समस्या । "आधागाँव" उपन्यास में इस की स्पष्ट झलकियाँ दिखायी पड़ती हैं । गंगौली गाँव के किसान वर्ग ही नहीं ज़मीन्दार वर्ग भी ऋण के बोझ से पीड़ित है । भारत-पाक विभाजन के पश्चात् दूसरों से ऋण ले लेकर जीविकोपार्जन करनेवाले हक्कीम साहब अपनी दयनीय दशा इस प्रकार व्यक्त करते हैं -"एक ठो बेटा रहा....

---

1. आधागाँव - राही मासूम रजा - प. 342

ओ पाकिस्तान चला गया । एक ठो ज़मीन्दारी रही ओह को समझो कि पाकिस्तान चलो गयो । अरे जोन चीज़ हमरे पास न है, उसे पाकिस्तान न गयो ? हमरे पास रह का गवा है ? एक ठो बेवा बेटी, तीन ठो भतीज नवासे - नवासी, एक ठो बहू ओहो - बेवया हो है, तीन ठो पोता पोती ; ओतु को यतोमें समझो । कल एक ठो खजाना औ मिज गया । सुखरमवा नालिश कर चिह्न है अब हम ओ का कजी कंठा से दें ? हमारी समझ में तो कुछ आजा न । नौ पराणी का पेट कैसे चलायें ।

बेरोज़गारी

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय गाँवों में व्याप्त एक बहुत बड़ी समस्या है बेरोज़गारी । भारतीय गाँवों के ज़मीन्दार वर्ग ही अधिकांश रूप से इसके शिकार हुए हैं । वे पहले तो काम करते थे लेकिन अब उन्हें जीविकोपार्जन के लिए काम करना पड़ रहा है । लेकिन उन्हें करने योग्य कोई काम नहीं मिला इसलिए ही उन्हें काम की तलाश में दूर-दूर भड़कना पड़ा । "आधागाँव" उपन्यास में इस बात की ओर स्पष्ट रूप से इशारा किया गया है । गंगौली के अनेक नौजवान नौकरी की तलाश में कलकत्ता चले जाते हैं । इसलिए ही तो वे हमेशा अपने परिवारवालों से अलग रहते हैं । अपनी पत्नियों एवं बच्चे बच्चियों से अलग रहनेवाले व्यक्तियों तथा पति के विरह में तड़पनेवाली पत्नियों की दशा इन्हीं शब्दों में व्यक्त होती है -"कलकत्ता किसी शहर का नाम नहीं गाँजीपूर के बेटे-बेटियों के लिए यह भी विरह का एक नाम है । यह शब्द विरह की एक पूरी कहानी है जिसमें न मालूम कितनी आँखों का काजल बहकर सूख चुके हैं ।

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 338

हर साल हज़ारों-हज़ार परदेश जानेवाले मेघदूत द्वारा हज़ारों हज़ार सन्देश भेजते हैं ।"[1] यह स्थिति गंगौली गाँव की ही नहीं बल्कि भारत के अधिकांश गाँवों की है । इस प्रकार रज़ा ने दरिद्रता, बेरोज़गारी, ऋणग्रस्तता आदि विभिन्न समस्याओं के चित्रण द्वारा गंगौली गाँव के असली रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

जातिवाद

वर्तमान भारतीय गाँवों में व्याप्त एक बहुत बड़ी समस्या है जातिवाद की समस्या । जाति-स्पर्धा के कारण ही देश भर में विभिन्न दंगे और अत्याचार उत्पन्न होते रहते हैं । यह जाति स्पर्धा हिन्दू मुसलमानों के बीच में नहीं बल्कि हिन्दु-हिन्दु और मुसलमान-मुसलमान के बीच में भी है । "आधा गाँव" उपन्यास में भारतीय मुसलमानों में पायी जानेवाली जातिवाद की समस्या का विस्तृत वर्णन मिलता है । "आधागाँव में गंगौली गाँव उत्तरपट्टी और दक्षिणपट्टी में विभाजित है । यहाँ शिआ सुन्नियों, जुलाहों और राकी मुसलमानों के घर है । शिआ मुसलमान अपने को सरदार, सय्यद और इमाम हुसैन का वंशज मानते हैं । शिआओं और दूसरे मुसलमानों के बीच इसलिए उच्चनीचत्व का भेदभाव है । सुन्नियों को वे हेय दृष्टि से देखते हैं । जुलाहों एवं राकी मुसलमानों के साथ उसका सामाजिक मेलजोल नहीं है । वे सुन्नियों के साथ विवाह संबंध भी नहीं करते । लेकिन उनके शिआओं ने जुलाहा एवं सुन्नी रखैलें रखी हैं परन्तु वे घर के सभी भागों में प्रवेश नहीं कर सकतीं । सैदानियों का निम्न जाति की महिला झांगरिया को से किया गया व्यवहार यह स्पष्ट कर देता है

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 10

कि उनमें अस्पृश्यता की भावना भी पायी जाती है । सकीना ने झाँगड़िया बो से पूछा - पान खइई झांगरिया बो ने कोई जवाब नहीं दिया उसने अपना हाथ फैला दिया हुआ पान का एक बीड़ा ऊपर से छोड़ दिया जो उसकी हथेली पर गिरकर खुल गया । झाँगरिया बो सलाम करके यह पान खा लिया ।"[1] यहाँ हिन्दू मुसलमान भेदभाव भी है। यहाँ के शिआ मुसलमा हिन्दुओं के छुआ नहीं खाते थे । इसलिए चिकुरिया मौलवी बेदार को सबसे शुद्ध मुसलमान मानता है । क्योंकि वे हिन्दुओं की बनाई हुई कोई भी चीज़ नहीं खाते । समीउद्दीन खाँ भी उन्हीं के समान है, "समीउद्दीन खाँ बहुत कट्टर किस्म के मुसलमान थे वह लगभग उतने ही कट्टर मुसलमान थे जितने कट्टर हिन्दु खुद ठाकुर साहब थे । समीउद्दीन खाँ हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते थे और ठाकुर साहब मुसलमानों की छुई हुई किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाते थे ।"[2]

"आधागाँव" वास्तव में गंगौली गाँव के शिआ मुसलमा के जीवन पर आधारित उपन्यास है । रज़ा ने इस उपन्यास में मुसलमानों के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त किया है । शिआ मुसलमानों के जीवन में व्याप्त धार्मिक भावना अंधविश्वास, रूढ़ियों परंपराएँ, मोहर्रम जैसे धार्मिक उत्सव आदि का वर्णन करते हुए वहाँ के ग्रामांचल को पूरी सच्चाई के साथ हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास राही ने किया है ।

भावात्मक एकता और ग्रामीण चेतना का प्रतीक

मोहर्रम भावात्मक एवं ग्रामीण चेतना का प्रतीक है ।

---

1. आधागाँव [illegible]

कस्बातो शहरों और देहातों में आज भो हिन्दू ताज़ियों पर चढावे चढाते हैं । दुलदुल को मलीदा खिलाते हैं ताज़ियों का तजदा करते हैं । परों में मन्नत के कागज़ी ताज़िए रखते हैं, हुसैन के नाम पर शर्बत पिलाते हैं, लकडी के अखाडों में "या हुसैन का नारा लगाकर गत के बनेठो, बांक, और तलवा के हाथ दिखाते हैं "भावात्मक एकता के नारे लगाने से नहीं होतो, मोहर्रम को देखिए भावात्मक एकता हो चुकी है ।"[1]

मोहर्रम तो मुसलमानों का एक धार्मिक त्योहार है । इमाम हुसैन मुसलमानों के लिए पूज्य व्यक्ति है । उनके कर्बला में कत्ल हो जाने के बाद शिआ समुदाय के लोग उनका शोक मनाते आ रहे हैं । इसी को मोहर्रम कहते हैं । शिआ मुसलमान ढाई महीने तक का मोहर्रम मनाते हैं । इस समय वे खुशी का कोई काम नहीं करते । अगर किसी कारण से कोई हंस पडता है तो बुज़ुर्ग लोग उसे डांटते हैं । शिआ लोगों का विश्वास है कि "इमाम साहब" मोहर्रम के समय हिन्दुस्तान आते हैं और दस्वीं के बैठक के बाद वे वापस कर्बला जाते हैं । इस दस दिन तक इमाम हुसैन तथा कर्बला में कत्ल किये गये अन्य साथियों की याद में मातम करते हैं । मातम के लिए विस्तृत विधिविधान हैं । गंगौली के फुन्ननमियाँ जैसे अनपढ लोगों से लेकर विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भो मातम के विधि-विधानों को जानते हैं । गंगौली वासियों का इमाम हुसैन के प्रति इतनी अन्धश्रद्धा और भक्ति है कि उनका नाम सुनते हो सभी बिलख बिलखकर राने लगते हैं । मातम करते करते कुछ लोग भावावेश में बेहोश होकर गिर प हैं । उत्तरपट्टी तथा दक्षिणपट्टोवालों का अलग-अलग ताज़िए हैं । लेकिन बडा ताज़िया दक्षिणपट्टी में है । बडे ताज़िए के नोचे लोग मन्नतें माँगते है

मन्नतें माँगते समय अपने अपने मन में संकल्प निर्धारित करते हैं जब संकल्प पूर्ण हो जाता है तो वह श्रद्धानुसार उसकी पूर्ति कर लेता है । कभी कभी मन्नत पूरी होती है कभी नहीं । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्नतों के प्रति गंगौलीवासियों का पूरा का पूरा विश्वास है । स्पष्ट है कि गंगौली के शिआ मुसलमानों के जीवन में धार्मिक रूढ़ियों की भरमार है । यहाँ के युवा लोग भी परंपराओं एवं रूढ़ियों से अलग होना नहीं चाहते ।

अन्धविश्वास

अशिक्षा और अज्ञान के कारण गंगौलीवासी अंधविश्वासों में जकड़े हुए हैं । लोगों का विश्वास है कि मोहर्रम के अवसर पर इमाम हुसैन दस दिन के लिए हिन्दुस्तान आते हैं । नौ की रात में इमाम हुसैन दक्षिणपट्टी के बड़े ताज़िए के चौक पर दरबार करते हैं । इसी अंधविश्वास के आधार पर मोहर्रम मनाने के लिए गाँजीपुर के दूसरे शहरों से भी लोग गंगौली आते है ।

भूतप्रेतों के बारे में गंगौली वासियों की यही धारणा है कि इमामबाड़े में शुक्रवार की रात जिन्नात मजलिस करते हैं । इसलिए शाम के बाद कोई भी उधर से गुज़रता नहीं "इमामबाड़े के बारे में अजीब अजीब बातें मशहूर थी । मशहूर था कि हर जुमे (शुक्रवार) की रात को इसमें जिन्नात मजलिस करते हैं । इसलिए शाम के बाद कोई इधर से गुज़रता हो नहीं ।"[1]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 38

गाँव की समग्रता

आधागाँव उपन्यास में कोई नायक या नायिका नहीं इसमें पात्रों की भरमार है । ग्रामांचल को उसकी संपूर्णता के साथ चित्रित करने के लिए वहाँ के समस्त पात्रों को उपन्यास में लाना ज़रूरी है, गंगौ गाँव में जितने व्यक्ति हैं रज़ा ने किसी को छोड़ा भी नहीं । ये पात्र ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं को उभारने में पूर्णत: सफल भी हो पाये हैं । प्रत्येक पात्र की ग्रामीणता उसकी भाषा और वार्तालाप की शैली में प्रकट हो जाती है । फुन्ननभियाँ, झांगरिया वो, मिग्दाद, अब्बूमियाँ, हक्कीम साहब, सईया, मौलवी बेदार सैफुन्निया आदि पात्र ग्रामीण जी को उसके पूरे नंगेपन के साथ प्रस्तुत करते हैं ।

आधागाँव का कथानक गंगौली गाँव तथा वहाँ के जन पर आधारित है । मोहर्रम तो उपन्यास का प्रमुख विषय है । क्योंकि मोहर्रम के कारण ही गंगौलीवासियों की आपसी संबंध इतना दृढ़ हो गया है । शिआ मुसलमानों के जीवन की विभिन्न घटनाएँ तथा समस्याएँ मोहर्रम के साथ जुड़ी हुई हैं । अत: गंगौलीवासियों के जीवन में मोहर्रम का स्थान बहुत ऊँचा है । इसलिए गंगौली के सभी पात्रों को अपनी रचन में समेटने का कार्य रज़ा ने पूरी लगन के साथ किया है ।

"आधा गाँव" उपन्यास का सामाजिक जीवन भी ग्रामीण चेतना पर आधारित है । वहाँ के लोगों का पारिवारिक जीवन स्त्रियों की स्थिति, अनैतिक यौन संबंध, उच्चनीचत्व का भाव, रहन सहन, खान पान आदि को बहुत ईमानदारी के साथ रज़ा ने चित्रित किया है ।

अशिक्षा और पारिवारिक झगड़े

गाँव के अधिकाँश लोग अशिक्षित हैं । इसलिए ये छोटी सी बातों पर लड़ते झगड़ते रहते हैं । परिवारवालों के बीच में भी झगड़ा साधारण सी बात है । सकीना को लगातार सात लड़कियाँ पैदा करने के कारण उसकी सास रब्बन बी उसे हमेशा कोसती रहती है । "यहाँ तक कि फिर लड़की हो जाती है और फुम्मु का मुँह लटक जाता और रब्बन बी हाथ उठा उठाकर सकीना को कोसने लगती है - "लड़की ये लड़की पैदा न किए जा रही हो - बकी ई घर मेरे कड़ ना धारा है कलाम्मुद्दीन{कम्मो} के घर में भी माँ-बाप के बीच हमेशा झगड़ा होता रहता है । "वाजिदमियाँ रहमान बी को फिर मारना शुरू कर दिया । कम्मो ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया । कम्मो जवान था वाजिदमियाँ की हड्डियाँ चौड़ी ज़रूर थी । लेकिन वह बूढ़े थे । नाचकर रह गये लेकिन जब हाथ न छुड़ा सके तो वह कम्मो को मादरजाद गालियाँ देने लगे ।"[2]

नारी-पुरुष के अनैतिक संबंध

आधागाँव में नारी पुरुषों के अनैतिक संबंध का खूब वर्णन मिलता है । एक पुरुष एक से अधिक नारियों के साथ अनैतिक संबंध रखता है । "दूसरा ब्याह कर लेना या किसी भैरी गैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था । शायद ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हो, जिनके घर में खाने को भी नहीं होता वे भी किसी न किसी प्रकार कलमी आमों और कल्मी परिवारों का शौक पूरा कर ही लेते हैं ।"[3]

ऊँच नीच भेदभाव

गंगौली गाँव में उच्चनीचत्व का भाव ज़ोर पर है । निम्नजातिवालों को उच्चजातिवाले अस्पृश्य समझते हैं । शिआ मुसलमान अपने को इमाम हुसैन का वंशज मानते हैं । राकी, जुलाहा आदि से इनका सामाजिक मेलजोल नहीं है । इसलिए ही हक्कीम अली कबीर हिन्दु मरीज़ों की नाडी छूने स्थान करता हैं ।

उपन्यास में गंगौली गाँव की शादी-ब्याह तथा विभिन्न रीति रिवाज़, शादी के अवसर पर गाये जानेवाले गीत, शादी के तौर तरीके, ब्याही जानेवाली लडकी की सहेलियाँ तथा गाँव के भौजाईयों के हास-परिहास, पान खाने की आदत जैसे सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को भी समाहित किया गया है । इन्हीं के द्वारा रज़ा ने गंगौली के लोकजीवन की स्वाभाविक एवं सजीव झाँकी प्रस्तुत की है ।

ग्रामांचल के प्राय: सभी लोग अशिक्षित ही होते हैं । अत: उनका ज्ञान गाँव तक ही सीमित रहता है । गंगौली गाँव की जनता भी इससे भिन्न नहीं । रज़ा कहते हैं -"गंगौली के बहुत से लोगों ने रेल नहीं देखी थी । लोग ज़्यादातर इक्कों से सफर किया करते थे और चुँकी मियाँ लोगों के ख्याल में दुनिया गाँजीपूर की कचहरी के बाद खतम हो जाती थी, इसलिए उन्हें नहीं मालूम था कि दुनिया में क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है ।"[1]

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 7।

ग्रामीण भाषा

ग्रामीण चेतना के उपन्यासों को जीवन्तता प्रदान करनेवाला तत्व उसमें प्रयुक्त ग्राम्य भाषा है । डॉ. कडवे के अनुसार "ग्रामीण जन जीवन के चित्रण को स्थानीय बोली के प्रयोग से ही सजीव एवं साकार बनाया जा सकता है । उसमें ही सच्ची सौंदर्य निर्मिति और विशुद्ध आनंद की प्राप्ति है । उसमें ही सच्ची कलात्मकता, कलानंद एवं भावसौन्दर्य का आस्वादन है"[1] ग्रामीण भाषा, ग्रामीण बोली, वहाँ के लोकगीत, लोककथाएँ दरअसल एक नवीन शिल्प की निर्मिति करती है । विशेषकर त्यौहारों पर ढोल मंजीरे बजाकर अपने अन्त वैभव की अद्भुत अभिव्यक्ति करते हैं । ग्रामीण भाषा एक नवीन क्रांति है क्योंकि ग्राम की स्थानीय बोली में ग्राम जीवन की पीड़ा, व्यथा, दुःख-दर्द, सुख-दुख ज्यों के त्यों यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुए हैं जो कृत्रिम नहीं काल्पनिक नहीं, बल्कि यथार्थ एवं जीवंत है । लोकोक्तियों एवं कहावतों के कारण ग्रामीण भाषा, शिल्प एवं शैली की नवीनता का उद्घटन हुआ है ।

राही मासूम रज़ा ने भी ग्रामीण चेतना की सही अभिव्यक्ति के लिए ग्रामांचल की भाषा का सफल प्रयोग किया है । "आधागाँव" की भाषा भी ग्रामांचल के परिवेश के लिए अनुकूल है । रज़ा ने पात्रानुकूल भाषा नहीं पात्रों की भाषा का प्रयोग किया है । गंगौली गाँव की भाषा भोजपुरी है । भोजपुरी भाषा से साधारण लोग अनभिज्ञ हैं ग्रामांचल को उसकी पूरी सच्चाई के साथ चित्रित करने के लिए

---

1. हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति - डा. ह. के. कडवे -

प्रत्येक ग्रामांचल की भाषा का प्रयोग उपन्यास में भी करना ज़रूरी है । इसलिए गंगौली गाँव को उसकी समग्रता के साथ चित्रित करने के लिए रज़ा ने वहाँ की बोली भोजपुरी का प्रयोग किया है । उपन्यास के फुन्ननमियाँ, मौलवी बेदार, मिरदाद, रब्बन बी जैसे पात्रों की तस्वीरें इतनी सहजता के साथ उभर नहीं आती यदि वे मातृभाषा से भिन्न भाषा बोलते । भाषा में उन्होंने श्लील अश्लील का कोई बयान नहीं किया है । उन्होंने गालियों का प्रयोग इस प्रकार किया है कि जिससे गाँव के लोगों की मनस्थिति तथा विभिन्न सामाजिक संबंध उभरकर सामने आए । हरामजाद, बहनचोद, साली, भादरचोद जैसे विभिन्न गालियों का प्रयोग उन्होंने किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न प्रकार के हिन्दी और उर्दू मुहावरों का प्रयोग भी किया है जैसे "आँखों की आँच में", "नाक का बाल", "मौके की ताक", "माथा ढनक गया", इत्यादि इन सब ने मिलकर आधागाँव की भाषा को अत्यंत सजीव और स्वाभाविक बना दिया है ।

ग्रामीण चेतना का जैसा परिपाक चित्रण आधागाँव उपन्यास में हुआ है वैसा परिपाक रज़ा के अन्य उपन्यासों में नहीं है । "टोपी शुक्ला" और "हिम्मत जौनपुरी" में यद्यपि ग्रामीण परिवेश का चित्रण है तो भी इन उपन्यासों को कभी भी ग्रामीण चेतना युक्त उपन्यास नहीं कह सकते । क्योंकि वे उपन्यास किसी विशेष विषय पर आधारित है । "टोपी शुक्ला" हिन्दु-मुस्लिम संबंधों की कहानी है तो "हिम्मत जौनपुरी" एक भारतीय मुसलमान की जीवनगाथा है जो एक सीधा सादा सामान्य व्यक्ति है ।" "ओस के बूँ" हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य पर आधारि

उपन्यास है । इसकी कहानी एक मन्दिर के इर्द-गिर्द घटित दिखायी गयी है । "दिल एक सादा कागज़" भी देश विभाजन के पश्चात् भारत में बचे मुसलमानों के मोहभंग की कहानी है । "दिल एक सादा कागज़" और "सीन-75" ये दोनों उपन्यासों के कथानक का संबंध बंबई के फिल्म फील्ड से है । "कटरा बी अर्जु" उपन्यास का विषय भी आपातकालीन दुरवस्था से गुज़रनेवाले परिवार से संबंधित है ।

अत: रज़ा के कुलमिलाकर सात उपन्यास है । इनमें ग्रामीण चेतना को उसकी पूरी सच्चाई के साथ "आधागाँव" में ही उभारा है । इसमें गंगौली गाँव के आधे भाग को उसकी समस्त विशेषताओं के साथ रजा ने उभारा है । देश की स्वतंत्रता तथा विभाजन के परिणाम स्वरूप गंगौली गाँव में उत्पन्न विभिन्न समस्यायें विभिन्न शोषण तंत्र, अत्याचार, अनैतिक व्यवहार आदि के साथ ही साथ वहाँ के शिआ मुसलमानों के रीति रिवाज़, आचार अनुष्ठान, उत्सव, पर्व, शादी, ब्याह आदि का जैसा चित्रण आधागाँव में हुआ है जिससे उपन्यास पढने से पूरा गंगौली गाँव उभरकर सामने आता है ।

भाषा के क्षेत्र में भी उन्होंने इस ग्रामीण चेतना को छोडा नहीं । भोजपुरी भाषा का जैसा प्रयोग किया है कि उपन्यास की स्वाभाविकता अधिक बढ गयी है ।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में ग्रामीण चेतना से अनुप्राणित बेशुमार उपन्यास हैं । इसकी वजह यह है कि भारत में

गाँव और ग्रामीण जनता ज़्यादा है । महात्मागाँधी के अनुसार "भारत की आत्मा गाँवों पर टिकी है ।" इसलिए ही गाँव तथा ग्रामीण जनता का हमारे समाज में महत्वपूर्ण स्थान है । आज़ादोत्तर माहौल में साहित्य के क्षेत्र में विशेषकर उपन्यास के क्षेत्र में ग्रामीण अचल तथा वहाँ के परिवेश को ज़्यादा अहमियत दी जाने लगी । सामाजिक परिवर्तन के कारण विकृत हुए भारतीय गाँवों की रक्षा हमारे उपन्यासों का दायित्व बन गया । इसलिए स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में बिगड़ते भारतीय गाँवों को ही प्रमुख विषय के रूप में स्वीकार करने लगा । "इन उपन्यासों ने देश के तीन चौथाई भाग में हो रहे गंभीर परिवर्तनों की ओर उपन्यास के पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया था ।"[1]

ग्रामांचल से संबंधित उपन्यासों में समाज के यथार्थ एवं निश्चित सत्य को चित्रित करने का प्रयास दिखाई पड़ता है । इन उपन्यासों में किसी एक विशेष स्थान या गाँव को प्रमुखता देकर उस गाँव में हुए परिवर्तन के आधार पर देश के परिवर्तन को चित्रित करने की कोशिश हुई है । मेरीगंज (मैला आँचल), गंगौली (आधागाँव) आदि ऐसे ही स्थान हैं जिसके आधार पर लेखकों ने संपूर्ण भारत के ग्रामांचल को चित्रित किया है । ग्रामीण चेतना से युक्त उपन्यासों में भारत के सामाजिक जीवन के इतने विस्तृत और गहरे वर्णन उपलब्ध हैं जिनके आधार पर हम अपनी जानकारी बढ़ा सकते हैं । ग्रामांचल के उपन्यासों में [illegible] निराशा, वेदना, दुःख, शारीरिक पीड़ा आदि ही अधिक रूप से दिखाई पड़ती है । क्योंकि उस समय भारत के

गाँवों की स्थिति ठीक वैसी ही थी । ज़मीन्दारों एवं पूँजीपतियों के शोषण तंत्र, राजनैतिक नेताओं के छल कपट, दरिद्रता, नैतिक मूल्यों के पतन, औद्योगिक विकास का प्रभाव आदि ने भारत के गाँवों की स्थिति को बहुत अधिक शोचनीय बना दिया । नागार्जुन का "बलचनमा", "वरुण के बेटे", भैरवप्रसाद गुप्त का "गंगामैया", फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आँचल", राही मासूम रज़ा का "आधागाँव" आदि उपन्यासों में ये समर समस्यायें हम देख सकते हैं । "हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में आरंभ से लेकर अंत तक निराशा और वेदना के सूत्र गुँथे हुए हैं कहीं वर्षा के अभाव में अन्न नहीं उगाया जा सकता तो कहीं ज़मीन्दारों और पूँजीपतियों के शोषण अत्याचारों के कारण आजीविका के साधन समाप्त हो जाते हैं । आदमी के टूटने के साथ ही पारिवारिक विघटन होता है और नैतिक मूल्यों के संक्रमण का इतिहास जन्म लेने लगता है ।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष में भी ग्रामीण चेतना युक्त उपन्यासों की अपनी विशिष्टता है । ये सभी उपन्यासकारों ने अपने अपने ग्रामांचल को उसकी पूरी सच्चाई के साथ चित्रित करने के लिए अपने ग्रामांचल की भाषा का प्रयोग किया है । हिन्दी में ग्रामीण चेतना से युक्त उपन्यास की परंपरा बहुत सुदृढ और संपन्न है । जिस उद्देश्य को लेकर इस उपन्य परंपरा का प्रारंभ हुआ था उस उद्देश्य की पूर्ति में यह परंपरा पूर्ण रूप से सफल निकले हैं ।

---

1. हिन्दी तथा अंग्रेज़ी के आँचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन -

अध्याय : छः

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में शिल्पविधान

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय विधा है । उपन्यास की रचना प्रक्रिया को ही उसके शिल्पविधान के नाम से अभिहित किया जाता है । साहित्यकारों ने अपने कथ्य को - प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए शिल्पविधान के विभिन्न तत्वों का सहारा लिया है । डॉ. राही मासूम रज़ा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के सजग संवेदनशील और सशक्त साहित्यकार हैं । उन्होंने नौ उपन्यासों की रचना की है । सभी उपन्यासों में उन्होंने शिल्पगत प्रयोग करने का भी प्रयास किया है । पिछले तीन अध्यायों में रज़ाजी के उपन्यासों को ग्रामचेतना, नगरचेतना, मुसलमान जीवन के विभिन्न संदर्भ आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया गया है । आगे उनके उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन करने का प्रयास किया जायेगा ।

शिल्पविधान और हिन्दी उपन्यास

शिल्पविधान के लिए हिन्दी में शिल्पविधि, शिल्प-अशिल्पन आदि शब्द भी प्रयुक्त है । अंग्रेज़ी में इसके कई प्रतिशब्द हैं । जैसे टेकनिक[1], डिसाईन[2], कंस्ट्रक्शन[3], आर्टिस्ट्री[4], फोर्म[5] आदि ।

शिल्पविधान के ज़रिए ही साहित्यकार द्वारा विषय प्रस्तुत किया जाता है और विषय ही शिल्प के लिए आधार प्रस्तुत

---

1. Technique - Technic
2. Design
3. Construction
4. Artistry
5. Form

करता है । शिल्पविधान का मतलब है रचना के आद्योपांत प्रबंध अथवा संयोजन । किसी भी रचना का आरंभ से लेकर अंत तक कौशलपूर्ण संयोजन, व्यवस्था अथवा प्रबन्ध "शिल्पविधि" या शिल्नविधान" कहलाता है ।

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार शिल्पविधि किसी चीज़ के बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका है । किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं उनके समुच्चय को शिल्पविधि के नाम से पुकारा जाता है ।[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है - "किसी भाव को किसी एक निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं वही उस कला की शिल्पविधि है ।"[2] डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त के अनुसार शिल्प ही वह माध्यम है जिससे उपन्यासकार को अपने विषय का अनुसंधान और विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थबोध कराता है, और अंततोगत्वा उसका मूल्यांकन करता है । शिल्प के माध्यम से ही वह अनुभवों को सम्यक् कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ होता है।"[3]

शिल्पविधान के निर्माण में जितने उपकरणों का प्रयोग होता है वही शिल्पविधान के तत्व कहलाते हैं । "शिल्पविधि के तत्व के रूप में कथानक, कथोपकथन, पात्र एवं चरित्रचित्रण, देशकाल, शैली एवं उद्देश्य आदि उपकेरण के रूप में प्रयुक्त होते हैं ।"[4] इन तत्वों के योग से उपन्यास के शिल्पविधि का निर्माण होता है । यह तत्व अक्सर प्रत्येक उपन्यास में होते है, किन्तु इनके प्रयोग में भिन्नता भी होती है । इसलिए ही भिन्न-भिन्न शिल्प के उपन्यास लिखे जाते हैं ।

---

1. बृहत् हिन्दी कोश (ज्ञानमण्डल लिमिटेड) - पृ. 1239
2. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - श्री लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 2
3. उपन्यास : संवेदना स्वरूप और शिल्प - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पृ. 117
4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास - डॉ. तहसीनदार दुबे - पृ. 14

उपन्यास के अभिव्यक्ति पक्ष का महत्व असन्दिग्ध है । शिल्प के बिना कोई भी कलारूप पूर्ण नहीं होता । किसी कृति के निर्माण में उसके अवयवों का कुशल संयोजन आवश्यक है । यह संयोजन किसी कृति का शिल्पविधान है । शिल्पविधि का संबंध वस्तुतः उपन्यास के सृजन पक्ष से है । उपन्यासकार अपने अनुभवों को जिस प्रक्रिया से रचना में उतारता है वही उसका शिल्पविधान है । भाववस्तु उपन्यास का आंतरिक पक्ष है । शिल्पविधान उसका बाह्य पक्ष । अतः उपन्यास सृजन के बाह्य पक्ष को हम शिल्प पक्ष कहते हैं । दर असल यह पुरानी धारणा है । आधुनिक साहित्य के संदर्भ में इन दोनों पक्षों का महत्व समान है । ये एक दूसरे से भिन्न नहीं । उसको अलगाना भी नामुमकिन है । रचनाकार अपने कथ्य के लिए अनुकूल शिल्प में अपनी बात अधिक सार्थक ढंग से प्रस्तुत करता है । मानव शरीर में अवयवों के उचित संयोग के समान उपन्यास में भी शिल्पविधि का उचित संयोग आवश्यक है । "प्रत्येक मानव में अंगों की समानता रहती है । हाथ, पैर, आँख, नाक, मुख आदि प्रायः प्रत्येक शरीर में रहता है । इन्हीं तत्वों के योग से शरीर का निर्माण होता है । अतः सृष्टि या निर्मिति के लिए शिल्पविधि का होना आवश्यक होता है ।"[1]

उपन्यास के प्रारंभिक युग में शिल्प का अलग अस्तित्व माना गया था । उसके शिल्प पक्ष की सार्थकता के आधार पर उसको अच्छा या बुरा भी माना जाता था । शिल्पविधि के अंतर्गत आनेवाले तत्व जैसे कथावस्तु, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, एवं उद्देश्य आदि के समुचित संयोजन में ही किसी उपन्यास

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास - डॉ. तहसीलदार दुबे - पृ. 9

की सार्थकता मानी जाती है । किन्तु आज स्थिति बदल गयी है । स्वाधीनता परवर्ती उपन्यास तक आते आते यह देखा जाता है कि उपन्या में वस्तु और शिल्प दोनों का समान महत्व है । आज हम यह देखते है कि इन शिल्पविधि के तत्व प्राय: सभी उपन्यासों में होते हैं । किन्तु उसके प्रयोग में भिन्नता दिखाई पडती है ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधा में बहुत अधिक बदलाव आ गया । पूर्ववर्ती उपन्यास की परंपरा का निर्वा इस युग में भी हुआ है, विशेष परिवर्तन के साथ । इस युग के हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ बहुआयामी हैं । तदनुसार उसकी शिल्पविधि में भी अन्तर दिखाई देता है । अत: उपन्यास नित्य नये नये शिल्प प्रयोगों के साथ प्रस्तुत किये जाने लगा है ।

उपन्यास तो आधुनिक युग की आम जनता की सशक्त वाणी है । विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों के कारण स्वतंत्रता के बाद उपन्यास का विविधमुखी रूप हमारे सामने आया है । वर्ण्यवस्तु की विविधता के अनुरूप उसकी शिल्पविधि में भी सहज परिवर्तन आ गया है । स्वातंत्र्योत्तर काल की सामाजिक परिस्थितियाँ राजनीतिक वातावरण तथा जनजीवन की अनुभूतियाँ पराधीनता के काल से भिन्न प्रकार की है स्वातंत्र्योत्तर युग में तो उपन्यास का फलक इतना अधिक विस्तृत हुए है कि शिल्पविधि में भी अनेक भिन्नतायें दिखाई देने लगी हैं । वास्तव में उपन्यास की शिल्पविधि उपन्यासकार के दृष्टिकोण पर निर्भर होतो है । इस संबंध में पर्सी ल्युबक का कथन है -"उपन्यास काल की शिल्पविधि

अथवा कारीगरी की जटिलता का निर्धारण मूलत: कथाकार के दृष्टिकोण पर निर्भर है कथाकार का कथा के साथ जो दृष्टिपात्रक संबंध होता है वही आखिर में उपन्यास में शिल्प निर्धारण करता है ।"[1]

प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास मन बहलाव के लिए लिखे जाते थे । प्रेमचन्द ने उसे "मानवचरित्र का चित्र" बनाया । उनके युग के उपन्यास जीवन के दर्पण बनने के साथ साथ दीपक भी बना । प्रेमचन्दोत्तर युग में वह मानव मन के विश्लेषण में प्रवृत्त हुआ । अवचेतन मन की अंध गुफाओं में प्रवेश कर उसने मनोविश्लेषण से प्राप्त सेक्स किरणों द्वारा वहाँ बसनेवाली विकृतियों, विसंगतियों, ग्रंथियों और कुंठाओं को खोज निकाला और उनकी चीरफाड की । इसके लिए उसने जिस शिल्प का आविष्कार किया वह चेतना प्रवाह पद्धति थी । इस शिल्प में विशुद्ध संवेदनों और बिंबों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है । अज्ञेय के "शेखर एक जीवनी" शीर्षक उपन्यास इसकी अच्छी मिसाल है । पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग इस उपन्यास में हुआ है ।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में से कुछ की प्रवृत्ति बृहत्काय उपन्यास लिखकर अपने युग की बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए अपने समय को अपनी दृष्टि से मूर्त करना रही है । यशपाल के "झूठा सच" एवं "मेरी तेरी उसकी बात", अमृतलाल नागर का "बूँद और समुद्र", नरेश मेहता का "यह पथ बंधु था", शिवप्रसाद सिंह का "अलग अलग वैतरणी" इस तरह के उपन्यास है ।

---

1. The Craft of Fiction - Percy Lubbock - P.251

लघु उपन्यास भी स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखे गये थे जिसमें जीवन के किसी अनुभव को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया गया है और जीवन के खण्ड चित्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म गहन अनुभूतियों के साथ इसमें साकार हो उठा है । निर्मल वर्मा के "वे दिन", राजेन्द्र यादव का "सारा आकाश", उषा प्रियंवदा के "पचपन खंभे लाल दीवारें", "रुकोगी नहीं राधिका" आदि लघु उपन्यास के शिल्प में प्रस्तुत हुए ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में शिल्प के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हुए हैं । कहीं समय का संकुचन है कहीं कथा-रहित उपन्यास की सृष्टि हुई है और कहीं "पंचतंत्र" और "कथासरितसागर" की लोक कथात्मक पद्धति अपनायी गयी है । अमृतलाल नागर के "अमृत और विष" में एक रचना के भीतर दूसरी रचना, एक उपन्यास के भीतर दूसरा उपन्यास रखकर नया प्रयोग किया गया है ।

कथानक शिल्पप्रधान उपन्यासों में "कब तक पुकारूँ" (रांगेय राघव), झूठा सच (यशपाल), भूले बिसरे चित्र (भगवतीचरण वर्मा), यह पथ बन्धु था (नरेश मेहता) आदि विशेष उल्लेखनीय रहे हैं । चरित्र चित्रण को महत्व प्राप्त उपन्यासों में शहर में घूमता आईना (अश्क), शह और मात (राजेन्द्र यादव), विशेष चर्चित है । देशकाल प्रधान उपन्यासों में स्थानीय रंग से रंगायित उपन्यास जैसे दुखमोचन (नागार्जुन), बलचनमा (नागार्जुन), परती परिकथा (रेणु), आधागाँव (रज़ा) एवं विदेशी रंग से रंगायित उपन्यास जैसे वे दिन (निर्मल वर्मा), दूसरी तरफ (महेन्द्र भल्ला) आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । उद्देश्य शिल्प के तहत "बया का घोंसला" को लिया जा सकता है । शैली शिल्प की दृष्टि से "सूरज का सातवां घोडा" (धर्मवीर भारती) अपने अपने अजनबी (अज्ञेय) आदि विशेष सराहनीय उपन्यास हैं ।

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का शिल्पविधान

डॉ. राही मासूम रज़ा स्वतंत्रता परवर्ती युग के हिन्दी उपन्यास साहित्य में खास पहचान लेनेवाले उपन्यासकार है । उनके उपन्यास शिल्प की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं । समय की पुकार एवं समाज की चुनौती को पूरा करने में भी उनके उपन्यास पूर्ण रूप से सफल निकले हैं । रज़ा ने अपने उपन्यासों में शिल्पविधि के नवीन नवीन प्रयोगों को अपना लिया है । स्वातंत्र्योत्तर युग के लगभग सभी उपन्यासकार नवीनतम प्रयोगों की ओर आकर्षित है । "उपन्यासों का उद्देश्य किसी समस्या, घटना, चरित्र अथवा वर्णन में न होकर अभिनव प्रयोग से हो गया है । जिससे जितने भी उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उतने ही प्रयोग शिल्प के क्षेत्र में हो रहे हैं । किसी निश्चित ढंग या पद्धति का अभाव है ।"[1]

रज़ा के उपन्यास अपने समय के समाज के सही दस्तावेज़ है । समय परिवर्तन के साथ समाज में हुए परिवर्तन को उन्होंने नवीन शिल्प वैभव के साथ अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

कथानक विधान

"कथानक उपन्यास का अहम् शिल्प-तत्व है । इसके ज़रिए ही उपन्यास की रूपरेखा निर्मित होती है । यही उपन्यास का नींवाधार तत्व है । यही उपन्यास में कथा को प्रस्तुत करता है,

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास - डॉ. तहसीलदार दुबे - पृ. 57

चरित्रों का उद्‌घाटन करता है, देशकाल संबंधी सीमाओं का निर्धारण करता है तथा भाषाशैली को नया रूप प्रदान करता है । इसलिए ही अधिकांश विद्वानों ने इसे प्राणतत्व माना है ।"[1] "कथानक {प्लोट} कथा की विशिष्ट योजना, उसका नवीन विन्यास है । फोस्टर की राय में कथानक घटनाओं का विवरण हैं । एडविन म्योर भी शृंखलाबद्ध घटनाओं और उनको परस्पर संबद्ध करनेवाले आधार को कथानक कहते हैं ।"[2]

"कथानक उपन्यास का ढाँचा है । उसकी रचना का मूलाधार है । उपन्यासकार अपने लक्ष्य के अनुसार उसका निर्माण करता है । क्रमबद्धता के अनुरूप कथानक क्रमबद्धता और विस्तार प्राप्त करता है । कथानक विशेष घटना-क्रम होता है । कथानक में कार्य पात्र और विचार-तत्व का संश्लेषण होता है । इन तीनों तत्वों के आधार पर कथानक के तीन भेद हैं - कार्यव्यापार प्रधान - कथानक, चरित्र प्रधान कथानक और विचार प्रधान कथानक ।"[3]

---

1. Aspects of the Novel - E.M.Forster - P.27
   We shall all agree that the fundamental aspect of Novel is its story telling aspects.
2. Ibid - P.93
   A Plot is a narrative of events, the emphasis fallin on casuality.
   The structor of the Novel - Edwin Muir - P.16
   Plot is the chain of events is a story and the principle which knits it together.
3. उपन्यास : स्वरूप, संरचना और शिल्प - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पृ. 71

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा का "भूले बिसरे चित्र" रांगेय राघव का "कब तक पुकारूँ", यशपाल का "झूठा सच", नरेश मेहता का "यह पथ बन्धु था" इत्यादि कार्य व्यापार प्रधान कथानकवाले उपन्यासों में प्रमुख हैं । अश्क का "शहर में घूमता आईना", राजेन्द्र यादव का "शह और मात" आदि चरित्रप्रधान कथानक से युक्त उपन्यास हैं । नदी के द्वीप (अज्ञेय), गंगा मैया (भैरवप्रसाद गुप्त आदि विचारप्रधान कथानक से युक्त उपन्यास के उदाहरण हैं । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कथानक विधान का विविध रूपों में विकास हुआ ।

कथानक विधान की दृष्टि से डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में भी पर्याप्त विविधता पायी जाती है । उन्होंने बडे आकारवाले उपन्यास भी लिखे हैं जैसे "आधागाँव" और छोटे आकार वाले उपन्यास भी लिखे हैं जैसे - सीन-75 आदि । ग्रामीण जीवन के समान नगर-जीवन को भी उनके उपन्यासों के कथानक में जगह मिली है । कार्य व्यापार प्रधानता और चरित्र प्रधानता के साथ साथ विचार प्रधानता को भी उन्होंने अपने उपन्यासों के कथानक में प्रस्तुत किया है ।

ग्रामीण जीवन पर केन्द्रित आधागाँव का कथानक विधान

आधागाँव राही मासूम रज़ा का बहुचर्चित उपन्यास है जिसका मुख्य स्वर प्रयोगधर्मिता है । यह रचनाधर्मिता कहीं उसके कथानक के रूप में रचाव में द्योतित होती है तो कहीं संवेदनाओं की सघन बुनावट में । लेखक ने इस उपन्यास में उत्तरप्रदेश के गंगौली के

आधे टुकडे में बसे लोगों की कहानी को ही कथानक का आधार बनाया है । लेखक ने आप बीती और जग बीती ज़िन्दगी के तीन चार दशकों के अन्तराल में फैले हुए समय की कहानी कही है जो न धार्मिक हैं न राजनीतिक । गंगौली गाँव की हकीकत की पकड विविध कोणों से हुई है जो लेखकीय दृष्टिकोण का अंजाम है । "राही ने अपने कथा सफर में बनते बिगडते आर्थिक-संबंधों, उभरते राजनीतिक मुद्दों, फैले हुए सामाजि परिदृश्यों, पर्व-त्योहारों एवं परंपरागत मूल्यों आदि सभी को यथेष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की ।"[1] इस प्रकार ग्रामीण जीवन की समग्र कथा आधागाँव में लेखक ने उपस्थित की है ।

आधागाँव में मुस्लिम जन जीवन की बाहरी भीतरी सच्चाइयाँ अपने विविध रंगों में अच्छी-बुरी परछाइयों को लेकर प्रस्तुत हुई है । लेखक स्वयम सपरिवार उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है और कथानक का प्रारंभ किया है अपने बचपन से । बचपन में न समझ पानेवाली बातें जिन्हें अब खूब समझता है बखूबी चित्रित करता है और किसी प्रकार का संकोच अनुभव नहीं करता । अपने नाते-रिश्तों के परिचयात्मक विवरणों के बाद उनके अच्छे-बुरे क्रिया व्यापारों को बडी निस्संगता एवं समीपी द्रष्टा के रूप में चित्रित करता है ।

मुस्लिम जन-जीवन के पर्व-त्योहारों का वर्णन भी उपन्यास में महत्वपूर्ण बन पडा है जिससे गंगौली का लोकजीवन स्पष्ट होता है । ताज़िए निकलने, मजलिसें जमने, नौहों (मरसिया) के स्वर फूटने, ईद-बकरीद की खुशियाँ मनायी जाने, इमामबाडे चहल-पहल से

---

1. आँचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प - डॉ. ज्ञानचन्द्र गप्त -

भरे भरे दिखाई देने के अच्छे अच्छे चित्रण उपन्यास में उपलब्ध है । गंगौली गाँव में गाजीपुर से नहीं लखनऊ से तक के मियां लोग आते हैं अपने मुरादें की मन्नतें मानते हैं । गाँव में महीनों पहले ताज़ियों की तैयारियाँ होने लगतीं, मातम की प्रैक्टिस की जाती । इन ताज़ियों में हिन्दु-मुसलमान दोनों ही शरीक होते हैं । छोटे-बड़े ताज़ियों को लेकर दोनों पट्टियों के मुटाव, मारपीट और लट्टबाज़ी जिसमें सिर फूटते है लोग घायल होते हैं, थानेदार रूपया ठेंठता है आदि के दृश्य सही परिप्रेक्ष्य में लेखक ने अंकित किया है ।

आधागाँव में उद्घाटित आज़ादी के पहले और बाद की विविध राजनीतिक स्थितियाँ एवं पाकिस्तान के निर्माण के प्रश्न को बहुत दूर तक गंगौली के आम आदमी की मानसिकता से जोडकर सोचने विचारने का उपक्रम किया गया है । गंगौली की दोनों पट्टियों में दोनों पीढियों के लोग अलग अलग सोचते हैं । कुछ तो पाकिस्तान जाने में हित समझते हैं तो कुछ हिन्दुस्तान में रहने में। कम्मो-सईदा सिर्फ अलीगढ़ को लेकर चिन्तित है । बूढे हक्कीम सैयद अली कबीर अपने पारिवारिक संदर्भ में ही घटना-क्रम को जाँचते हैं । "ए बशीर ! ई पाकिस्तान त हिन्दु मुसलमान को अलग करने को बना रहा बाकी हम त ई देख रहे कि ई मियाँ बीबी, बाप-बेटा और भाई-बहिन को अलग कर रहा ।"[1] गंगौली के आदमी का सोच तो यही है कि यह पाकिस्तान क्या है, कैसे बनेगा और इससे क्या मिलेगा । पाकिस्तान चले जाने पर क्या क्या तरक्कियाँ - उपलब्धियाँ होती है - इसका जिक्र करने पर

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 404

मिग्दाद कहते हैं - हम ना जानेवाले है कहीं । जाऐं ऊ लोग जिन्हें हल-बैल से शरम आती हैं । हम त किसान है तन्नु भाई । जहाँ हमारा खेत, हमारी ज़मीन- वहाँ हम ।"[1] इसके बावजूद पाकिस्तान बना औ इस बनने में अनेक परिवार टूटे और अनेक प्रकार की यातनाओं के शिका बने । इसका मार्मिक वर्णन लेखक ने किया है । साथ साथ ज़मीन्दारी समाप्ति का भी उल्लेख उन्होंने किया है ।

आज़ादी के बाद के बदले हुए भावात्मक एवं सांस्थानिक दोनों रूपों को लेखक ने यथाशक्ति अभिव्यक्त करने की कोशिश की है । गाँवों में जहाँ ज़मीन्दारी की समाप्ति हुई है वहाँ एक नया छुटभइया वर्ग और पैदा हुआ है जो भ्रष्टाचारी है तथा रात-दिन साजिशों के तानेबाने बुनना, पुलीस से मिलकर गाँव में दलबन्दी करना, नये किस्म की ओछी राजनीति आदि इसके विविध कार्य हैं । इस प्रकार आधागाँव के कथानक विधान में ग्रामीण जीवन की तमाम बातों का ब्यौरा लेखक ने बडी कुशलता एवं मार्मिकता के साथ पेश किया है ।

हिम्मत जौनपुरी का कथानक विधान

डॉ. राही मासूम रज़ा ने हिम्मत जौनपुरी में व्यक्तिमन की पीडाओं के वर्णन द्वारा नगरीय समाज की विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । इसका कथानक तीन भागों में विभाजित है । प्रथम भाग में हिम्मत जौनपुरी

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 268

के पूर्वजों की जीवन कथा तथा हिम्मत के बचपन का वर्णन है । दूसरे भाग में बंबई में हुए एक दुर्घटना में हिम्मत की मृत्यु का वर्णन है । तीसरे भाग में हिम्मत के बंबई जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । हिम्मत जौनपुरी तो लेखक के बचपन का साथी था । लेखक कहते हैं "दोनों का जन्म एक ही दिन पहली आगस्त सन सत्ताईस को हुआ था उपन्यास के प्रथम भाग में रज़ा ने मुसलमान समाज के सामाजिक मर्यादाओं संस्कारों, रीति-रिवाज़ों का विशद वर्णन हिम्मत तथा उनके पूर्वजों की पारिवारिक ज़िन्दगी के वर्णन द्वारा किया है । दूसरे और तीसरे भाग में बंबई महानगर की भीड और इसी भीड में चकनाचूर होनेवाली भारत की असहाय गरीब जनता का चित्रण किया गया है । गफ्फार चा नामक चाय के दूकानदार और जमुना नामक वेश्या की ज़िन्दगी की परिस्थिति से कथाकार ने स्वतंत्र भारत की असली रूप को प्रस्तुत किया है । बंबई आकर हिम्मत जौनपुरी कुछ दिन तक इधर उधर अकेला भडकता रहा । इसी बीच ही गफ्फार चा और जमुना से उसका परिचय हुआ । जमुना की करुणकथा सुनकर वह जमुना से प्रेम करने लगा । बंबई तो दुर्घटनाओं का केन्द्र है । एक दुर्घटना में हिम्मत फंस जाता है और वहाँ उसकी मृत्यु भी हो जाती है ।

इस उपन्यास द्वारा रज़ा ने भारतीय मुसलमान समाज के संस्कारों एवं अन्तर्द्वन्द्वों का चित्र प्रस्तुत किया है । साथ ही साथ बंबई महानगर की भीड में फँसकर ज़िन्दगी को विनष्ट करनेवाले भारतीय मध्यवर्ग के असली रूप को भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 53

टोपी शुक्ला का कथानक विधान

टोपी शुक्ला राजनीतिक समस्या पर आधारित चरित्र प्रधान उपन्यास है । इसमें बलभद्रनारायण शुक्ला उर्फ "टोपी शुक्ला" नामक एक लाचार इनसान की जीवन गाथा प्रस्तुत की गयी है । टोपी शुक्ला अपने भरे पूरे परिवार में उपेक्षित है । इसलिए ही वह अपने पडोस के इफ्फन नामक मुस्लिम लडके के साथ मित्रता बरतने लगा । घरवालों की उपेक्षा की भावना तथा इफ्फन के घरवालों का उसके प्रति लगाव टोपी को इफ्फन का जिगरी दोस्त बना देता है । वह अपने घरवालों से ज़्यादा इफ्फन तथा उसके घरवालों को प्यार करने लगा । इफ्फन के पिता का स्थानांतरण हो जाने के कारण वह अपने घरवालों के साथ दूसरे देश में चले जाते हैं । बडे हो जाने पर इफ्फन अलीगढ यूनिवेर्सिटी का अध्यापक बना । उस समय टोपी शुक्ला वहाँ हिन्दी में एम.ए. कर रहा था ।

टोपी शुक्ला इफ्फन के घर में रहने लगा । टोपी और इफ्फन को अपनी घनिष्ठ मित्रता के कारण ज़िन्दगी में बहुत अधिक यातनायें भोगनी पडीं । टोपी और इफ्फन की पत्नी सकीना के आत्मीय मित्रता को लोग गलत मानकर अपवाद प्रचरण करने लगे । इन सभी अफवाहों से तंग आकर इफ्फन परिवार समेत जम्मु चला जाता है । इफ्फन के घर में टोपी शुक्ला अकेले रहने लगा । अकेलेपन और भय से तंग आकर अंत में वह आत्महत्या कर लेता है ।

इस उपन्यास के कथानक द्वारा लेखक ने यह बताया है कि हिन्दु मुसलमान मित्रता केवल एक हिन्दु या मुसलमान के द्वारा तो संभव है । किन्तु उसमें व्यापकता और गंभीरता तब मिलती है जब संपूर्ण देशवासी इसके लिए प्रयत्न करते हैं ।

ओस की बूँद का कथानक विधान

"ओस की बूँद" उपन्यास में एक मुसलमान परिवार की कहानी द्वारा देश विभाजन के पश्चात् भारत में हुए सांप्रदायिक दंगों का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है । वजीर हसन इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है । वे तो मुस्लिमलीग के सदस्य है । वे पहले देश विभाजन से सहमत थे लेकिन देशविभाजन के पश्चात् वे अपना घर और देश छोडकर जाना नहीं चाहते । लेकिन उनका पुत्र पाकिस्तान चला जाता है । पुत्र-वियोग में उनकी पत्नी पागल हो जाती है । वजीर हसन के घर में पीछे के मन्दिर में पूजा करने के विषय में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में झगडा शुरू हो जाता है । इसी झगडे में पुलीस की गोली लगकर वजीरहसन की मृत्यु हो जाती है वजीर हसन की कब्र उनकी मृत्यु स्थान में बनाने का निश्चय किया गया । हिन्दुओं ने इसका विरोध किया । इसके लिए वजीर हसन की पुत्री शहला ने मुकदमा दाखिल किया । रास्ते में हुए एक बल्वे में शहला फँस गयी । बेहाल शाह ने इसी बल्वे से उसकी रक्षा कर उसे अपने घर में छिपा लिया । लेकिन बेहाल शाह ने उसके साथ बटजोरी की । बलवाईयों ने घर में घुसकर दोनों का खून किया ।

इस कथानक विधान के ज़रिए रज़ा ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि देश विभाजन से हमें शांति नहीं केवल अश्लील और विभीषिका ही मिली है । वजीर हसन द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि जाति और धर्म से हमारा जन्मस्थान ही अधिक बढिया है । "इसलिए नहीं कि वे पाकिस्तान के विरोधी हो गये थे ।

इसलिए भी नहीं कि हिन्दुस्तान से उन्हें प्यार हो गया था । बल्कि इसलिए कि हिन्दुस्तान उनका घर था । और घर नफरत और मुहब्बत दोनों ही से ऊँचा होता है ।"[1]

इस कथानक द्वारा रज़ाजी अपना साम्प्रदायिकता विरोधी नज़रिए के साथ साथ देशप्रेम की भावना को भी व्यक्त किया है ।

दिल एक सादा कागज़ का कथानक विधान

दिल एक सादा कागज़ का कथानक फिल्मी ज़िन्दगी और वहाँ के माहौल से जुड़ा कथानक है । रफ्फन के कथानक द्वारा रज़ा ने फिल्मी कहानी लेखक की ज़िन्दगी की आशा-निराशाओं मोहभंग सफलता-असफलता आदि की असली तस्वीर पेश की है । रफ्फन और जन्नत की विवाहेतर ज़िन्दगी द्वारा भारतीय मध्यवर्ग के मोहभंग का खाका रज़ा ने खींचा है । रफ्फन और जन्नत का प्रेम विवाह था । जन्नत तो रफ्फन के साहित्यकार व्यक्तित्व से प्रेम करती थी । रफ्फन के अध्यापक व्यक्तित्व को जन्नत पसन्द नहीं करती थी । रफ्फन का दूसरी लड़कियों के साथ संपर्क जन्नत को नापसन्द था । रफ्फन पर यह अपवाद फैल गया कि उसने शारदा नामक एक युवती से बलात्कार किया है । इसलिए ही उसको स्कूल से निकाल दिया गया । जीविकोपार्जन के लिए वह बंबई आकर कहानियाँ लिखने लगा । अंत में वह एक मशहूर फिल्मी लेखक बन जाता है । रफ्फन के व्यक्तित्व

---

1. ओस की बूँद - राही मासूम रजा - पृ. 2।

में रज़ा के व्यक्तित्व की झलक दिखाई पडती है । इसके बारे में लेखक बताते है - "दिल एक सादा कागज़ मेरी जीवनी भी हो सकता है पर वह मेरी जीवनी नहीं है ।"[1]

"दिल एक सादा कागज़" उपन्यास के कथानक संयोजन के तहत, राही ने अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया है । गरीबो, भाषा समस्या, प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि ।

सीन-75 का कथानक विधान

सीन-75 का कथानक फिल्मी संसार से संबंधित है । अली अमजद एक मध्यवर्गीय साहित्यकार है । जो उनके सुन्दर सपने संजोते हुए फिल्म के मायालोक बंबई में पहुँचता है । वह अपने मित्रों के साथ एक फ्लैट में रहने लगा । उसी फ्लैट में अनेक लोग रहते थे । उन लोगों के बीच हमेशा झगडे होते रहते थे । एक दिन अली मुल्लाह नामक एक मित्र झगडा करके फ्लैट से चला जाता है । वी.डी.नामक एक साथी भी इस प्रकार के एक झगडे में फँस जाता है । कोई उसका खुन करता है । हरीश राय नामक एक साथी एक बडी फिल्म बना रहा था । उसने अली अमजद को उसका स्क्रिप्ट राइटर बना दिया । एक दिन सीन-75 लिखने के बाद अली अमजद अपने को बहुत अकेला सा महसूस करने लगा । उसके मन में जीवन के प्रति घोर निराशा उत्पन्न हो गयी । अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया । नींद की गोलियाँ खाकर वह सोने लगा दूसरे दिन मरा हुआ पाया गया । लेकिन उसकी मृत्यु का हरीश राय पर कोई असर नहीं पडा । वह अत्यंत निस्संग भाव से अली मुल्लाह

से कहने लगा -"हाँ कल रात किसी वक्त वह मर गया ।"[1] फिल्मी ज़िन्दगी में व्याप्त हृदयहीनता का पर्दाफाश इस उपन्यास में हुआ है ।

कटरा बी अर्जु का कथानक विधान

कटरा बी अर्जु में रज़ा ने आपातकालीन दुरितपूर्ण ज़िन्दगी को कथानक के रूप में स्वीकार किया है । उत्तरप्रदेश के एक गाँव में रहनेवाले देशराज नामक मोटर-मैकेनिक और उसकी पत्नी बिल्लो की ज़िन्दगी की दारूण अंत दिखाकर उन्होंने आपातकालीन नाटकीय परिस्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । देशराज एक सीधा-सादा व्यक्ति था । अपना एक घर बनाना उसका सपना था । दिन-प्रतिदिन कठिन परिश्रम करके वह इस सपने को साकार करता है । आपातकाल के समय देशराज के एक मित्र राजाराम के संबंध में पुलीस उससे पूछताछ करती है । ठीक उत्तर न पाकर पुलीस उसे खूब मारती है । उसे इतना अधिक पीटती और अपमानित करती है कि वह पागल हो जाता है

संजय गाँधी के आगमन के सिलसिले में उसका स्वागत के लिए गली को चौडी करने के लिए देशराज की पत्नी से कहा जाता है कि वह कहीं चली जायें । वह इनकार करती है । जब घरों को तोडकर रास्ता चौडा कर रहा था उस समय बिल्लो एक बुलडोसर की टक्कर से घायल होकर अपने नवजात शिशु के साथ मर जाती है । इमर्जेंसी के समाप्त हो जाने के बाद हुए एक जुलुस में एक ट्रक की दुर्घटना में देशराज की भी मृत्यु हो जाती हैं ।

---

1. सीन-75 - राही मासूम रज़ा - पृ. 13।

इस प्रकार आपातकाल के समय सत्ताधारी शासक ने किस प्रकार अपने अधिकार शक्ति का खुला खुला प्रयोग निरीह जनता पर किया इसका वास्तविक चित्र कटरा बी अर्जु में हुआ है ।

इस प्रकार राही मासूम रज़ा के उपन्यासों के कथानक विधान की दृष्टि से पर्याप्त विविधता और नवीनता पायी जाती है । उनके उपन्यासों में गंवई ज़िन्दगी के साथ साथ शहरी ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं को भी रेखांकित किया गया है ।

पात्र और चरित्र चित्रण

कथानक के बाद पात्र और चरित्र चित्रण को उपन्यास में प्रमुख स्थान है । उपन्यास का संबंध मानव जीवन और जगत से है । इसलिए ही मानव के चरित्र का निर्धारण उपन्यास के लिए अनिवार्य है । उपन्यासकार मानव चरित्र की विशेषताओं के विश्लेषण के ज़रिए समाज को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं । "वास्तव में उपन्यास का विषय मनुष्य और उसका जीवन है । इसलिए स्वभावतया ही इसका महत्व कुछ बढ जाता है । एक श्रेष्ठ उपन्यासकार यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि मानव चरित्र की वे कौन कौन सी विशेषताएँ हैं, जिसके आधार पर किसी मनुष्य की मनुष्यता को देखा परखा जा सकता है ।"[1]

उपन्यास में पात्र और चरित्र चित्रण की अनेक पद्धतियाँ है । जैसे वर्णनात्मक पद्धति, विवरणात्मक पद्धति, विश्लेषणात्मक पद्धति, नाटकीय पद्धति और प्रतीकात्मक पद्धति आदि ।

---

1. हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास - डा. प्रताप नारायण

उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत कथानक का विस्तार उपन्यास में प्रस्तुत चरित्र ही करते है । उपन्यासकार के विचारों के ये वाहक होते हैं । रचनाकार अपने विचारों को इनके मुँह से कहलवाते हैं । इसलिए डॉ. रामलाल शुक्ल ने लिखा है -"यदि कथानक उपन्यास का मेरूदण्ड है तो चरित्र चित्रण उसका प्राण है ।"[1] डॉ. शीलाकुमारी अग्रवाल के अनुसार -"उपन्यास मनुष्य की यथार्थताओं से बना एक घर है उसके सदस्य है पात्र ।"[2] एडविन म्योर के अनुसार पात्र इतने घुले-मिले रहते हैं कि उन्हें अलग अलग नहीं किया जा सकता ।"[3]

पात्रों का वर्गीकरण ई.एम.फॉर्स्टर के विचार में दो प्रकार के होते हैं - स्थिर (फ्लैट) और गतिशील (राउण्ड) "एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार "पात्र दो प्रकार के होते है व्यक्तिप्रधान और वर्ग प्रधान ।"[4] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पात्र और चरित्र चित्रण के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के प्रयोग पा सकते हैं ।

---

1. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - डॉ. रामलाल शुक्ल - पृ. 113
2. हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - डॉ. शीला कुमारी - अग्रवाल - पृ. 245
3. Structure of the Novel - Edwin Muer - P.41
   The characters are not a part of the machinery of the plot nor is the plot, merely a rough frame work around the characters, on the contrary, both are inseparatably knit together.
4. उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पृ. 150-151

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में पात्र और चरित्र चित्रण

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में इन सभी प्रकार के चरित्र चित्रण पद्धति को अपनाया है । उनके सभी पात्र परिस्थिति से उत्पन्न हैं । तत्कालीन परिस्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने सभी प्रकार के चरित्रचित्रण पद्धति को अपनाया है ।

आधागाँव एक बृहत्काय उपन्यास हैं । जिसमें एक पूरे गाँव के आधे हिस्से और वहाँ के लोगों के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । इसलिए ही आधागाँव में पात्रों की भरमार है । उपन्यास में ऐसा कोई पात्र नहीं जिसे अधिक प्रमुखता दी जाए । फिर भी फुन्ननमियाँ, तन्नु, सईदा आदि ऐसे पात्र है जो हमारे मन को गहरे में प्रभावित करते हैं ।

फुन्नन मियाँ आधागाँव उपन्यास का जीवन्त और प्रभावशाली पात्र है । उपन्यास का सबसे अधिक शक्तिशाली एवं निर्भीक व्यक्तित्व फुन्नन मियाँ का ही है । फुन्नन मियाँ उत्तर पट्टी में रहनेवाला है । वह अशिक्षित आदमी है । उपन्यास के प्रारंभ में उसका परिचय हाथ में लाठी लिए हुए झगडालु साहसी तथा निर्भीक व्यक्ति के रूप में होता है । शिक्षा की कमी फुन्ननमियाँ के पूरे व्यक्तित्व में दिखाई पडती है । इसलिए करामत अली खाँ की पत्नी कुलसुम को उसके घर से निकालकर अपने घर बिठा लेता है । उसके साथ उनका प्रेम बुढापे तक अविचल रहता है । उससे उनके दो बेटे और तीन बेटियाँ पैदा हो जाते हैं । लेकिन फुन्नन मियाँ बदकिस्मत बाप थे । उनका बडा बेटा द्वितीय विश्वयुद्ध में मारा गया । एक बेटा बचा था वह 1942 के आन्दोलन में कासिमाबाद थाने के अग्निकाण्ड में पुलीस की गोली का शिकार हो गया । इलाज के अभाव में बेटी की भी मृत्यु हुई ।

फुन्नन मियाँ ब्रिटिश सरकार के भक्त नहीं थे और न कांग्रेसी भी । वे एक बहादुर आदमी थे । अपनी स्पष्टवादिता, तीर्ख भाषा, और अहं की वृत्ति के कारण उसने अनेकों की शत्रुता मोल ले रही थी । वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित कार्य करते थे । उपन्यास के समाप्त होने के पूर्व उपन्यासकार ने फुन्नन मि का अंत अत्यंत कलात्मक सूझ बूझ से दिखाया है । रात के अंधेरे में कायर दुश्मनों द्वारा उनकी हत्या की जाती है । फुन्नन मियाँ का चरित्र वास्त में आधागाँव की प्रेरक शक्ति है । वह इस उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक छाया हुआ है । उपन्यास के अधिकांश पात्रों को उसने किसी न किसी रू में प्रभावित किया है ।

आधागाँव उपन्यास में तन्नु एक प्रभावशाली पात्र है उपन्यास में एक समझदार व्यक्ति के रूप में तन्नु का चित्रण हुआ है । गंगौली गाँव के प्रति अतीव प्यार रखनेवाला व्यक्ति है वह। देश विदेश घूमने के कारण गाँव की समस्याओं के प्रति वह खास दृष्टिकोण रखता है साम्प्रदायिकता और पाकिस्तान की स्वार्थपूर्ति राजनीति का वह विरो करता है । सैनिक के रूप में उसने द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लिया है ।

तन्नु एक परंपरागत रूढिवादी परिवार का अंग है । इसी रूढिग्रस्तता से बाहर निकलने में वह असफल भी है । इसलिए ही अपने रिश्ते की बहिन सईदा के प्रति अपने प्यार का कुर्बान करके वह दूसरा विवाह कर लेता है और पाकिस्तान चला जाता है । इस प्रकार उपन्यास के आदि से अंत तक तन्नु के निराशापूर्ण जीवन चित्रित है ।

आधागाँव उपन्यास में सईदा एक आधुनिक नारी की भूमिका निभाती है । वह पढने के लिए अलीगढ विश्वविद्यालय जाती है वहाँ से बो.टी.की डिग्री प्राप्त करके स्कूल में नौकरी करती है । गंगौली के रूढिवादी परिवारों के लिए लडकियों का नौकरी करना बिलकुल मंगलकार्य नहीं था । इसलिए समाज में सईदा की बदनामी होती है । तन्नु के प्रति उसके मन में प्यार है परन्तु दुर्भाग्यवश उसका विवाह कहीं और तय किया जाता है । ज़मीन्दारी शक्ति के उन्मूलन के बाद बिगडी हुई आर्थिक स्थिति में सईदा की नौकरी से परिवार का पालन पोषण होने लगा । अपने परंपरागत जीवन की विषमताओं एवं कुरूपताओं से सईदा संत्रस्त है । इसलिए वह अपना गाँव छोडकर अलीगढ जाना चाहती है । इस प्रकार सईदा के द्वारा रूढिग्रस्तता में फँसी आधुनिक पढी लिखी नारी की दुर्दशा को चित्रित किया गया है ।

टोपी शुक्ला "टोपी शुक्ला" उपन्यास का प्रमुख पात्र है । यह उपन्यास वास्तव में टोपी शुक्ला की जीवनी है । उसका जीवन आदि से अंत तक संघर्षरत था । बचपन में घरवालों का उपेक्षा भाव, इफ्फन नामक मुसलमान के साथ की मित्रता के कारण सही जानेवाली यातनायें, जीवन भर बेरोज़गार रहने की यंत्रणा, सलीमा नामक मुसलमान लडकी के साथ का प्रेम असफल हो जाना अंत में इफ्फन द्वारा उपेक्षित हो जाना ये सब टोपी को आत्महत्या करने के लिए मज़बूर करते हैं । टोपी इफ्फन से अलग होना नहीं चाहता था । लेकिन उस समय का वातावरण इतना अधिक दूषित था कि वह दोनों की मित्रता बीच में ही टूट जाता है । एक हिन्दू होकर अलीगढ यूनिवेर्सिटी में पढने के कारण उसे कोई नौकरी भी नहीं मिलती थी । वह कहता है -"तुम्ही बताओ भाई, इस

यूनिवेर्सिटी में पढकर मैं किसी और यूनिवेर्सिटी के नायक तो रह नहीं गया । यदि यह स्कैंडल चालू रहा तो क्या मुझे यहाँ नौकरी मिलेंगी ।"[1] इफ्फन के घर की एकांतता और भविष्य के प्रति आशंका टोपी को आत्महत्या के लिए प्रेरित करते हैं । और अंत में वह आत्महत्या ही करते हैं ।

टोपी शुक्ला की अपेक्षा इफ्फन का जीवन आदि से अंत तक समृद्ध ही था । अपने परिवारवालों से तथा पत्नी से उसे अत्यधिक प्यार मिलता था । टोपी शुक्ला तो उसका आत्म मित्र था । टोपी के साथ की मित्रता के कारण ही इफ्फन को जीवन में बहुत अधिक यातनायें झेलनी पडीं । टोपी के साथ की मित्रता के कारण उसको कालेज में रीडरशिप्प नहीं मिलती । फिर भी वह टोपी को इतना प्यार करता है कि वह टोपी को मुसलमान होने की इच्छा करता है । "वह यह सोच रहा था कि अगर टोपी की जगह कोई मुसलमान रहा होता तो शायद लोग इतना बुरा नहीं मानते ।"[2] टोपी के साथ की मित्रता के कारण इफ्फन को आखिर टोपी तथा अपने घर को छोडकर परिवार समेत जम्मू चला जाना पडा ।

इफ्फन की पत्नी सकीना भी इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है । सकीना तो हिन्दुओं से नफरत करती थी । क्योंकि हिन्दु बलवाईयों के हाथों से उसके पिता की मृत्यु हुई थी । किन्तु महेश जो बलवाईयों के हाथों से सकीना की रक्षा करता है जो खुद बलवाईयों का शिकार हो जाता है । महेश का भाई रमेश सकीना को एक बहिन के

---

1. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 91

समान प्यार करता है । सकीना यद्यपि हिन्दुओं से नफरत करती है तो भी रमेश को अपना ही भाई समझती है और रमेश के हाथों में वह राखी बाँधती है । रमेश तो युद्धक्षेत्र में मर जाता है । इसलिए ही अपने पति के मित्र टोपी के हाथ में राखी बाँधने के लिए वह डरती है । क्योंकि उसके मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि जिसके हाथ में वह राखी बाँधेगी वह मर जायेगी । इसलिए ही लोग टोपी और सकीना के संबंध को गलत मानतो है ।

सकीना, मुन्नीबाबू, लजवन्ती, आदि कुछ ऐसे पात्र भी है जो टोपी शुक्ला उपन्यास के वातावरण को अधिक मज़बूत बना देता है ।

"हिम्मत जौनपुरी" उपन्यास में हिम्मत उपन्यास का प्रमुख पात्र है । इस उपन्यास में हिम्मत जौनुपरी की जीवन गाथा को प्रस्तुत किया गया है । लेखक ने हिम्मत जौनपुरी का परिचय इस प्रकार देते हैं - "श्री हिम्मत जौनपुरी की कहानी एक ऐसे निहत्ते की कहानी है जो जीवन भर जोवन का हक मांगता रहा । जो एक सीन से दूसरे सीन में डिज़ाल्व होता रहा । और जो डिज़ाल्व होने की इस कोशिश में फेड-आउट हो गया ।"[1] रज़ा ने हिम्मत जौनपुरी के द्वारा एक सामान्य व्यक्ति के अरमान के टूटने और बिखरने का चित्र उपस्थित किया है । बंबई में आकर हिम्मत जौनपुरी को मित्रता गफ्फार चा नामक चाय के दूकानदार से तथा जमुना नामक वेश्या से होता है । वह फुटपाथ पर ही रहता था । जमुना की करुण कथा सुनकर वह जमुना से प्रेम करने लगा ।

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 54

वह एक फिल्म प्रोड्यूसर बनना चाहता था । और हमेशा इसी स्वप्न में ही मग्न था । "मैं कई दिन बंबई में ठहरा । परन्तु हिम्मत से मेरी मुलाकात नहीं हुई । क्योंकि मैं एक कनवर्टेवल शिवरले में था और हिम्मत फुटपाथ पर । मैं दौलतमन्दों को अपनी क्रांतिकारी कवितायें सुना रहा था और हिम्मत भीड लगाकर अपना मंजन बेच रहा था और अपनी फिल्म प्रोड्यूस करने और जमुना से ब्याह करने का सपना देख रहा था ।"[1] इस प्रकार सपना देखते-देखते यथार्थ का सामना करने के लिए वह असमर्थ था । उसका अंत भी एक सपने के समान हुए । बंबई में हुए एक दुर्घटना में उसका अंत भी हो जाता है ।

जमुना हिम्मत जौनपुरी उपन्यास का नारी पात्र है जो प्लेटफार्म पर रहनेवाली एक वेश्या है । जमुना के द्वारा रज़ा ने भारत की निर्धन नारियों की असहाय अवस्था प्रस्तुत की है । भूख मिटाने के लिए ही जमुना वेश्यावृत्ति अपनाती है । वह अकेली है । वह अपने माँ-बाप, भाई बहिन किसी को नहीं जानती उसका जन्म प्लेटफार्म पर हुई । वह यह नहीं जानती थी कि घर माने क्या है । हिम्मत जौनपुरी उसका विवाह कर उसकी रक्षा करना चाहता है । लेकिन वह सख्त शब्दों में कहती है -"तू अपन से बिआह बनाने को मत चाह । हम झूठे हैं ।"[2] इस प्रकार रज़ा ने जमुना के द्वारा भारतीय समाज की दरिद्र नारी की शोचनीय अवस्था की तस्वीर खींची है । इस उपन्यास का गफ़्फार चा, बिल्लो आदि भी प्रमुख पात्र हैं ।

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 99
2. वही - पृ. 126

"ओस की बूँद" उपन्यास का प्रमुख पात्र है वजीर हसन वह अपने समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था और मुस्लिमलीग का सदस्य भी था । वह देश विभाजन के पक्षपाती था लेकिन पाकिस्तान बन जाने के बाद वह अपना देश छोडकर पाकिस्तान जाना नहीं चाहता । वजीर हसन के घर के पीछे एक मन्दिर है । उसी मंदिर में पूजा करने के विषय में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच झगडा शुरू होता है । इसी झगडे में पुलीस की गोली से वह मारा जाता है ।

वजीर हसन एक ऐसा व्यक्ति है जो मुस्लिम लीग के पक्षपाती था । लेकिन बाद में उसे मालूम हुआ कि देशविभाजन तो एक गलत निर्णय ही था । अपनी मिट्टी के साथ उनका इतना अधिक लगाव था कि वह उसे छोडकर जाना नहीं चाहता था । "इसलिए नहीं कि वह पाकिस्तान के विरोधी हो गया था । इसलिए भी नहीं कि हिन्दुस्त से उन्हें प्यार हो गया था बल्कि इसलिए कि हिन्दुस्तान उनका घर था और घर नफरत और मुहब्बत दोनों ही से ऊँचा होता है ।"[1]

शहला "ओस की बूँद" उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है । शहला तो आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है । वह अपने पिता के नाम पर चलनेवाली मुकदमे संबंधी बातचीत के लिए चली जाती है । उस समय बल्वे शुरू हो गये । बेहाल शाह ने शहला को अपने घर में छिपाया और बाद में उसके साथ बलात्कार किया । शहला इस अन्याय को चुपचाप सहती है । इस अन्याय और अत्याचार के

---

1. ओस की बूँद - राही मासूम रज़ा - पृ. 21

खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए वह अशक्त थी । उसी प्रकार वकील शिवनारायण भी उससे प्रेम करने लगा । शिवनारायण का विवाह हो चुका था फिर भी वह शहला से प्रेम करने में नहीं हिचकता । वह शहला से कहता है -"मैं तुम्हारे लिए घर-बार, माता-पिता, बाल-बच्चे सबको छोड दूँगा ।"[1] लेकिन शहला तो उसके प्रेम को ठुकरा देती है । वह शिव-नारायण से विवाहकर उसके परिवार का सर्वनाश करना नहीं चाहती । वह कहती है -"सबको छोड देना किसी सवाल का हल नहीं है ठाकुर साहब आदमी कोई गुलदान नहीं होता कि उसे एक कमरे से उठाकर दूसरे कमरे में रख दिया जाए । मैं इस घर की चहीती लडकी हूँ ठाकुर साहब । मै आधी तिहाई चीज़ों को नहीं लेती और आप पूरे के पूरे मुझे मिल नहीं सकते । किसी दिन पूरे बनकर आइए मेरे सामने, तब देखूँगी कि आप कैसे लगते हैं मुझे ।"[2] इस प्रकार वह सख्त आवाज़ में शिवनारायण के प्रेम को ठुकरा देती है ।

बेहाल शाह भी "ओस की बूँद" उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है जो एक ऐसा व्यक्ति है कि हमेशा जनता को धोखा देता रहता है । बेहाल शाह अलौकिक शक्तियों को अपने वश में रखने का स्वांग करके साधारण जनता को धोखा देता है । अंधविश्वासों में जकडे साधारण जनता हमेशा इसका शिकार होती रहती है । बेहाल शाह के दुर्व्यवहार का एक शिकार है शहला । वह बल्वे के समय का लाभ उठाकर शहला को अपने घर में शरण देने का बहाना बनाकर उसके साथ बलात्कार करता है । इन उदाहरणों द्वारा लेखक यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि बेहाल शाह जैसे व्यक्तियों द्वारा हमारे समाज में किस प्रकार हानि पहुँचती हैं ।

---

1. ओस की बूँद - राही मासूम रज़ा - पृ. 113

वजीर हसन की पत्नी हाजरा, वकील शिवनारायण आदि भी इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है ।

रफ्फन "दिल एक सादा कागज़" का प्रमुख पात्र है । रफ्फन के द्वारा लेखक ने आधुनिक फिल्मी कहानी लेखकों के जीवन की आशा निराशाओं, सफलताओं, असफलताओं का वास्तविक चित्रण किया है । रफ्फन साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाला व्यक्ति था । पढाई समाप्त होने के बाद वह कालेज में अध्यापक का काम करता है । लेकिन रफ्फन का पारिवारिक जीवन संतुष्ट नहीं था । उसकी पत्नी जन्नत रफ्फन के साहित्यकार व्यक्तित्व से ही प्रेम करती थी । रफ्फन दूसरी नारियों के साथ खुला व्यवहार करता था । जन्नत यह पसन्द नहीं करती। साथ ही साथ रफ्फन पर यह आरोप लगाया गया कि उसने एक युवती का बलात्कार किया । इसलिए उसको नौकरी से निकाल दिया गया । जीविकोपार्जन के लिए वह बंबई पहुँचता है वहाँ फिल्मी लेखक और कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है । "रफ्फन तो नारी पुरुष के अनैतिक संबंध को उचित समझते हैं । उनकी दृष्टि में मनुष्य को अन्य प्राथमिक आवश्यकताओं के समान शारीरिक आवश्यकताओं को भी प्रमुखता देना चाहिए । सेक्स तो उनकी राय में कोई गाली नहीं है ।

रफ्फन को जीवन में बहुत अधिक असफलताओं का सामना करना पडा । वैयक्तिक रूप से और पारिवारिक रूप से उसका जीवन संघर्षरत था । इसलिए ही अपना सारा संबंध छोडकर वह बंबई चला जाता है ।

दिल एक सादा कागज़ में चित्रित जन्नत एक मध्यवर्गीय परिवार की लडकी है । जन्नत के मन में भविष्य के प्रति बढ़िया सपना था । उसका विचार था कि रफ्फन भविष्य में उच्चकोटि का साहित्यकार बन जायेगा । लेकिन विवाह के बाद जन्नत को इस बात का पता चलता है कि "लेखक से तो उसने प्यार किया था, विवाह तो किया था उसने गवर्मेंट हायर सैकेंडेरी स्कूल के हिस्टरी टीचर से जो हर महीने तनख्वाह पाता था ।"[1] साथ ही साथ रफ्फन के परस्त्री संबंध के बारे में जानने से जन्नत बहुत निराश और दुखी हो जाती हैं । जन्नत की मनस्थिति का चित्रण करते हुए लेखक कहते हैं -"उसके हिस्से में तो अधूरा आदमी आया । न जाने कितने लोगों.... लोगों नहीं लडकियों के पास उसके व्यक्तित्व और ज़िन्दगी के टुकडे पडे होंगे । एकदम से वह यह सोचकर डर गयी कि रफ्फन की मौत के बाद वे तमाम लोग उसके टुकडों को निकाल कर उसकी शायरी, उसकी ज़िन्दगी और उसकी मौत पर अपना हक साबित करने में लग जायेंगे ।"[2]

पुष्पा, मिसेज चावला, शाहजदा, काश्मीरी आदि इस उपन्यास के अन्य गौण पात्र है जिनके ज़रिए उन्होंने फिल्मी जगत में व्याप्त अनैतिक संबंधों का पर्दाफाश किया है ।

"सीन-75" का अली अमजद एक मध्यवर्गीय लेखक और साहित्यकार है । जो फिल्म डायरेक्टर बनने की अभिलाषा लेकर बंबई पहुँचता है । बंबई में वह अपने मित्रों के साथ एक फ्लैट में रहने लगा ।

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 76
2. वही - पृ. 169

मित्रों के बीच के झगडे के कारण अली अमजद बहुत ऊब जाता है । वह अपने एक मित्र हरीश राय की फिल्म के लिए स्क्रिप्ट बना रहा था । एक दिन सीन-75 लिखने के बाद वह अपने आप को बहुत उकताया सा दिखाई देने लगा । वह नींद की गोलियाँ खाकर सो गया । दूसरे दिन वह मरा हुआ पाया गया । यहाँ अली अमजद एक ऐसा व्यक्ति है जो परिस्थिति से तादात्म्य करने में पूर्णतः असफल है । उसके मन की ऊब, निराशा, अकेलेपन, अजनबीपन उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है ।

इस उपन्यास का दूसरा पात्र है हरीश राय । जो फिल्म-निर्माता है । हरीश राय के ज़रिए फिल्म फील्ड में व्याप्त निस्संगता, अमानवीयता, हृदयहीनता का परिचय हमें मिलता है । अली अहमद की मृत्यु का उस पर कोई असर नहीं पडा, वी.डी., अलीमुल्ला आदि भी इस उपन्यास के प्रमुख पात्र है जिनके ज़रिए लेखक ने भारत के निर्धन मध्यवर्गों की दयनीय अवस्था की ओर संकेत दिया है ।

"कटरा बी अर्जु" का प्रमुख पात्र है देशराज जो आपातकालीन विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों का शिकार है । वह एक मोटर मैकेनिक है और वह अपनी पत्नी के साथ शांतिपूर्वक जीवन बिता रहा था । आपातकाल के समय उनके एक मित्र राजाराम के संबंध में पुलिस उससे पूछताछ करती है ठीक उत्तर न मिलने पर वे लोग उसे पीटते हैं । शारीरिक पीडा और मनोव्यथा ने देशराज को पागल बना दिया । पुलिस ने पागल देशराज को घर पहुँचा दिया । पुलिस स्टेशन में देशराज को बहुत अधिक यातनायें सहन करना पडा इसका वर्णन लेखक इस प्रकार करते हैं -"जगदम्ब प्रसाद ने उसे घसीटकर दूसरी दीवार पर दे मारा ।

और फिर तीनों सिपाही बडी मेहनत से "पूछताछ" करने लगे । उसे उल्टा लटका दिया गया । उसके पाखाने की जगह में पिसी हुई लाल मिर्च भर दी गयी । उसे इलैक्ट्रिक के शॉक दिये गये पर उसे भी जिद आ गयी थी कि वह अपने दोस्त का पता नहीं बतायेगा । वह न जाने कितनो बार बेहोश हुआ और उसे न जाने कितनी बार होश आया । उसने गिनना भी छोड दिया था । वह सिर्फ यह खेल खेल रहा था कि यह शर्त लगता अपने आपसे कि ठोकर कहाँ पडेगी या डण्डा कहाँ पडेगा या सिगरेट कहाँ बुझाई जायेगी ।" अंत में उसकी मृत्यु किसी एम.पी. के स्वागत के लिए आयोजित जुलुस में ट्रक की दुर्घटना में हो जाती है ।

बिल्लो देशराज की पत्नी है । उसके मन में भविष्य के प्रति सुन्दर सपना था । देशराज के साथ एक छोटे से घर में बहुत शांति-पूर्वक जीवन बिता रही थी । आपातकाल के समय देशराज को पकडने से उसकी ज़िन्दगी के काले दिन प्रारंभ हुए । संजय गांधी के स्वागत के लिए गली को चौडी करते समय बिल्लो का घर को तोडा गया उसी अवसर पर एक बुलडोसर के चक्कर में फँसकर बिल्लो अपने नवजात शिशु के साथ मर जाती है । इस प्रकार देशराज -बिल्लो द्वारा आपातकालीन समय के षड्यंत्रों एवं दुर्व्यवहारों का शिकार बने भारत के आम आदमियों का चित्रण उन्होंने उपस्थित किया है ।

शंभू मियाँ, शहनाज, इतवारी बाबा, आशाराम आदि के द्वारा समाज में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, भिक्षाटन आदि समस्याओं का वर्णन हुआ है, इसलिए इन पात्रों के चरित्र चित्रण भी मार्मिक बन पडे हैं ।

---

1. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 182

कथोपकथन

किसी भी उपन्यास में कथोपकथन का अत्यंत महत्व होता है । कथोपकथन को संवाद अथवा वार्तालाप भी कहते हैं । कथोपकथन से तात्पर्य है "कथन" और "उपकथन" । इसमें एक पात्र अपनी बात कहता है, और दूसरा उसका उत्तर देता है । इस प्रकार दोनों के बीच जो परस्पर बातचीत होती है, उससे पाठक को तथ्यों की जानकारी मिलती है । कथोपकथन उपन्यास का एक अनिवार्य अंग है । उपन्यास का पूर्ण प्रासाद कथोपकथनों पर ही आधारित रहता है । कथावस्तु का विकास और पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करने में कथोपकथनों का उपयोग किया जाता है ।

रज़ा की एक खासियत यह है कि उन्होंने कथा के प्रवाह में बहकर परिस्थितियों एवं घटनाओं को प्रभावशाली एवं मार्मिक वर्णन किया है । उन्होंने पात्रों के वार्तालाप से समाज को व्यक्त करने का कार्य किया है । आधागाँव में मरसिया, ताज़िया, मोहर्रम आदि रज़ा के अभिव्यक्ति शैली की खासियत के परिणामस्वरूप जीवंत बन गये हैं ।

"आधागाँव" उपन्यास में रज़ा स्वयम कथावाचक बन गया है । इसलिए ही इस उपन्यास में उन्होंने अपने मुँह से अनेक वर्णन किये हैं । जैसे मोहर्रम का वर्णन वे इस प्रकार करते है - "शिआ मुसलमान ढाई महीने का मोहर्रम मनाते हैं।..... मोहर्रम के ढाई महीने में वे खुशी का कोई काम नहीं करते । अगर किसी कारण से कोई हँस भी पडता है तो बुज़ुर्ग लोग उसे डांट-डपट देते हैं ।" "हिम्मत जौनपुरी" उपन्यास में

भी रज़ा ने अपने को कथावाचक के रूप में नियुक्त किया है । हिम्मत जौनपुरी उनके बचपन का दोस्त था । यह हिम्मत जौनपुरी जीवन के अंतिम समय में उसके पास आकर यह प्रार्थना की कि उसकी कहानी लिखना । इसका परिणाम है हिम्मत जौनपुरी । हिम्मत जौनपुरी के साथ के बातचीत को लेखक ने उसी ढंग से उपन्यास में अभिव्यक्त किया है । "मैं हिम्मत को देखकर भौंचक्का रह गया और मुझे फौरन याद आया कि मैं ने कई बरस पहले हिम्मत से किया हुआ एक वादा तोडा था । इसलिए मैं उसे लिपट गया । "क्या हाल है ?" उसने कहा - "यार सुना है तुम स्टोरी रैटर हो गये हो । मेरी कहानी भी लिख डालो । तुम्हारी फिल्म का क्या हुआ ? मैं उसकी बात टाल गया । "अरे यार मासूम तुम नहीं लिखोगे मेरी कहानी तो और कौन लिखेगा ?"[1]

राही मासूम रज़ा का प्रमुख लक्ष्य अपने उपन्यास के ज़रिए तत्कालीन समाज की विभिन्न समस्याओं का असली रूप दिखाना हो है । उस समय देश भर में व्याप्त सबसे बडी समस्या सांप्रदायिकता की समस्या थी । उन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के संवाद द्वारा इस समस्या के विकराल रूप को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । अलीगढ से आये हुए काली शेरवाणी लडके के द्वारा सांप्रदायिकता की अग्नि को फैलाने का प्रयत्न उन्होंने दिखाया है । काली शेरवाणीवाला लडका कहता है - "अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकडिए आज इस रस्सी का नाम मुहम्मदालो जिन्ना है । आप अल्लाह की ताकत है उठिए और कहिए कि आप पाकिस्तान बनाना चाहते हैं । गाँधीजी हो या नेहरू । गलियों गलियों मारे मारे फिरते हैं । और एक हमारे कायदे अजम है जिनसे मिलना इतना मुश्किल है कि लाट साहब को भी उनसे वक्त लेना पडता है ।"[2]

---

1. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 102
2. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 260

टोपी शुक्ला उपन्यास में इफ्फन और टोपी शुक्ला के वार्तालाप द्वारा रज़ा ने पाकिस्तान के निर्माण और सांप्रदायिकता की भावना के मूल आधार को स्पष्ट किया है - इफ्फन तो परिस्थिति से भयभीत है। लेकिन टोपी के मन में नफरत है

इफ्फन - "लेकिन फिर मुसलमानों को नौकरियाँ क्यों नहीं मिलो ?"
टोपी - क्योंकि उनके दिल में चोर है "
इफ्फन - क्या चोर ?
टोपी - यह चोर है कि चूँकि उन्होंने पाकिस्तान बनवा लिया है इसलिए भारत पर उनका क्या हक रह गया है । भाई हर मुसलमान के दिल में पाकिस्तान की ओर एक खिडकी खुली हुई है ।"[1]

उसी प्रकार दरिद्रता, नारियों की विभिन्न समस्यायें, नारी पुरुष के अनैतिक संबंध के कारण उत्पन्न समस्यायें, फिल्मो ज़िन्दगी में व्याप्त विभिन्न समस्यायें आदि का चित्रण उन्होंने पात्रों के वार्तालाप द्वारा अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है । रज़ा के सभी उपन्यास मध्यवर्ग की समस्य पर आधारित है । उन्होंने अपने समस्त उपन्यासों में मध्यवर्ग पर मूल्य वृद्धि के कुपरिणामों का विशद चित्रण किया है । "कटरा बी अर्ज़ु" में इतवारी बाबा देशराज और बिल्लो के घर बनाने की योजना के उल्लेख का उत्तर इस प्रकार देते है - "अरे घर का चक्कर छोड तू लोग । जब शाहजहाँ ताजमहल बनवाईन रहा तब सस्ती का ज़माना रहा । अब तो क्रिया-कर्म में पहले के सादी विवाह से दूना तिनगुना खरच हो जाता है ।"[2]

---

1. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ.87
2. कटरा बी अर्ज़ु - राही मासूम रज़ा - पृ.20

रज़ा पात्र तथा परिस्थिति से जुड़े वातावरण को भी मूर्त करने में सफल निकले हैं । "आधा गाँव" के हक्कीम साहब, फुन्नन मियाँ आदि के वार्तालाप में जो नीरवता है उसका उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति क्षमता द्वारा मूर्त रूप दिया है । "हक्कीम साहब हौज के किनारे उकड़ूँ बैठे हौज के काई लगे पानी से कोई मशवरा कर रहे थे । हौज का पानी उन्हों की तरह बूढा और पुराना मालूम हो रहा था ।"[1] यहाँ नीरवता का अमूर्त वातावरण साकार हो उठता है ।

देश, काल और वातावरण

देश काल और वातावरण से तात्पर्य किसी विशेष देश के विशेष काल में हुई घटनाओं का वातावरणानुकूल चित्रिकरण । इसके अंतर्गत लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-नीति आदि का सम्यक चित्रण दिखाई पडता है । रचनाकार जिस घटना का वर्णन करते हैं वह वातावरण के लिए अनुरूप होना चाहिए । "आधुनिक आलोचक मानता है कि मनुष्य सामाजिक परिस्थिति की उपज है । अत: परिस्थिति के संदर्भ में पात्रों का चरित्र चित्रण अधिक संगत और स्वाभाविक बन पड़ता है ।"[2]

डॉ. राही मासूम रज़ा के सभी उपन्यास देश, काल और वातावरण के अनुकूल है । उन्होंने अपने उपन्यासों में तत्सामाजिक घटनाओं को अत्यंत स्वाभाविकता एवं सजगता के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है । समय परिवर्तन के साथ ही साथ समाज में होनेवाले

---

1. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 340
2. महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्प विधि - डॉ. शंकर वसंत मुदगल - पृ. 26

परिवर्तन को अंकित करने की विशेष दिलचस्पी लेखक ने दिखाई है । "आधागाँव" उपन्यास में उन्होंने यह स्वीकार किया है -"यह कहानी न धार्मिक है न राजनीतिक । क्योंकि समय न धार्मिक होता है न राजनीतिक और यह कहानी है समय हो की । यह गंगौली में गुज़रनेवाले समय की कहानी है ।"[1]

"आधा गाँव" में आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद की सामाजिक राजनीतिक स्थितियाँ प्रस्तुत की गयी हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन, देश विभाजन, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में हुए परिवर्तन इन सब की बेबाक अभिव्यक्ति लेखक ने की है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले पाकिस्तान के निर्माण की मांग का असर गंगौली गाँव के मुस्लिम जीवन पर कैसे पडा है, उनकी क्या मानसिकता, देशविभाजन से कितने परिवार टूटे, कितने प्रकार की आपदाएँ घटित हुई इन सबकी मार्मिक प्रस्तुति लेखक ने की है । आजादी के पहले गाँव में ज़मीन्दारों का रोब चलता था, आज़ादी के बाद ज़मीन्दारों की जगह घुटमइया राजनीतिज्ञों ने ले लिया । इस प्रकार "आधा गाँव" के देश काल वातावरण के चित्रण में लेखक को अद्‌भुत कामयाबी हासिल हुई है । उसी प्रकार हिम्मत जौनपुरी, टोपी शुक्ला, ओस की बूँद जैसे उपन्यासों में उन्होंने तत्सामयिक वातावरण को चित्रित करने का प्रयास किया है । उस समय की ज्वलंत समस्याएँ, हिन्दु-मुस्लिम समस्या, सांप्रदायिकता आदि थीं ।"सन् 1970 में प्रकाशित लेखक के चौथे उपन्यास "ओस की बूँद" का आधार भी हिन्दु-मुस्लिम समस्या ही है । छः अध्यायों में विभाजित 127 पृष्ठोंवाले इस उपन्यास

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 11

में पाकिस्तान के बनने के बाद जो सांप्रदायिक दंगा हुए उन्हीं का जीता-जागता चित्रण एक मुसलमान परिवार की कथा द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।"[1]

1970 के बाद तो साम्प्रदायिक दंगे कम होने लगे भारत और पाकिस्तान में सब लोग शांतिपूर्वक जीवन बिताने लगे । इसलिए ही लेखक ने अपने उपन्यास के कथा विषय को बदल दिया । उनके आगे के उपन्यासों की कथाभूमि सामाजिक रूप धारण करने लगी । उस समय रज़ा फिल्मी जगत की ओर आकर्षित थे । इसलिए उनकी रचनाओं में फिल्मी ज़िन्दगी में व्याप्त विभिन्न आशा निराशाओं, सफलता-असफलताओं, हृदयहीनता आदि के चित्र दिखाई पडते हैं । "दिल एक सादा कागज़", "सीन-75" उपन्यासों में फिल्मी जगत के वातावरण का उद्घाटन किया गया है । रज़ा के अंतिम उपन्यास "कटरा बी अर्जु" का रचनाकाल 1978 है । इस उपन्यास में उन्होंने आपातकालीन अमानवीय आचरणों-स्थितियों को अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है । इस प्रकार रज़ा के सारे उपन्यासों में देश काल वातावरण का सामंजस्य देखा जा सकता है ।

उद्देश्य

साहित्य एक ऐसा माध्यम है जिसमें रचनाकार के किसी न किसी प्रकार का उद्देश्य निहित रहता है । साहित्यकार तो किसी एक प्रत्येक उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए साहित्य रचना करते हैं ।

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 176

वे सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का चित्रण कर समाज के सही रूप को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं और समाज को सच्चरित्र की ओर ले जाने की सलाह भी अपने उपन्यासों द्वारा प्रस्तुत करते हैं ।

डॉ. राही मासूम रज़ा ऐसे एक प्रतिभासंपन्न रचनाकार है जिन्होंने अपने समाज को उन्नत बनाने का भरसक प्रयास किया है । उनकी साहित्यिक रचना का मुख्य उद्देश्य ही मनुष्य को मनुष्य बनाना ही था । इसी उद्देश्य के कारण ही रज़ा ने अपने समय में व्याप्त साम्प्रदायिक समस्या का तीखा विरोध किया है । आदमी को हिन्दु या मुसलमान के रूप में न देखकर आदमी के रूप में पहचानने का उपक्रम उन्होंने बनाया । आधागाँव, टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी आदि उपन्यासों में रज़ा के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय हमें मिलता है । "जिन विशिष्ट समस्याओं को उन्होंने अपनी रचनाओं का विवेच्य विषय बनाया है उसके विविध पक्षों को उन्होंने विशुद्ध मानवीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है ।"[1]

राही ने समाज की केवल उन समस्याओं को ही चुना है जिनके बारे में उनकी जानकारी पक्की है । प्रत्येक समस्या को उन्होंने एक तटस्थ पारखी के रूप में परखकर अपने विचारों को बिना किसी हिचहिचाहट के प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया । वे समाज के प्रति प्रतिबद्ध साहित्यकार थे । इसलिए समाज की सच्चाईयों को यथावत् प्रस्तुत करने और अपने उद्देश्य की सच्ची अभिव्यक्ति देने में उनको बडी कामयाबी मिली है । "आधागाँव में गंगौली गाँव के लोकजीवन के आधार

---

1. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन - पृ. 234

"ओस की बूँद" द्वारा लेखक ने यह बात प्रस्तुत की कि पाकिस्तान के बनने के बाद मुसलमानों को बहुत हानी हुई है । उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि जन्मस्थान को अहमियत धर्म से ज़्यादा होतो है । इसलिए उन्होंने वजीर हसन से यह कहलवाया-"घर नफरत और मुहब्बत दोनों से ऊँचा होता है" दिल एक सादा कागज़ में फिल्म लेखन से जुड़े एक लेखक के ज़िन्दगी की गतिविधियों, आशा-निराशाओं, सफलताओं-असफलताओं का कच्चा चिट्ठा पेश किया गया है । उपन्यास-कार ने लिखा है कि "इसमें उनके व्यक्तित्व जोवन को बहुत सी घटनाएँ समाहित है ।"[1]

"दिल एक सादा कागज़" के समान "सोन-75" में भी फिल्मी संसार को प्रस्तुत किया गया है । साथ ही साथ बंबई महानगर की बहुरंगी ज़िन्दगी को उभारने का प्रयास इसमें हुआ है ।

"कटरा बी अर्जु" में आपातकालीन भारत की राजनोतिक समस्याओं, शासक एवं सरकारी अधिकारियों के अमानवोय आचरणों प्रस्तुत करना राही का उद्देश्य मालुम पडता है ।

इस प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से देखा जाय तो राही मासूम रज़ा के तमाम उपन्यास सोद्देश्य रचनाएँ हैं । प्रेमचन्द के शब्दों में कहा जा सकता है कि राही ने मानव चरित्र चित्र को अपने उपन्यास मे सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है ।

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 7

साहित्य रचना के विभिन्न शैलियाँ होती हैं । साहित्यकार अलग अलग शैली से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं । आशय के अनुकूल शैलो का प्रयोग होना अनिवार्य है । उपन्यास के विकास के साथ शैली शिल्प का भी विकास होता रहा ।

शैली दर असल व्यक्ति सापेक्ष्य होती है । लेखक अपनी शैलो का निर्माण स्वयं करता है । शैली लेखक के व्यक्तित्व का आईना होता है । शैली को दूसरे शब्दों में अभिव्यंजना कौशल कहना गलत न होगा । आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, इन्टर्व्यू शैली, संवाद शैली, पूर्वदोप्ति शैली (फ्लैश बैक शैली) नाटकीय शैली, प्रतोकात्मक शैलो, बिंबात्मक शैली आदि कुछ प्रमुख शैलियाँ हैं ।

हिन्दी में डॉ. राही मासूम रज़ा ने लगभग सभी प्रकार को शैलियों का प्रयोग किया है । आधागाँव, हिम्मत जौनपुरी आदि उपन्यासों में रज़ा ने फ्लैशबाक शैली का प्रयोग किया है । आधागाँव में गंगौली के नामकरण के संबंध में उन्होंने इस शैली का प्रयोग किया है । उपन्यास के प्रारंभ में लेखक कहते हैं -"कहता है कि इस गाँव के राजा का नाम गंग था और उसी के नाम पर इस गाँव का नाम गंगौली पडा । हिम्मत जौनपुरी उपन्यास में उन्होंने किस्सा गोयी की शैली को अपना लिया है ।

नाटकीय शैली का प्रयोग भी रज़ा को खासियत है जैसे -

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ.13

हे भाजप । "ई बच्छनिया की माई कहाँ चली गई है ?"
"का मालुम" कुबरा ने कहा "उ त कल से हो लापता है"
"लापता है"
"हाँ बच्छनिया त सफिरवा के साथ निकल गयी ना"[1]

"मैं तो कहती हूँ कि पाकिस्तान चले लिये" सकीना ने कहा । "यह पढाने के लिए कि मुसलमानों के आने से पहले हिन्दुस्तानी अनसिविलाइज़्ड थे ?" उसने इनकार में गरदन हिलाई । "नहीं । दोनों जगह पर धुल में रस्सी बटी जा रही है । मैं पढाने का काम ही छोड दूँगा ।"[2]

बर्कसाहब बोले, "क्या मुझसे अन्दर आने के लिए नहीं कहोगे ?" "आपका घर है । मैं कौन होता हूँ कुछ कहनेवाला । लेकिन अंदर आपकी बाँदी भी है ।"[3]

इसके अतिरिक्त फिल्मी शॉटवाली शैली का भी प्रयोग भी उन्होंने किया है । जिससे एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य उभर आता है । गाथा शीर्षक में जहाँ वाजिद मियाँ और हकीम साहब हम्माद मियां को डाँटने फटकारने आते हैं और जब हम्माद मियाँ के साथ उनका बेटा मिग्दाद भी बाहर निकल आता है तो राही पुनः प्रसंग छोडकर मिग्दाद की पुरी कथा बताने लगता है ।

रज़ा की शैली की और एक विशेषता है बिन्दुओं §.....§ का प्रयोग जहाँ उपन्यासकार कुछ कहकर पाठकों को उडान के लिए छोड देते है वहाँ उन्होंने इसका प्रयाग किया है ।

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 129
2. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 63
3. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 60

"बोलो बोलो न
तोरी बोली सुने कोतवाल । बोली बोलो ना....."[1]

"जब अछूतों के कान में पिघला हुआ सीसा डाला जा रहा था तो क्या ऊँची जात के हिन्दू इंफिरिआर्टि काम्फ्लेक्स में थे ......?"[2]

"तोको ई घर में देखके मोसे हँसे ना जाता । अगर लगे दिलगीर जौनपुरी की हवेली में ....।"[3]

भाषा शैली

साहित्य-रचना के क्षेत्र में भाषा का सर्वाधिक महत्व है । भाषा का वातावरण के अनुकूल होना अनिवार्य है । उपन्यास में तो भाषा का सर्वाधिक महत्व है । भाषा सरल और स्वाभाविक होने से ही कथानक का महत्व बढ जाता है । उपन्यासकार तो उपन्यास की परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है । कोई उपन्यासकार जनभाषा का प्रयोग करता है, कोई लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा को जानदार बनाता है । आँचलिक उपन्यासकार प्रत्येक अंचल की भाषा का प्रयोग करता है ।

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह परिवेश के अनुरूप ही है । आधागाँव उपन्यास में उन्होंने गंगौली गाँव की भाषा भोजपुरी का प्रयोग किया है । भोजपुरी भाषा से साधारण पाठक अनभिज्ञ है । इसलिए भाषा में कहीं कहीं क्लिष्टता

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 272
2. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 63
3. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 67

भी दिखाई पड़ती है । लेकिन गंगौली गाँव को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने के लिए वहाँ की बोली का प्रयोग करना अनिवार्य भी है । हिम्मत जौनपुरी उपन्यास में भी उन्होंने इसी भाषा का प्रयोग किया है । ग्रामीण भाषा होने के कारण व्याकरणिक गलतियाँ कहीं कहीं दिखाई पड़ती हैं । जैसे "माताओं" के लिए "मांओ" और "मातायें" के लिए "माँयें" । "मुझको" के लिए "आपन को" का प्रयोग दिखाई पड़ता है । "बच्चों के दाँत निकलने के दिनों में आसपास की "माँयें" उन्हें यही मसाला चटाती थी ।"[1]

"हम साली से बोलते बोलते थक गए कि ज़ुबैदा बोल । बाकी ऊ नहीं मानती । बोलती है, आपन को ज़ुबेदा अच्छा लगता है ।"[2] रज़ा के बाकी सारी उपन्यास जैसे टोपी शुक्ला, ओस की बूँद, दिल एक सादा कागज़, सीन-75, कटरा बी अर्ज़ू में उन्होंने साधारण सी हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है । तो भी उनके उपन्यासों में उन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू शब्दों का खूब प्रयाग किया है । जैसे - "मजलिसे"[3], "मातम"[4], "तमाम"[5], "इमामबाडा"[6] जैसे अरबी शब्द है जो "शादी"[7], "खवाब"[8],

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 27
2. हिम्मत जौनपुरी - राही मासूम रज़ा - पृ. 98
3. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 50
4. वही - पृ. 55
5. वही - पृ. 51
6. वही - पृ. 53
7. वही - पृ. 97
8. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 78

"आजवी"[1], सहूलत[2], बरक[3], चक्कर[4], शरम[5] जैसे उर्दू शब्दों का खूब प्रयोग भी दिखाई पडता है ।

बिम्ब और प्रतीक शैली का प्रयोग

बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग भी रज़ा की अपनी खासियत है - जैसे, इमाम चौक लकडी के खूबसूरत और सुबुक ताज़ियों के ठाठ को सोने से लगाये किसी अबला की तरह दुबककर बैठ जाते हैं ।"[6]

आधागाँव में रज़ा ने गंगौली गाँव को विभाजन की विभीषिका को झेलनेवाले भारत के गाँवों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । इनके सभी पात्र भारतीय ग्रामांचल के निवासियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । फुन्ननमियाँ, हक्कीम साहब जैसे लोग भारत के विभिन्न गाँवों में देख सकते हैं । "दिल एक सादा कागज़" का रफ्फन और जन्नत भारत के मध्यवर्गीय परिवार के पति पत्नियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । उसी प्रकार "कटरा बी अर्जु" का देशराज और बिल्लो समकालीन विडंबनाग्रस्त परिस्थितियों को छेलनेवाले भारतीय मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है ।

विभिन्न प्रकार के हिन्दी उर्दू मुहावरों का प्रयोग भी

---

1. दिल एक सादा कागज़ - राही मासूम रज़ा - पृ. 102
2. वही - पृ. 189
3. कटरा बी अर्जु - राही मासूम रज़ा - पृ. 80-81
4. वही
5. वही
6. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 70

उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है - "मौके की ताक"[1], "चहल-पहल"[2], "टका सा जवाब"[3], "टस से मस होना"[4] आदि ।

लोकोक्तियों का प्रयोग भी रज़ा की रचना कला की खासियत है - न रहिए बांस और न बाजिए बाँसुरी ।[5]

बन्दर का जाने अदरक का सवाद[6]

विभिन्न प्रकार की गालियों का प्रयोग उन्होंने आधागाँव उपन्यास में किया है । हरामजाद,[7] बदनसोब[8], मादरचोद[9] ।

जाहिर है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में रज़ा की भाषा-शैली अपने आप में हुई है । उन्होंने परंपरागत शिल्प के ढाँचे को तोडकर अपने मूल्य को उसकी मूल संवेदना के साथ प्रस्तुत करने का कार्य किया है । वह अपने उपन्यासों में स्वयम को एक पात्र बना दिया है ।

---

1. आधागाँव - राही मासूम रज़ा - पृ. 28
2. वही - पृ. 73
3. वही - पृ. 76
4. टोपी शुक्ला - राही मासूम रज़ा - पृ. 3।
5. आधा गाँव - राही मासूम रज़ा - 139
6. वही - पृ. 342
7. वही - पृ. 27
8. वही - पृ. 79
9. वही - पृ. 8।

उपन्यास द्वारा उनका मुख्य उद्देश्य तत्कालीन समय का अंकन है । इसी दृष्टि से उनके उपन्यास पूर्ण रूप से सफल है ।

निष्कर्ष

डॉ. राही मासूम रज़ा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के संवेदनशील और सजग उपन्यासकार हैं । उनके सभी उपन्यास बहुत अधिक चर्चित हैं । लेकिन उनके "आधे गाँव" और "दिल एक सादा कागज़" विशेष सफलताप्राप्त उपन्यास हैं । रज़ा आभ्यंतर के जितने शिल्पी हैं, बाहरी क्रिया-कलापों के उतना ही संवेदनशील हैं । उनके सभी उपन्यास अपने समय और समाज की प्रस्तुति की दृष्टि से सफल उपन्यास है । विषय चयन में जितनी विविधता उनके उपन्यासों में पायी जाती है, उतनी विविधता शिल्प-विधान में पायी जाती हैं । कथानक विधान, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, शैली. उद्देश्य, देशकाल वातावरण का समन्वय, भाषा शैली आदि की दृष्टि से उनके सभी उपन्यास अपनी अलग और विशिष्ट पहचान बना लेनेवाले हैं ।

उपसंहार

डॉ. राही मासूम रज़ा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं । उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में समान रूप से सफलतापूर्वक कलम चलायी है । निबन्धकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार और उपन्यासकार के रूप में उन्होंने अपने कृती-व्यक्तित्व का परिचय दिया है । राही ने अपने साहित्यिक जीवन का सफर उर्दू भाषा में कलम चलाते हुए शुरू किया था । प्रेमचन्द के समान उर्दू भाषा में लेखन-कार्य करते हुए ही राही जी ने हिन्दी में अपनी रचना-यात्रा प्रारंभ की थी । हिन्दी में उनके सर्जक-व्यक्तित्व की पहचान निबन्धकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार, कवि और उपन्यासकार के रूप में है ।

निबन्धकार के रूप में राही जी ने उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में अपनी प्रतिभा दिखाई । उनके अनुसार उर्दू और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं बल्कि दो रूप हैं । वे हिन्दी और उर्दू के अलगाव को दो राजनैतिक बदमाशियाँ मानते थे । उर्दू भाषा की "शमा" पत्रिका में राही के अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं जिनमें उन्होंने जीवन समाज तथा संस्कृति से संबंधित कई पहलुओं की चर्चाएँ खुलकर की हैं । उनके कई निबन्ध, खुली बात और व्यंग्यरचनाएँ 1962-1992 के बीच "रविवार", "गंगा", "नवभारत टाइम्स" जैसी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई । उनमें प्रकाशित कुछ निबन्धों का संकलन डॉ. कुँवरपाल सिंह ने "खुदा हाफिज़ कहने का मोड़" नाम से 1999 में प्रकाशित किया है ।

राही जी की कहानियाँ उनकी जीवन-वृत्ति का परिचायक हैं । वे आत्मानुभव के कहानीकार हैं । कवि और शायर होने के कारण उनकी कहानियों में काव्यात्मकता का ज़्यादा प्रभाव हैं । गाँव से शहर तक के जनसाधारण की ज़िन्दगी का लेखा-जोखा उन्होंने पेश किया है और पात्रों के मन में छिपे दर्द को अभिव्यक्त किया है । गाँव से शहर तक की यात्रा रज़ा की कथायात्रा है । उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं एम. एल. ए. साहब, खलीफ अहमद बूआ, सपनों की रोटी आदि ।

"छोटे आदमी की बडी कहानी" राही का रेखाचित्र है । इसमें उन्होंने हवलदार अब्दुल हमीद के व्यक्तित्व और चरित्र को प्रस्तुत किया है जो बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है ।

कवि के रूप में उनका पदार्पण पहले उर्दू में हुआ था, बाद में हिन्दी में । वे प्रगतिशील चेतना के कवि थे । नया साल (1954), मौजे गुल : मौजे सबा (1954), रक्सेमय (1964) और अजनबी शहर: अजनबी रास्ते (1967) उनके उर्दू काव्य-संकलन हैं । मैं एक "फेरीवाला" हिन्दी में प्रकाशित काव्य -संकलन है । उनका महाकाव्य "अठारह सौ सत्तावन" (1965) का प्रकाशन हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में हुआ है । रज़ा जी की काव्य-रचना की उत्सुकता समसामयिक सामाजिक जीवन के प्रति उनके लगाव के कारण है । जिन्दगी से गहरे जुडाव के कारण उनकी कविताएँ खास असरदार बन पडी हैं । यह उनके गंभीर कवि कर्म की कमाई है ।

पहली नौकरी छूट जाने के बाद आजीविका चलाने के लिए फिल्मी दुनिया में भी उन्होंने दाखिला किया । वहाँ एक सफल कहानीकार, संवाद-लेखक और पटकथा-लेखक के रूप में वे बहुत अधिक मशहूर हुए । अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के सर्वाधिक अवसर उन्हें वहाँ प्राप्त हुए । "दुल्हन", "वही जो पिया मन भाये", "आँखियों के झरोखे से", "दामाद", "गोल-माल", "मैं तुलसी तेरे आँगन की", "पति-पत्नी और वो", "एक ही भूल", "जुदाई", "विदाई" तथा मेहंदी रंग लायेगी" आदि उनके पोपुलर फिल्म-स्क्रिप्ट रहे । छोटे पर्दे में भी उन्हें बडी कामयाबी मिली । वेदव्यास के महाभारत की उन्होंने पुनर्रचना करके देश के हर घर-परिवार तक पहुँचा दिया । यह काम इस रूप में कोई और कर पाया था । इसके द्वारा राही जी को काफी यश-शोहरात भी हासिल हुआ ।

इन सबके बावजूद, राही जी की खास पहचान उपन्यासकार के रूप में हुई । उनकी पहली औपन्यासिक रचना "मुहब्बत के सिवा" उर्दू में प्रकाशित हुई । इसके बाद उनके सात उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हो आये - "आधा गाँव", "हिम्मत जौनपुरी", "टोपी शुक्ला", "ओस की बूँद", "दिल एक सादा कागज़", "सीन-75", और "कटरा बी आर्जू" । राही जी के उपन्यास समकालीन भारत के सही दस्तावेज़ हैं । हिन्दी उपन्यासकार के रूप में उनका पदार्पण "आधा गाँव" नामक आँचलिक उपन्यास के लेखक के रूप में हुआ । यह एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है । राही जी के विचार और व्यक्तित्व की झलक उनकी कई औपन्यासिक रचनाओं में मिल जाती है । प्रेमचन्द परंपरा का विकसित रूप उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है । राही ने दरअसल अपने समय और समाज के जनजीवन के समवेत रूप को ही कथात्मक अभिव्यक्ति दी है ।

उनके उपन्यासों में परिवेश के प्रति उनका गहरा लगाव परिलक्षित है । परिवेशगत अनुभवों को लेकर उनकी दृष्टि मानवीय और प्रगतिशील है । उसमें बडी कलात्मकता है ।

राही मासूम रज़ा का "आधागाँव" हिन्दी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है । महाकाव्य की तरह यह उपन्यास आधुनिक भारतीय समाज के विभिन्न विषयों को समेटे हुए हैं । परतंत्र और स्वतंत्र भारत की महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की कलात्मक अभिव्यक्ति इसमें हुई है । यह उपन्यास अभिजात-मुस्लिम समाज का अंतरंग चित्रण करता है । वहीं आज़ादी के बाद तेज़ी से हो रहे भारतीय समाज के परिवर्तनों को भी रेखांकित करता है । यह भारतीय उपमहाद्वीप के दो देशों के विभाजन की त्रासद कहानी है । स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज व राजनीति में तेज़ी से परिवर्तन परिलक्षित होने लगे । दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने देश और समाज का चेहरा बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । एक है ज़मीन्दारी व्यवस्था का उन्मूलन, नये भूमि-संबंध, पंचवर्षीय योजनाओं का लागू होना, दूसरा एक व्यक्ति और वोट का अधिकार । राही ने इस उपन्यास में इन परिवर्तनों के प्रभाव को चित्रित किया है ।

"हिम्मत जौनपुरी" भारतीय संदर्भ में मुस्लीम समाज के संस्कारों के अन्तर्द्वन्द्वों को मुखर करनेवाला उपन्यास है । "टोपी शुक्ला" शिक्षा और नौकरी के क्षेत्रों में व्याप्त सांप्रदायिक-शोषण को प्रस्तुत करता है । इसमें यह दिखाया गया है कि भारत और पाकिस्तान के रूप में देश के विभाजन ने हिन्दू और मुसलमान के मेल-मिलाप की ज़िन्दगी में खाई पैदा की है जिससे सांप्रदायिकता को बढावा मिला है ।

रज़ा का "ओस की बूँद" शीर्षक उपन्यास भी हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर केन्द्रित है । इस समस्या का विश्लेषण करते हुए लेखक ने यह दिखाया है कि यह समस्या दरअसल कुछ भी नहीं है, यह सिर्फ राजनीति का एक मोहरा है ।"दिल एक सादा कागज़" में भारत की स्वतंत्रता से लेकर बंगलादेश की स्वतंत्रता के बीच के कालखण्ड की कहानी कही गई है । इसमें मुसलमानों के मोहभंग की वास्तविकता को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया गया है । साथ ही साथ इसमें बंबई की फिल्मी दुनिया की तस्वीर भी पेश की गयी है जहाँ सैक्स, ग्लैमर, तिकडमबाजी की प्रधानता है । "सीन : 75" बंबई महानगर की बहुरंगी ज़िन्दगी के बहुसंख्यक नज़्ज़ारे प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है । फिल्मी दुनिया में व्याप्त अमानवीयता को भी इसमें दिखाया गया है ।

"कटरा बी आर्ज़ू" आपातकाल के इर्द-गिर्द की घटनाओं पर आधारित एक जीवंत कथा है । इसमें उपन्यासकार ने "गूँगी बस्ती" के "गूँगे लोगों" पर आपातकाल के दौरान उच्च स्तर के स्वार्थी-तत्वों के द्वारा घोर अन्धेरा और राजनीति के छल-कपटों का उद्घाटन किया है । आपातकाल भारतीय जनजीवन में काल-रात्री का समय था । इस काल में ऊँचे पदाधिकारियों और पुलिस ने घोर नृशंस कार्य करके जनता को संकट तथा आतंक के नीचे दबोच दिया । इन यातनाभरी घटनाओं से सब वाकिफ थे । राही ने इन घटनाओं को एक मोहल्ले के जन सामान्य के बीच, उनकी आशाओं और विश्वासों के बीच उनके मानवीय संबंधों के बीच उपस्थित कर जो मार्मिक कथा बुनी है वह बडी मार्मिक बन पडी है ।

राही जी के उपन्यासों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के बाद यह लगता है कि वे अपनी

धर्म निरपेक्ष रूझान और अभिव्यक्ति शैली की अनुपमता की दृष्टि से हिन्दी के शिखर उपन्यासकारों की कोटि में आते हैं । राही जी सही अर्थ में विद्रोही रचनाकार रहे हैं । वे मार्क्सवादी विचारधारा के बडे समर्थक रहे हैं । इसलिए ही उनकी औपन्यासिक रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों और भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ बुलन्द आवाज़ सुनाई पडती है । उनके सरोकार बहुत बडे थे । इतना बेबाक और बहादुर और सच्ची बात कहनेवाले हिन्दी और उर्दू में बहुत कम रहे ।

राही जी के उपन्यासों में मुस्लिम समाज के जीवन से संबंधित अनेक संदर्भ उद्घाटित हुए हैं । मुस्लिम समाज की धार्मिकता, पारिवारिक जीवन, विवाह, कुप्रथाएँ, तलाक, सांप्रदायिकता, नारी जीवन त्योहार-पर्व जैसे विभिन्न पक्षों-पहलुओं की ईमानदार अभिव्यक्ति उन्होंने तटस्थ दृष्टि से की है ।

राही भारत की परंपरागत साझा संस्कृति के प्रबल समर्थक थे । वे धर्म को राजनीति करनेवालों के सदैव विरोधी रहे । उन्होंने "आधा गाँव" में यह स्पष्ट कर दिया कि धर्म किसी राष्ट्र की स्थापना का आधार नहीं हो सकता । इसलिए ही वे पाकिस्तान की परिकल्पना का अपने लेखन में सदैव विरोध करते थे । राजनीति और धर्म का रिश्ता पानी और तेल जैसा है । राही ने अपने उपन्यासों और लेखन में सत्ता के लिए धर्म और जाति की राजनीति करनेवालों की बुरी आलोचना की । राही जी हर तरह की संकीर्णता और कट्टरता के विरोधी रहे हैं । चाहे वह धर्म की हो, जाति की हो, भाषा अथवा प्रांतीयता को हो । वे जीवन भर एक सही "हिन्दुस्थानियत" की खोज करते रहे ।

सांप्रदायिकता को राही जी कोढ़ मानते थे । उनके लिए हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख सांप्रदायिकता में कोई भेद नहीं था । वे हमेशा हिन्दुस्थानी कौम की बात करते थे । जीवन भर उन्होंने इसी "हिन्दुस्थानियत" को रखकर कार्य किया । उन्हें न धर्म से दिलचस्पी थी, न भाषा से, न प्रान्त के विकास से । अलीगढ़ में रहते हुए उन्होंने मुस्लिम सांप्रदायिकता के विरोध में लिखा । उनका मानना था कि मुस्लिम सांप्रदायिकता स्वयं मुसलमानों के लिए हानिकारक है । सांप्रदायिकता आज देश के लिए भयानक चुनौती बनकर सामने हैं । उनके अनुसार सांप्रदायिकता राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए विषबेल के समान है । राही जी ने चालीस साल तक अपने लेखन-कार्य के माध्यम से सांप्रदायिकता के इस संक्रामक रोग के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया । उनका विश्वास था कि जातिवाद एक पिछड़ता हुआ सामाजिक दर्शन है । यह किसी नये क्षितिज का उद्घाटन नहीं करता । सांप्रदायिकता के संबंध में जितनी सटीक और सही राय राही की थी आज उसे रेखांकित कर जाना आवश्यक है । उनका यह दृष्टिकोण "ओस की बूँद" के वज़ीर हसन के इन शब्दों में मौजूद है : "हिन्दुस्थान उनका घर था । और घर नफरत और मुहब्बत दोनों ही से ऊँचा होता है ।"

मुस्लिम जीवन और संस्कृति के चित्रण के अलावा रज़ा जी ने अपने उपन्यासों में महानगरीय जीवन और चेतना के तमाम पहलुओं का समग्र और तलख रेखांकन किया है । यह परिवेश के प्रति लेखक की जागरूकता और संपृक्ति का गवाह देता है । भीड़, मशीन, दफ्तर आदि अनेक कटघरों में बंटा हुआ मध्यवर्गीय जीवन जिन आर्थिक मसलों और रोज़मर्रा की समस्याओं से जूझ रहा है उनमें बेकारी, शोषण, आर्थिक तंगी,

आवासीय कठिनाइयाँ, अजनबीपन, अकेलापन, स्वार्थलोलुपता, अमानवीयता, स्वार्थपरता आदि प्रमुख हैं । इस दृष्टि से राही जी के "दिल एक सादा कागज़", "सीन-75", "ओस की बूँद", "कटरा बी अर्ज़ू" आदि उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं ।

ग्रामचेतना की अभिव्यक्ति राही मासूम रज़ा के उपन्यास को खास विशेषता है । इस दृष्टि से उनके उपन्यास "आधा गाँव" को ग्रामीण जीवन की महागाथा कही जा सकती है । स्वतंत्रता के पहले और बाद का ग्रामीण जीवन इस में रेखांकित है.। धर्म और जाति की राजनीति ने ग्रामीण वातावरण को कितना जहरीला बना दिया है, इसका कच्चा चिट्ठा, इस उपन्यास में पेश है । "हिम्मत जौनपुरी" और "टोपी शुक्ला" भी ग्रामीण चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं ।

राही जी ने अपने तमाम उपन्यासों में अनेक शिल्प-गत प्रयोग किये हैं । उन्होंने बृहत्काय उपन्यास भी लिखे हैं और छोटे आकार के लघु उपन्यास भी । "आधागाँव" महाकाव्यात्मक उपन्यास है तो "टोपी शुक्ला" व "सीन 75" लघुकाय उपन्यास । उन्होंने विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है और सिनेमा की शॉट शैली का भी । "आधागाँव" और "दिल एक सादा कागज़" मुख्यतया विवरणात्मक शैली में रचित है और सीन-75 में "शॉट" की तर्ज की रचना है । कथानक विधान में भी रज़ा जी ने पर्याप्त विविधता दिखाई है । गाँव और शहर दोनों ओर की ज़िन्दगी की सच्ची तस्वीर उन्होंने पेश की है ।

राही ने अपने पात्रों को गगनचुंबी महलों से नहीं चुना है, बल्कि टूटे-फूटे घरों में रहनेवाले सामान्य जीवन बितानेवाले आम आदमी

के बीच से चुना है । उन्होंने पात्रों के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालते हुए उनके स्वाभाविक आचरण, व्यक्तिगत रुचियों और कमज़ोरियों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है । पात्रों में सजीवता और स्वाभाविकता लाने के लिए उनके मनोभावों को भी राही ने चित्रित किया है ।

राही ने किसी परिकल्पित अभिजात-संस्कृति से अपने कथोपकथन सज्जित नहीं किये हैं । उन्होंने कथोपकथन का आधार निम्नवर्गीय या निम्नमध्यवर्गीय चेतना भूमि का बनाया है । उन्होंने उतना ही कहा है जितना वे अनुभव के स्तर पर जान सके हैं । उनके सभी उपन्यास सोद्देश्य है । शैली की दृष्टि से भी उन्होंने विविधमुखी प्रयोग किये हैं । उन्होंने देश काल वातावरण का संयोजन कथा, पात्र और परिस्थितियों के अनुकूल ही किया है । उनकी भाषा भी कथानक, काल, तत्कालीन परिस्थितियों और पात्रों के अनुकूल है । भाषा पर उन्हें ज़बरदस्त अधिकार हैं । इसी भाषा-सामर्थ्य के द्वारा किसी भी भावदृश्य या स्थिति को वे सहज बनाने में जाहिर हैं । उनकी भाषा में खुलापन है । उर्दू के मुहावरों और उक्तियों की नफासत, चिकनाहट एवं संवेदनशीलता ने उनकी भाषा को अधिक निखार प्रदान किया है ।

इस प्रकार डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास विषय-वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नवीनता का परिचायक हैं । इसलिए बेशक कहा जा सकता है राही हिन्दी साहित्य के सफल उपन्यासकार हैं और उनके उपन्यास अपने समय एवं समाज और उनके बदलते रूप के जीवंत दस्तावेज़ हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	:	डॉ. शंभुनाथ पाण्डेय विनोद पुस्तक मंदिर आगरा प्र. सं. 1964.
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. श्रीकृष्णलाल हिन्दी परिषद प्रकाशन विश्वविद्यालय, प्रयाग चतुर्थ सं. 1965.
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डा. बच्चनसिंह लोकभारती प्रकाशन 15-ए, महात्मागाँधी मार्ग इलाहाबाद-1 संशोधित संस्करण - 1994.
4. आधागाँव	:	राही मासूम रज़ा राजकमल प्रकाशन दिल्ली - 6 प्र. सं. 1966.
5. आधागाँव एक आलोचनात्मक अध्ययन	:	दिलशाद जिलानी दिलप्रीत पब्लिशिंग हाउस एफ 198, विष्णु गार्डन नई दिल्ली - 110018 प्र. सं. 1994.
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य विविध आयाम	:	वी. के. अब्दुल जलील
7. आँचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प	:	डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त अभिनव प्रकाशन दिल्ली - 6 प्र. सं. 1975.

8. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास : डॉ. रामविनोद सिंह
अनुपम प्रकाशन
पटना - 800004
प्र.सं. 1980.

9. आपका बंटी : मन्नू भण्डारी
अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2/36 अंसारी रोड
दरियागंज, दिल्ली - 6
प्र.सं. 1971.

10. आधुनिक उपन्यास विविध आयाम: डॉ. विवेकोराय
अनिल प्रकाशन
189 ए/1, अलोपी बाग
इलाहाबाद-6
प्र.सं. 1990.

11. आज का हिन्दी उपन्यास: पहचान और परख : (सं.) इन्द्रनाथ मदान
विधि प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1975.

12. औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षायें : डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी

13. अन्धेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
ओम प्रकाश नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002.

14. ओस की बूँद : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 6
प्रथसं. 1970.

15. उपन्यास का पुनर्जन्म : परमानन्द श्रीवास्तव
वाणी प्रकाशन
21 ए, दरियागंज
नई दिल्ली
प्र.सं. 1995.

16. उपन्यास संरचना स्वरूप और शिल्प : डॉ.शांतिस्वरूप गुप्त
लोदी ग्रन्थ निकेतन
86, 9/19 बाग रावजो
दिल्लो - 110006
प्र.सं. 1980.

17. कटरा बी आर्जु : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 6
प्र.सं. 1978.

18. कालेकोस : बलवन्त सिंह
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1982.

19. खुदा हाफ़िस कहने का मोड : राही मासूम रज़ा
संकलन कर्ता - डॉ.कुँवरपाल सिंह
वाणी प्रकाशन
दिल्लो, 1999.

20. गर्दिश के दिन : कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्ज़
काश्मीरी गेट
दिल्ली
प्र.सं. 1980.

21. गंगामैया : भैरवप्रसाद गुप्त
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1953.

22. टोपी शुक्ला : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली-6
प्र.सं. 1969.

23. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1973.

24. दिल एक सादा कागज़ : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1973.

25. नया साहित्य : नये प्रश्न : नन्द दुलारे वाजपेयी

26. नदी के द्वीप : अज्ञेय

27. प्रमुख आँचलिक उपन्यास: संवेदनात्मक दृष्टि : डॉ. कैलाशनाथ
जयभारती पब्लिशिंग हाउस
447-पीलीकोठी
नई बस्ती, कोड़ीगंज
इलाहाबाद - 3
प्र.सं. 1995.

28. प्रेमचन्द प्रतिभा : डॉ. इन्द्रनाथ मदान
सरस्वती प्रेस
5-सरदार पटेल मार्ग
इलाहाबाद
प्र.सं. 1967.

29. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना : डॉ. अमसिंह जगराम लोधा
अमर प्रकाशन
श्रीमती एम. ए. लोधा
12-ए अमर माधवबाग सोसाइटी
गोतामंदिर रोड
अहमदाबाद - 380022
द्वि. सं. 1985.

30. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास: : डॉ. चमनलाल
खण्ड : I
खण्ड : II
हरियाना साहित्य अकादमी
चण्डीगढ
प्र. सं. 1988.

31. बाबा बटेसर नाथ : नागार्जुन
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
दूसरा सं. 1960.

32. बलचनमा : नागार्जुन
किताब महल
इलाहाबाद, 1976.

33. बूँद और समुद्र : अमृतलाल नागर
किताब महल
इलाहाबाद
प्र. सं. 1978.

34. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश : डॉ. रामविलास शर्मा
किताब घर
दिल्ली-2
प्र. सं. 1999.

35. महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्पविधि : डॉ. शंकर वसन्त मुद्गल
चन्द्रालोक प्रकाशन
कानपुर
प्र. सं. 1994.

36. मैला आँचल : फणीश्वरनाथ रेणु
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र. सं. 1954.

37. यथार्थ से आगे : भगवती प्रसाद वाजपेयी

38. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन : डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन
दिग्दर्शन चरण जैन
ऋषभ चरण जैन एवं संतति
4662-21 दरियागंज
दिल्ली - 110002.
प्र. सं. 1984.

39. रचना के सामाजिक आधार : डॉ. सूरज पालिवाल

40. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा
हिन्द पाकेट बुक्स
दिल्ली, 1976.

41. लोहे के पंख : हिमांशु श्रीवास्तव

42. वे दिन : निर्मल वर्मा

43. शेखर एक जीवनी : अज्ञेय
सरस्वती प्रेस
बनारस
पाँचवाँ संस्करण 1961.

44. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विधान : डॉ. राधेश्याम कौशिक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर - ।
प्र. सं. 1976.

45. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य : डॉ. हरिशंकर दुबे
विकास प्रकाशन
311 सी. विश्व बैंक बर्रा
कानपुर - 208-027
प्र. सं. 1997.

46. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास : डॉ. तहसीलदार दुबे
नटराज पब्लिशिंग हाऊस
होली मुहल्ला
आर्यसमाज मंदिर के पास
करनाल - 132001
हरियाना ।

47. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : डॉ. कांतिवर्मा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र. सं. 1966.

48. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य संक्रमण : डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी

49. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद : डॉ. शैलबाला
सत्य सदन
सदावगो
वाटाबंकी

50. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन : डॉ. सुमित्रा त्यागी
साहित्य प्रकाशन
मालीवाडा, दिल्ली
प्र. सं. 1978.

51. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन : विवेकी राय
लोकभारती प्रकाशन
15-ए, महात्मागाँधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
प्र. सं. 1974.

52. सातवें दशक के लघु उपन्यासों में नारी चित्रण : डॉ. दुर्गेश नन्दिनी
अन्नपूर्णा प्रकाशन
127/1100 डब्ल्यू वन
साकेत नगर, कानपुर
प्र. सं. 1992.

53. समकालीन हिन्दी उपन्यास: कथ्य विश्लेषण : डॉ. प्रेमकुमार
इन्दु प्रकाशन
अलीगढ
प्र. सं. 1983.

54. साहित्य और सामाजिक मूल्य : डॉ. हरदयाल
विभूति प्रकाशन
के-14 नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032
प्र. सं. 1985.

55. सीन-75 : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 6
प्र. सं. 1977.

56. हिन्दी उपन्यास विवेचन : डॉ. सत्येन्द्र
कल्याणमल एण्ड सन्स
जयपुर - 2
प्र. सं. 1968.

57. हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचन्द्र तिवारी
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
प्र. सं. 1968.

58. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिषन प्रसाद

59. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ : शशिभूषण सिंहल
विनोद पुस्तक मंदिर
आगरा
प्र. सं. 1970.

60. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
17-ए, महात्मागाँधी मार्ग
इलाहाबाद
प्र. सं. 1976.

61. हिन्दी तथा अंग्रेज़ी आँचलिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. राजकुमारी सिन्हा
अन्नपूर्णा प्रकाशन
127/1100 डब्ल्यू वन
साकेत नगर
कानपुर - 208014
प्र. सं. 1988.

62. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ : डॉ. रामदरश मिश्र

63. हिन्दी में आँचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य : डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23-दरियागंज
दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1979.

64. हिम्मत जौनपुरी : राही मासूम रज़ा
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1969.

65. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द काल - 1955 तक : डॉ. सुषमा धवन
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1961.

66. हिन्दी साहित्य कोश : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

67. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन : डॉ. महावीरमल लोढा
सुशील बोहरा
बोहरा प्रकाशन
बोरडी का रास्ता, जयपुर
प्र.सं. 1972.

68. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1970.

69. हिन्दी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1968.

70. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना: डॉ. कुंवरपाल सिंह
पाण्डुलिपि प्रकाशन
इ-11/5 कृष्णनगर
दिल्ली - 110051
प्र.सं. 1976.

71. हिन्दी उपन्यास तीन दशक : डॉ. राजेन्द्र प्रताप

72. हिन्दी उपन्यास : विविध आयाम : चन्द्र भानु सोनवाणे
पुस्तक संस्थान
नेह नगर
कानपुर

73. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक : जयश्री बरहाटे
संचयन 124/152 सी
गोविन्द नगर
कानपुर - 208006
संस्करण 1988.

74. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व : डॉ. मंजुला गुप्ता
सूर्य प्रकाशन
नई सडक, दिल्ली

75. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में राजनीतिक चेतना : डॉ. श्रीमती सरोज यादव
अन्नपूर्णा प्रकाशन
कानपुर
प्र.सं. 1996.

76. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : (सं.) डॉ. रामदरश मिश्र
डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त
वाणी प्रकाशन
61 एफ कमला नगर
दिल्ली - 110007
प्र.सं. 1984.

77. हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास : डॉ. प्रताप नारायण श्रीवास्तव
हिन्दी साहित्य भण्डार
गंगाप्रसाद रोड
लखनऊ
द्वितीय संस्करण - 1964.

78. हिन्दी उपन्यास शिल्प: बदलते परिप्रेक्ष्य : डॉ. प्रेम भटनागर
अर्चना प्रकाशन
जयपुर
प्र. सं. 1968.

79. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि : डॉ. आदर्श सक्सेना
सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बिकानेर
संस्करण - 1971.

अंग्रेज़ी ग्रंथ सूची

80. Aspects of the Novel : E.M.Forster
Butier & Tenner Ltd
London
Copy - 1953.

81. The craft of Fiction : Percy Lubbock
London
copy - 1921.

82. The Structure of the Novel : Edwin Muir
London, 1928.

83. Islam in Focus : Hummudah Abdalati
Crescent Publishing Company
4-Abdul Qudir Market, Jail Road
Aligarh - 202001,
First copy - 1975.

सहायक शब्द कोश

1. बृहत् हिन्दी कोश : मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव एवं राजवल्लभ सहाय ज्ञानमण्डल लिमिटेड

2. हिन्दी साहित्य कोश : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी

3. उर्दू साहित्य कोश : (सं.) कमल नसीम

4. ज्ञान शब्द कोश : मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

पत्र-पत्रिकायें

1. दस्तावेज़ : अप्रैल-जून 1989
2. दस्तावेज़ : अप्रैल-जून 1999
3. सारिका : 21 जुलाई 1978
4. सारिका : मार्च 1975
5. आलोचना : अंक 13, उपन्यास विशेषांक, 1954.

G 8515